MATANG LOKVARTA : EK ADHYAYAN

Thesis Submitted in Fulfillment of the Degree

DOCTOR OF PHILOSOPHY

IN

Center for Dalit & Adivasi Studies and Translation

By

SONKAMBLE PIRAJI MANOHAR

2021

UNDER THE GUIDANCE OF

Prof. R. S. SARRAJU

CENTER FOR DALIT & ADIVASI STUDIES AND TRANSLATION,

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD. 500046

मातंग लोकवार्ता : एक अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय के पीएच.डी. (दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र)

उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2021

शोधार्थी

सोनकांबळे पिराजी मनोहर

शोध निर्देशक

प्रो. आर. एस. सर्राजु

दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

हैदराबाद – 500046

Declaration

I, **SONKAMBLE PIRAJI MANOHAR** hereby declare that this thesis entitled **"MATANG LOKVARTA: EK ADHYAYAN" ('मातंग लोकवार्ता: एक अध्ययन')** submitted by me under the guidance and supervision of Prof. **R. S. SARRAJU**, is my *bonafide* research work and is free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date:

(Signature of the student)

SONKAMBLE PIRAJI MANOHAR

Regd. No. 14HDPH03

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"MATANG LOKVARTA : EK ADHYAYAN"** (**'मातंग लोकवार्ता : एक अध्ययन'**) submitted by **SONKAMBLE PIRAJI MANOHAR** bearing Regd. No. **14HDPH03** in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of Doctor of Philosophy in **CENTER FOR DALIT AND ADIVASI STUDIES AND TRANSLATION** is a work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as we know the thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Prof. R. S. SARRAJU

Head, **CDAST**
University of Hyderabad

Dean, School of Humanities
University of Hyderabad

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **“MATANG LOKVARTA: EK ADHYAYAN” (मातंग लोकवार्ता : एक अध्ययन)** submitted by **SONKAMBLE PIRAJI MANOHAR** bearing Regd. No. **14HDPH03** in partial fulfillment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **CDAST** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication (s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications:

1. Matang Samaj ki Prusthbhumi our Parampara (ISSN – 2394-6903)
2. Balutedari Pratha our Mahar Mang Sambamdh (ISSN – 2394-6903)

B. Research Paper presented in the following conferences:

1. Matang Samaj ki Prusthbhumi our Parampara
2. Marathi Dalit Atmakathaon ka Udbhav Yavam Vikas

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of course work requirement for Ph.D.:

Course Code	**Name**	**Credit**	**Result**
1. DS801	Research Methods and Critical Approaches	4	Pass
2. DS802	Sociology of Dalit literature	4	Pass
3. DS803	Dalit and Adivasi Thought	4	Pass
4. DS804	Documenting of Dalit and Adivasi Oral literature	4	Pass

The student has also passed M.Phil. degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code	**Name**	**Grade**	**Credit**	**Result**
1. DS701	Research Methods and critical Approaches	D	4	Pass
2. DS702	Introduction to Dr. B. R. Ambedkar’s Thought	B	4	Pass
3. DS703	Historical and Sociological Study of Indian Adivasi literature	D	4	Pass
4. DS704	Translation and Computing in Hindi	C	4	Pass
5. DS751	Dissertation	B+	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor **Head of Department** **Dean of the School**

अनुक्रमणिका

पृ. संख्या

भूमिका i-x

प्रथम अध्याय : मातंग समाज की पृष्टभूमि और परंपरा 1-57

1.1 मातंगों की पूर्व परंपरा
1.2 ग्राम संरचना में मातंग समाज का स्थान
1.2.1. जात पंचायत
1.2.2. पंचायत के प्रमुख कार्य
1.2.3. शिक्षा
1.2..4. घर द्वार
1.3. बलुतेदारी प्रथा तथा महार मांग संबंध
1.3.1. बलुतेदारी प्रथा
1.3.2. महार-मातंग संबंध
1.3.2.1. महार जातिः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.3.2.2. मातंग समाजः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.3.2.3. मातंगः उत्पत्ति की दंतकथा
1.3.2.4. महार-मातंगों के बीच संघर्ष की भावना
1.3.2.5. हक़ के लिए लड़ाई
1.3.2.6. बारात निकालने के हक्क को लेकर लड़ाई
1.3.2.7. गाँवों में होने वाली चोरियाँ
1.3.2.8. मरिआई का उत्सव
1.3.2.9. महार-मातंग एकता की आवश्यकता

1.4 मातंगों का धार्मिक जीवन

1.4.1 देवी-देवता

1.4.2 पर्व त्यौहार

1.4.3. खान-पान

1.5 मातंगों की जीवन पध्दति

1.5.1. जन्म

1.5.2. नामकरण

1.5.3. जावळ (मुंडन)

1.5.4. विवाह

1.5.5. मृत्यु

1.6 मातंग समाज का पारंपारिक व्यवसाय

1.6.1. खेती

1.6.2. पशुपालन

1.6.3. मजदूरी

1.7 मातंगों की उपजातियाँ

द्वितीय अध्याय मातंग समाज का लोक साहित्य 58-140

2. लोक साहित्य

2.1. लोक कथाएँ

2.1.1. जामंत ऋषि की लोककथा

2.2. डक्कलवारों का जातिपुराण ‘बसवपुराण’

2.2.1. बसवपुराण का संकेत

2.2.2. ‘पट’ डक्कलवारों के बसवपुराण का आधार

2.2.3. डक्कलवारों के वाद्य : किंगरी और मोर

2.2.4. बसपुराण कथा का आरंभ या नमन

2.2.5. सृष्टि के जन्म की कथा

2.2.6. निरंजन स्वामी और उनके आसन की कथा

2.2.7. आख्यान

2.2.7.1. सात बालकों के जन्म की कथा

2.2.7.2 तीन अंडों की कथा

2.2.7.3. बीज उत्पत्ति की कथा

2.2.7.4. हिमालय पर्वत पर बैठे बसवा के क्रोध का वर्णन

2.2.8. बसव को नर का नामर्द बनाने की कथा तथा अन्य कथाएँ

2.2.9. मातंग समाज को बसव्या का श्राप

2.3. पोतराजों का मौखिक वाङ्मय

2.3.1 ‘बढ़ण’ विधि

2.3.2. ‘बढ़ण’ का जुलूस

2.3.3. जलपूजन

2.3.4. गुरुमंत्र

2.3.5. ज्ञानमाला

2.3.6. जागरण

2.3.7. पोतराजों की संभावना

2.3.8. पोतराजों की धुपात्री : मंत्रात्मक कवने

2.3.9. पोतराजों की धुपात्रीयाँ

2.4. मातंग समाज के लोक गीत

2.4.1 लोक गीतों में मातंगों की वाणी

2.4.2. मांगीरबाबा का पोवाड़ाः कवने

2.4.3 . मातंग समाज में प्रचलित लोक गीत

2.4.3.1. वंदन गीत

2.4.3.2. पाळणा

2.4.3.3. नामकरण के गीत

2.4.3.4. विवाह में गाए जाने वाले गीत

तृतीय अध्याय

3. मातंग समाज में प्रचलित ‘हलगी’ का ऐतिहासिक परिदृश्य **141-176**

3.1. मातंग समाज में प्रचलित ‘हलगी’ की परंपरा

3.2. ‘हलगी’ बनाने की प्रक्रिया

3.2.1. चप्पल के लिए तैयार की जाने वाली चमड़ी

3.2.2. दूसरी प्रक्रिया

3.3. ‘हलगी’ के प्रकार

3.3.1. ‘हलगी’ (डपली)

3.3.2. डपला

3.3.3. दिमकी

3.4. ‘हलगी’ का महत्त्व

3.5. बाजारीकरण में ‘हलगी’ का स्थान

चतुर्थ अध्याय 4. डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज **177-226**

4.1. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक कार्य

4.1.1. महाड की ऐतिहासिक क्रांति

4.1.2. मनुस्मृति दहन

4.1.3. कालाराम मंदिर प्रवेश

4.1.4. पुणे करार

4.1.5. स्वतंत्र मजदूर पार्टी

4.1.6. शेड्युल्ड कॉस्ट फेडरेशन

4.1.7. रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया

4.1.8. धर्मांतरण

4.2. डॉ. अम्बेडकर कालीन मातंग समाज

4.3. मातंग समाज के आंदोलनों के बदलते स्वरूप

4.4. मातंग समाज के वर्तमान स्वरूप

4.5. डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय को लेकर किए गए प्रश्न तथा उनके उत्तर

पंचम अध्याय 5. अण्णा भाऊ साठे और मातंग समाज **227-278**

5.1. अण्णा भाऊ साठे: व्यक्ति एवं रचनाकार

5.2. क्रांतिकारी लेखक एवं कवि

5.3. अण्णा भाऊ साठे का मातंग समाज को संदेश

5.3.1. डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलने का संदेश

5.3.2. मातंग समाज में प्रचलित अंधश्रध्दा को नष्ट करने का संदेश

5.3.3. मातंग समाज में चेतना जागृत करने का संदेश

5.3.4. अण्णा भाऊ साठे का मातंग समाज में परिवर्तन लान का संदेश

5.3.5. अण्णा भाऊ साठे की मातंग समाज के प्रति चिंता

5.4. अण्णा भाऊ साठे के साहित्य में मातंग समाज का चित्रण

उपसंहार : **279-286**

संदर्भ ग्रंथ सूची : **287-290**

परिशिष्ट: **291-318**

भूमिका

भारतीय समाज व्यवस्था में कुछ समुदाय सदियों बहिष्कृत रहे हैं । भारतीय सामाजिक संरचना में मराठो, ब्राह्मणों आदि की चाकरी करने वालों में मातंग समाज भी एक ऐसा ही समाज है जो इन लोगों के सारे काम पूरी इमानदारी से करता रहा । मातंग समाज इस शिष्ट समाज की चाकरी तो करता ही रहा साथ ही उन्हें अपना भगवान भी समझने लगा । मातंगों की गौरवशाली संस्कृति नष्ट हो गयी और मांगलिश संस्कृति को एक अपमान जनक संस्कृति में धकेला दिया गया । मातंग समाज का युवा वर्ग इस संस्कृति से आज भी अपरिचित है । इस शोध कार्य के माध्यम से मातंग समाज और इतिहास के प्रति ध्यान आकर्षित किया जा सकता है ।

मातंग लोक संस्कृति को ध्यान में रखते हुए इस शोध प्रबंध में मातंग समाज की विशेषताओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है । इसमें मातंग समाज की लोककला, लोककथा, लोकगीत, तमाशे, पोतराजों की पूर्वपरंरा और डक्कलवारों के बसवपुराण की कथा का अध्ययन किया गया है । मातंग संस्कृति में आनेवाली उन सारी बातों पर विचार करने की कोशिश की गयी है जो मातंग समाज के जीवन से संबंधित है जैसे आचार-विचार, रहन-सहन, विधि-निषेध, प्रथा-परंपरा, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, खान-पान, वेश-भूषा और अनुष्ठान आदि । साथ ही साथ मातंग समाज में फैली अंधश्रद्धाओं पर भी नजर डाली गयी है । मुख्य बात तो यह है कि दलितों के इतिहास को कभी किसी इतिहासकार ने दिखाने की कोशिश ही नहीं की, दलितों के इतिहास को एक तरह से नजर अंदाज ही किया जाता रहा है और आज भी करने का प्रयास किया जाता है । डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्यों को नागवंशी कहा था यह बात सच है जिसका सही रूप मातंग समाज की सम्मान जनक मांगलिश संस्कृति है । इस

संस्कृति को किस तरह से नष्ट कर दिया गया है और किस प्रकार उन्हें हाताश किया गया है, इसकी भी चर्चा इस शोध प्रबंध में की गयी है। ऐसी गौरवशाली संस्कृति को अभी तक किसी भी इतिहासकार ने दिखाने की कोशिश नहीं की है।

मातंग समाज अपनी संस्कृति में ग्रामीण देवी-देवताओं से लेकर सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी अपनी कलाओं को पेश करता हैं। लोकगीतों में यह समाज पहले से ही आगे रहा है। क्योंकि शिष्ट समाज ने इस समाज को 'हलगी' (ढ़पली) बजाने की परंपरा से जोड़ दिया था। इसी परंपरा को ध्यान में रखकर यह लोग 'हलगी' बजाने के साथ-साथ गाते भी थे, आज भी गाते हैं फर्क इतना है कि आज हलगी के साथ उस तरह की शहनाई बजाई नहीं जाती जैसे पहले बजाई जाती थी। गीत गाते हुए हलगी बजाने की प्रथा थी लेकिन अब बाजारीकरण की दौर में इसमें बहुत सारे बदलाव दिखाई दे रहे हैं। साथ ही बांसूरी बजाना आदि कलाएँ दूसरे किसी भी समाज में देखने को नहीं मिलती हैं। हाँ इतना जरूर है कि यह सारी कलाएँ आदिवासी समाज में देखने को मिलती थी और उसका अपना अलग महत्त्व है। परंतु यह आदिवासी भी सभ्यता से बहिष्कृत रहें हैं। इसलिए हलगी शहनाई के कार्य मातंग समाज को ही दिए गए हैं। यह व्यवस्था मातंग समाज को शुभ समझकर न जाने कितने लोगों को दफना चुकी है इसके उदाहरण देखने को मिलते हैं। उनकी लोक-कलाओं में, गीतों में इस विषय पर विचार किया गया है। इस समाज को शुभ समझकर उनके ही प्राणों की अहोती देने का कार्य किया है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि मातंगों के बिना शिष्ट समाज का अस्तित्व ही नहीं था। शिष्ट समाज मातंगों को अपनी लक्ष्मी समझता था। किसी शुभ-कार्य के लिए जाना

हो तो मातंगों को साथ में लेकर जाया करता था । इन लोगों को सिर्फ काम होने तक ही लक्ष्मी मानते थे बाद में शोषण जैसे का वैसा ही रहता था । मानो यह व्यवस्था इस गरीब जनता का शोषण करने को अपना जन्मसिध्द अधिकार ही समझती थी ।

मातंग लोकवार्ता में मातंग समाज के लोकसाहित्य के साथ-साथ उनके वर्तमान जीवन के पहलुओं को भी दिखाने का प्रयास किया गया है । इस शोध प्रबंध में मौखिक और लिखित परंपराओं को लेकर चर्चा की गयी है । मातंग लोक-संस्कृति में वे लोग गीत भी निराले ही गाते हैं जो शिष्ट समाज में नहीं पाए जाते । इस समाज में शादी-ब्याह, नामकरण, पालना आदि में महिलाएँ एकठ्ठा होकर उस कार्यक्रम की शोभा बढ़ाने के लिए गीत गाती हैं । जैसे शादी में गीत गाना, पालने के गीत, नामकरण के गीत आदि गाती हैं । इस प्रकार से यह समाज अपनी संस्कृति को लेकर चलता है । लोक संस्कृति में वे सारी बाते आती है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा अनुष्ठान या विश्वास जो समाज में प्रचलित होते हैं ।

इस तरह की संस्कृति का न कभी जिक्र हुआ है और न ही इस संस्कृति को भारत के इतिहास ने कभी जगह दी है । भारतीय इतिहास ने अनेक संस्कृतियों को बहार लाने में कामयाबी हासील की है लेकिन इस मातंग संस्कृति को नजर अंदाज कर दिया गाया है । इतनी प्राचीन मांगलिश संस्कृति को नजर अंदाज करना और मातंगो के गुरू मातंगऋषि (जामंतऋषि) के उदार मन का जिक्र न करना एक प्रकार की विडंबना ही है ।

आज समाज में आखरी छोर पर अपना जीवन यापन करने वाला यह समाज जिसके लिए समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाना अपरिहार्य हो

गया है। यह समाज आज या कल निश्चित ही क्रांतिकारी बनकर फिर एक बार इस जातिवादी संरचना के खिलाफ सामाजिक संघर्ष करने की भूमिका अपना सकता है। क्योंकि यह समाज आज तक सबसे पीछे था लेकिन अब इस समाज का युवावर्ग सुशिक्षित होता जा रहा है। वह समाज में परिवर्तन लाने के मार्ग खोज रहा है। जिसके लिए मातंग समाज का युवक डॉ. अंबेडकर के जीवन संघर्षों को याद कर रहा है। वह महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले के चरित्र पढ़ने लगा है, साथ ही शाहू महाराज और पेरियार को भी पढ़ने लगा है। अण्णा भाऊ साठे के परिवर्तनवादी विचारधारा की ओर बढ़ रहा है। वह क्रांतिकारी वीर लहुजी साळवे को अपना प्रेरणास्रोत मान रहा है। यह एक प्रकार से समाज में बदलाव लाना चाहता है। यह समाज डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अपना रहा है। इस समाज के कुछ लोग उनके द्वारा दी गयी बौध्द धम्म की दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं। समाज में परिवर्तन की दिशा निर्देश करने का कार्य मातंग समाज का युवा वर्ग कर रहा है। इसके पीछे डॉ. अम्बेडकर के विचार ही कार्य कर रहे है।

डॉ. अम्बेडकर के विचारों के साथ-साथ यह समाज अपने प्रेरणास्त्रोत लोकशायर अण्णा भाऊ साठे के अदर्शों का पालन करता दिखाई दे रहा है। अण्णा भाऊ के कारण ही इस समाज में परिवर्तन की दिशा निश्चित हुई है। उनके महान विचारों के कारण ही मातंग समाज का युवा वर्ग अम्बेडकरवाद की ओर अग्रसर हो रहा है। उन्होंने केवल अपनी बातों से या भाषणों के माध्यम से समाज में चेतना जागृत नहीं की है बल्कि अपने साहित्य के माध्यम से भी समाज में चेतना जागृत की है।

भारत में सदियों से दलित साहित्य एवं कलाएँ अस्तित्त्व में होने के बावजूद भी विद्वानों की दृष्टि से दूर और अछूती रही है । दलित साहित्य का एक रूप लिखित तो दूसरा मौखिक साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है । दलितों ने सबसे पहले अपना इतिहास मौखिक रूप में पाया था उसके बाद दलित साहित्य का उद्भव हुआ है ।

'दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र', हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद के अंतर्गत मौखिक साहित्य पर काम किया जा रहा है । इसका उद्देश्य यही है कि दलित एवं आदिवासी भारतीय भाषाओं के मौखिक साहित्य का दस्तावेजीकरण करना एवं उस साहित्य के सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व को संजोये रखना है । क्योंकि आने वाली पीढ़ी समझ सकेगी कि साहित्य के अलावा दलित एवं आदिवासी लोक की सामाजिक और पारंपारिक प्रदर्शनकारी कलाओं के साथ भी वाचिक साहित्य की एक पूरी लोक परंपरा जुड़ी हुई है जिसके कारण लोकगीतों, लोक-कथाओं, लोकनाट्यों के साथ भी साहित्य रचना की एक समृध्द परंपरा का विकास होता है ।

इसी उद्देश्य से मैंने 'मातंग लोकवार्ताः एक अध्ययन' इस विषय को सामने लाने की कोशिश की है । इस समाज की संस्कृति दबी हुई थी उसे पाठकों के सामने लाने का एक छोटा सा प्रयास है । इस लोकवार्ता का सामग्री संकलन मराठी क्षेत्र से किया गया है । इस लोकवार्ता में मातंग समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक महत्त्व को अपने शोध प्रबंध के माध्यम से संरक्षण करने का प्रयास किया गया है । इस शोध कार्य के लिए मैंने आदिलाबाद, चंद्रपुर (महाराष्ट्र) और नांदेड जिले में छोटे-छोटे गाँवों में निवास करने वाले लोगों में प्रचलित मातंग समाज की लोकवार्ता को अपना विषय बनाया है । इस क्षेत्र में कार्य आरंभ

करने से पहले मेरे मन में भाँति-भाँति के सवाल घर कर रहे थे जैसे- मैं सामग्री एकठ्ठा करूँगा या नहीं, लोग मुझे मदद करेंगे या नहीं, मेरे विषय को समझेंगे या नहीं आदि । लेकिन ऐसा नहीं हुआ, वहाँ के लोंगों ने मेरी बहुत मदद की है और उनकी वजह से ही मैं सामग्री जुटाने में सफल रहा ।

सामग्री संकलन के लिए मैं अपने मित्र सूर्यकांत मेटे (मालेपुर, जिला आदिलाबाद) इनके सहयोग से मालेपुर नामक छोटे से गाँव में गया । वहाँ जाने के बाद गेंदुराव मेटे उम्र 65 (मालेपुर जिला आदिलाबाद) इनसे मिला और मातंग समाज की कुछ जानकारी हमें मिली । इसी गाँव में और एक व्यक्ति से मिले उनका नाम वाघमारे पिराजी उम्र 72 इस गाँव में वह एकले ऐसे व्यक्ति है जो मातंग समाज का इतिहास लोक-कथाओं के रूप में बताते है । ऐसे व्यक्ति से मेरे मित्र ने मेरा परिचय कराया । उसके बाद मैंने अपने शोध कार्य के संदर्भ में विस्तार से उनसे बात-चीत की तब उन्होंने मेरे विषय को ध्यान में रखते हुए सामग्री संकलन के लिए मदद की । अपने दोस्तों की मदद से मैंने इस गाँव का सर्वेक्षण किया, अन्य लोगों से मिला बात-चीत एवं साक्षात्कार लिया । इस गाँव में मुझे अपनी सामग्री मिली । इसके तुरंत बाद हम दोनों मेरे साथी महेंद्र खंदारे और मैं कोठा नामक गाँव में गए यह गाँव भी आदिलाबाद जिले के अंतर्गत ही आता है । इस गाँव में जाकर श्री.मधुकर गोपले उम्र 45 इनसे मातंग समाज की वर्तमान स्थिति पर चर्चा की और साथ ही उन्होंने अपने सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विचार से हमें लाभांवित किया । उसके बाद महिलाओं के गीतों का संकलन किया गया । लोकगीतों का संकलन अपने मित्रों की सहायता से ‘मांगगुडा’ नामक गाँव में किया गया है । इस गाँव का नाम ही मांग जाति को ध्यान में रखकर रखा गया है । इस गांव में हमने मातंग समाज के लोकगीतों का

संकलन किया है । यह गाँव ता. जिवती जि. चंद्रपुर महाराष्ट्र के अंतर्गत आता है । उसी प्रकार पोजराजों की पूर्व परंपरा के लिए लिंगापुर नामक गाँव में सामग्री संकलन की गयी है । यह गाँव आदिलाबाद जिले के अंतर्गत आता है । अंत में डॉ. अम्बेडकर को लेकर स्कूल के शिक्षक व्यंकटी कोटंबे से बात-चित हुई और उन्होंने मुझे डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय पर अपने विचार प्रश्न के उत्तर के रूप में व्यक्त किए है । आप सभी के प्रति मैं अभार व्यक्त करता हूँ ।

इस शोध प्रबंध को विवेचन की सुविधा की दृष्टि से भूमिका व उपसंहार के अतिरिक्त मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है । प्रथम अध्याय के रूप में 'मातंग समाज की पृष्ठभूमि और परंपरा' है । दूसरे अध्याय में 'मातंग समाज का लोक साहित्य' को देखा गया है, तिसरे अध्याय में 'मातंग समाज में प्रचलित हलगी का ऐतिहासिक परिदृश्य' है । चौथे अध्याय में 'डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज' इस विषय को दिखाने का प्रयास किया गया है । पांचवे और अंतिम अध्याय के रूप में 'अण्णा भाऊ साठे और मातंग समाज' पर विचार किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के निर्देशक प्रो. आर. एस. सर्राजु हैं जो दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र के अध्यक्ष हैं । उन्होंने इस विषय पर शोध करने की अनुमती दी और इस शोध कार्य की सफलता को अंतिम रूप देने में मेरे गुरू आदरणीय प्रो. आर. एस. सर्राजु जी का उचित मार्गदर्शन मिला है । यह मेरा सौभाग्य है कि गुरुवर ने मेरी छोटी-छोटी शंकाओं का, प्रश्नों एवं उलझनों को सुलझाकर इस कार्य को सहज एवं सरल बनाया है । अपनी व्यस्तता के बावजूद मेरी त्रुटियों का यथासंभव समाधान एवं उनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन मेरे

लिए सदैव से बल बना रहा । अतः मैं अपने गुरू के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ ।

तथा इस केंद्र के अन्य अध्यापकों में मेरे दूसरे गुरू के स्थान पर प्रो. वी. कृष्णा जी है जिनके कारण मुझे उच्च शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ । अतः मैं गुरूवर प्रो. वी. कृष्णा सर के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । इसी कड़ी में मैं प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी सर के प्रति भी विशेष रूप से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर हमें मार्गदर्शन किया । साथ ही डॉ. जे. आत्माराम सर के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने व्यस्त रहते हुए भी हमेशा हमें प्रोत्साहित करने का कार्य किया । इसी रूप में मैं प्रो. शशि मुदीराज जी का भी अभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने केंद्र में पढ़ाते हुए उचित मार्गदर्शन देना का कार्य किया । केंद्र के अन्य अध्यापकों में प्रो. गजेंद्र पाठक सर और प्रो. सी. अन्नपूर्णा, प्रो. सुब्बाचारी तथा डॉ. जी. राजु सर इन सभी के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर मार्गदर्शन करते हुए शोध कार्य के लिए सुझाव दिए हैं ।

मैं अपने साथी महेंद्र खंदारे, अमित पतंगे, बंडु सोनकांबळे, रमेश सोनकांबळे आप सभी का विशेष आभारी हूँ जिनके बिना मेरा सामग्री संकलन अधुरा सा था । साथ ही सूर्यकांत मेटे, उनके भाई चाचाजी और चाचीजी तथा वाघमारे पिराजी व मांगगुडा गाँव के ग्रामवासियों का और खासकर महिलाओं का भी आभारी हूँ, मधुकर गोपले और उनकी पत्नी का भी मैं आभारी हूँ । साथ पोतराजों की परंपरा को समझाने वाले व्यक्तियों याद करना ही होगा जिनमें सोपान वाघमारे (मुतनुर), मरीबा मोतेवाड, (लिंगापुर), मरीबा तोगरे (अनंतापुर), सुभाष कांबळे (इच्चोडा), आप सभी के प्रति भी विशेष रूप से

आभार व्यक्त करता हूँ । आप लोगों के कारण ही मुझे पोतराजों के मौखिक वाङ्मय का परिचय प्राप्त हुआ तथा पोतराजों की धुपात्रियाँ उपलब्ध हो पाई इसलिए आप सभी के प्रति विशेष आभार । यहाँ पर जिन गाँवों का जिक्र किया गया है वे सभी गाँव आदिलाबाद जिलें के अंतर्गत आते हैं । साथ ही मैं अपने अनुज धम्मशील सोनकांबळे का भी शुक्र गुजार हूँ जिन्होंने पोतराजों की धुपात्रियों का सकलन करते हुए कैमरामैन की भूमिका निभाई है । उसी प्राकर मैं अपने मित्र डॉ. बोलचेटवार राजेश्व और डॉ. घनशेटीवार साईनाथ के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहुँगा जिन्हेंने हलगी के संबंध में नांदेड जिले के अंतर्गत आने वाले छोटे-छोटे गाँवों में जाकर सामग्री उपलब्ध कराने में मेरी मदद की । इन्होंने जिन लोगों से हलगी के संबंध में जानकारी प्राप्त की है उन लोगों का परिचय इस प्रकार है- मंजीराम मादनुरे, लक्ष्मण गोपले, मरीबा गांजरे, रामा वाघमारे, रामा गांजरे, केरबा गांजरे, नागनाथ माने, मरीबा कंकाळे, श्रीपती वाघमारे (कोंडलवाडी, बिलोली, जिला नांदेड) इन सभी के प्रति भी विशेष रूप से आभार क्योंकि इनके बिना हलगी के विषय में विस्तृत जानकारी पाना असंभव था ।

मैं अपने पूजनीय माता-पिता के पवित्र चरणों में नतमस्तक हूँ जिनके वात्सल्य, स्नेह और दुलार के बल पर ही यहाँ तक पहुँच सका हूँ । जो शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए हम सभी भाईयों को शिक्षा ग्रहण करने तथा शिक्षित बनाने का उनका संकल्प हमारे ग्राम वासियों के लिए प्रेरणादायक रहा है । इसी कड़ी में मेरे जीवन के आधार स्तंभों में से एक मेरे अग्रज सुजीत कुमार बनसे और महेश खोब्रागड़े का मेरे जीवन में महत्तवपूर्ण योगदान रहा है । जिन्होंने मुझे शिक्षित बनाने में आर्थिक मदद की और हमेशा आगे बढ़ने के लिए मुझे प्रोत्साहित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया है । अतः उनके प्रति विशेष रूप

से आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति भी आभारी हूँ।

मैं मेरे प्रिय मित्र कैलाश घाटे का भी विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ जिनका इस शोध प्रबंध को अंतिम रूप देने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही मेरे मित्रों ने 'हलगी' के संदर्भ में तेलुगु भाषा में मिली 'डप्पु' से संबंधित सामग्री का अनुवाद कर मुझे सहायता की है जिनमें सूर्या कुमारी, डाकोरे कल्याणी, एम. हनमंतु, सिलपाका वेंकटाद्री तथा बी. रविंदर मुख्य हैं आप सभी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ।

सोनकांबळे पिराजी मनोहर

प्रथम अध्याय

मातंग समाज की पृष्टभूमि और परंपरा

1.1. मातंगों की पूर्व परंपरा

'मांग' और 'मातंग' दोनों शद्बों का प्रयोग वर्तमान महाराष्ट्र की एक जाति के रूप में किया जाता है। मातंगों का इतिहास अत्यंत गौरवशाली और उच्च संस्कृति का रहा है। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि आज तक किसी भी इतिहासकार ने इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दिखाने की कोशिश नहीं की है और न ही इतिहासकार इसे आवश्यक समझते हैं। इस जाति की संस्कृति और इतिहास के मूल्यों को ढूँढ निकालने की जरूरत है। यह इतिहास क्षेत्रकार्य और मौखिक साहित्य के अध्ययन के बल पर ही हो सकता है। इस इतिहास के बल पर 'मांग' जाति की अति प्राचीन संस्कृति का दृश्य सबके सामने आ जाता है।

'मांग' यह एक महाराष्ट्र के हिन्दू धर्म में अस्पृश्य समझी जाने वाली अनेक जातियों में से एक जाति है जिन्हें बारह बलुतेदारों में गिना जाता है। 'मांग' लोगों को ही 'मातंग' कहा जाता है। वैसे तो 'मांग' और 'मातंग' इन दोनों में समन्वयार्थ अलग-अलग है। 'मांग' यह एक विशिष्ट जाति के अर्थ में लिया जानेवाला शब्द है। परंतु 'मातंग' एक समय अत्यंत सभ्य और शांतिप्रिय संस्कृति को निर्देशित करने वाला शब्द है। 'मांग' यह लोकसमूह की जाति का निर्देश देनेवाली जाति वाचक संज्ञा बन गयी है। आगे चलकर 'मांग' जाति को

मातंग कहकर संबोधित किया गया है। 'मांग' और 'मातंग' इन दोनों शब्दों का परस्पर संबंध है।

इस मातंग संस्कृति का उदय अति प्राचीन काल में हुआ था। यह एक अत्यंत वैभवशाली मांगलिश वंश के राजघरानों से संबंध रखने वाले समाज की संस्कृति है, यहीं से मातंग संस्कृति का उदय हुआ है। इस संस्कृति की जड़े वेद पूर्वकालीन संस्कृति में दबी हुई है। इस संस्कृति में छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित मांगलिश राजाओं का अस्तित्व बना हुआ था। उदा. तुंगभद्रा नदी के तटपर कोशल प्रदेश पर इन्होंने कई सालों तक राज किया था। इस मांगलिश वंश के राजा मांगल, मोंगल, मांगलिश, मांगलपंती, मंगलीया, मंग, अलमेल मंगाराज आदि थे। उन्हें एक राज करने वाली जाति के रूप में ख्यति प्राप्त थी। ऐसे अत्यंत शूरवीर योध्दाओं ने मांगल, मगध, किष्किंधा, कौसल, मातंग कुल आदि प्रदेशों पर राज किया है। यह इतिहास आज भी मौखिक और लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध है। हमें शोध कर के इस इतिहास को बाहर निकालना होगा। उनकी अपनी सामाजिक संस्कृति 'मातंग' नाम से जानी जाति थी। इन 'मातंग' संस्कृति के राजाओं का पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक अपना साम्राज्य बना हुआ था। इस जाति के लोगों का परिवर्तन काल के अनुसार हुआ है जो इस प्रकार है- मांगल, मंग, मांगपती इस तरह के नाम सामने आए हैं। आगे चलकर इन्हीं शब्दों का अपभ्रंश में रूपांतरण हुआ- मंग, मांग, माँग आदि। इस तरह से इस 'मांग' जाति का मातंग संस्कृति से संबंध जुड़ा हुआ है।

इतिहास के पुराणों से यह सिद्ध होता है कि अनेक वैभवशाली लड़ाईयों में पराभूत होकर गायब होते चले गएँ। उनके अपने राज्य नष्ट होते चले गएँ

और उनकी संस्कृति भी नष्ट होती चली गयी और जीतने वालों की अलग-अलग संस्कृतियों का उदय इस देश में हुआ । कुछ ऐसा ही इन मांगलिश राजाओं के साथ हुआ है । इन वैभवशाली राजाओं को पराभव के पश्चात इन पराजितों को कैद करके गुलाम बनाया गया । उन्हें सामाजिक गुलामी में धकेला गया । उन्हें आर्य संस्कृति का स्वीकार करने वाले और हराने वाले राजाओं ने चतुर वर्ण व्यवस्था के शूद्र वर्ण में डाल दिया । शूद्रों का वर्ण यह एक समाज बाह्य, अस्पृश्य या सेवा करने वाला वर्ण था । गुलामों को इस तरह सेवा करने के कार्य दिए जाते थे । इन मांगलिशों को पराभव के बाद अस्पृश्यों के अपवित्र और गंदे कार्य अपनी उपजीविका चलाने के लिए करने पड़े । उन्हें इस तरह के बुरे संस्कार दिए गए । इन मांगलिशों के शूर-वीर योध्दाओं को आगे चलकर बहुत ही दयनिय स्थिति से गुजरना पड़ा । यह चतुर वर्ण आर्य संस्कृति में निषिद्ध वर्णो में से एक अस्पृश्य जाति बन गयी और उनकी अपनी गौरवशाली संस्कृति नष्ट हो गयी ।

अंत्यज, शूद्र, अस्पृश्य या दास इस रूढ़ अर्थ में प्रचलित होने वाली इस मातंग जाति के गौरवशाली संस्कृति के नष्ट होने के बाद चतुर वर्ण व्यवस्था में बहुत ही निम्नस्तरीय या गंदे काम कराये जानेवाले व्यवहार से परास्त हो गयी थी । यह जाति सामाजिक व्यवस्था में इस तरह का हीन जीवन जीने के लिए बाध्य हो गयी थी । लेकिन उनकी मानसिकता इस तरह के गंदे कार्य करने के लिए तैयार नहीं थी । उन्होंने इस तरह के कार्यों को नकार दिया । उस समय गुलामों को दी जाने वाली कठोर यातनाएँ इनको दी गयी । घोर यातनाओं के बाद भी उन्होंने इन गंदे कार्यों को नकारा । शुभमंगल, सुसभ्य और सुसंस्कृत पराजितों की मानसिकता किस तरह से हीन और नीच दर्जा के कार्य करने के

लिए तैयार हो सकती है भला ? इसलिए इन मांगलिश गुलामों को तत्कालीन सामाजिक चतुर वर्ण व्यवस्था ने कम दर्जे के लेकिन समाज में शुभ और मंगल समझे जाने वाले कार्य बांट दिए । इससे यह पता चलता है कि मातंग संस्कृति किस तरह से गौरवशाली संस्कृति थी और उसे किस तरह से अस्पृश्य बना दिया गया है

'मांग' जाति के आज के सामाजिक कार्यों के स्वरूप को देखा जाए तो उन्हें गाँव में या बस्तियों में जो काम समाज में बाँटकर दिए गए है । दरअसल वह काम पराजित गुलाम समझकर उनकी ओर से कर लिए गए थे और आज मांग जाति के वही कार्य हिन्दू धर्म की रूढ़ परंपराओं के अनुसार उनकी उपजीविका के कार्य बन गए हैं । इस सामाजिक कार्यों का स्वरूप क्या था इसे हम देख सकते हैं जिससे सामाजिक चिंतन करने के लिए ध्यान आकर्षित किया जा सकता है । सामान्यतः 'मांग' लोगों को बस्तियों में निम्न प्रकार के कार्य करने पड़ते थे, दृष्टव्य है-

गाँव की संरचना के अनुसार 'मांग' जाति के घर बस्तियों से दूर रहते हैं बस्तियों से बहार निकलते समय या बस्ती में प्रवेश करते समय सबसे पहले 'मांग' लोगों के दर्शन होने चाहिए । इस पद्धति से घर बांधने के लिए बताया जाता था । उनके घर संभवतः पूर्व दिशा में ही पाये जाते हैं । सूर्य प्राचीन काल से ही आराध्य देवता रहा है चाहे वह आर्य संस्कृति हो या फिर अन्य । सूर्य को शुभ और मंगल समझा जाता था । क्योंकि गाँव से बहार जाने वाले व्यक्ति को या आने वाले व्यक्ति को 'मांग' जाति के व्यक्ति का दर्शन होते ही उसके दर्शन से उस व्यक्ति के कार्य में यश प्राप्त होता है, इस तरह की धारणा उस जमाने में थी

। क्योंकि मांगों के दर्शन सूर्य की तरह शुभ समझे जाते थे । हिंदू संस्कृति में शुभ और मंगल शब्द को देवता का स्वरूप समझा जाता है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जो मातंगों की संस्कृति थी वह शुभ और मंगल समझी जाती थी जिसमें से इस उक्ति का जन्म हुआ है- 'दिसेल मांग तर फिटेल पांग ।' अर्थात् मांग दिखने से पाप कम हो जाएँगे ।

हिन्दू संस्कृति में मानव जन्म को महत्व दिया गया है और बालक के जन्म को शुभ माना जाता है । ऐसे मानव जन्म के वक्त बालक को विश्व का प्रथम दर्शन प्राप्त होता है । यह प्रथम दर्शन उसे शुभ और मंगल प्राप्त होने चाहिए जिसके लिए मांग जाति की दाईन को लाया जाता था और वे इसे जरूरी समझते थे । यह इसलिए कि उस मांगिन दाई माँ की निगरानी में ही बालक का जन्म होना चाहिए यह गाँव में नियम था । इस तरह के कार्य सिर्फ मांग जाति की स्त्री के ही है यह सिद्ध किया जाता था । मांगिन स्त्री का बालक को सबसे पहले स्पर्श, दर्शन, बालक के जन्म लेते ही उसके कान फुककर मंत्रोच्चार करना आदि कार्यो को अत्यंत शुभ और मंगल समझना चाहिए इस तरह की धारणा उस समय थी । मांग स्त्री से ही ज्ञान की शुरूवात होनी चाहिए यही इसके पीछे का उद्देश्य था ।

मनुष्य के विवाह को भी सामाजिक जीवन में शुभ और मंगल समझा जाता है । ऐसे मंगल कार्यो में मांग लोगों को अपने मंगल वाद्य दुल्हा-दुल्हन के सामने बजाने चाहिए । और उन वाद्यों के ताल में, शुभ स्वरों में यह मंगल विधि या विवाह संपन्न होने चाहिए । इसके लिए 'मांग' लोग ही इस तरह के कार्य करने चाहिए ऐसी धारणा बन गयी । ढ़पली-शनई बजाने जैसे कार्य 'मांग'

गाँव में करने लगे थे । क्योंकि यह मंगल वाद्य बजाकर वे वधु-वरों को शुभ आशिर्वाद देने से ही उन विवाहित दाम्पत्यों का जीवन मंगलमय हो जाता है ऐसी इसके पीछे धार्मिक धारणा थी । तब से लेकर आजतक मातंग समाज के लोग मंगल वाद्य बजाने के कार्य कर रहे हैं । इससे यह पता चलता है कि अगर मातंग अस्पृश्य गुलाम थे यह समझकर उन्हें हलके दर्जे के कार्य करने के लिए बाध्य किया गया था फिर भी उनके कार्यों को शुभ और मंगल ही समझा जाता था । और यह तभी संभव हुआ कि यह 'मांग' लोग मांगलिशों के मातंग संस्कृति से संबंधित थे । यह 'मांग' लोग इस मंगलमय संस्कृति में से आए हुए पहले के प्रतिष्ठित और सम्मानिय व्यक्ति थे यह सिद्ध होता है ।

बस्तियों में किसी के घर पर पुत्र के जन्म के समय, शादी के बारात में, गाँव की महापूजा में, मेले में अथवा किसी भी शुभ कार्यों में मांग लोगों को अपने मंगल वाद्य बजाने चहिए । ऐसे समय पर मांगिन स्त्री को उनके सामने पानी से भरा हुआ मटका शुभ चिन्ह समझकर पकड़ना चाहिए । इस तरह के कार्यों को शुभ माना जाता था जिससे हर एक काम में यश प्राप्ति होती है ऐसी धारणा थी ।

मृत्यु के समय भी अर्थी के सामने मांग लोगों को मंगल वाद्य बजाने चाहिए और उस शव यात्रा के साथ स्मशानभूमि तक जाना चाहिए जिससे मरने वाले की आत्मा को शांति प्राप्त होती है । उसे मुक्ति मिल जाती है और उसकी आत्मा को मोक्ष प्राप्ति होती है । इस तरह की धारणा हिन्दू संस्कृति में आज भी रूढ़ है । इस तरह के शुभ और स्वर्ग प्राप्ति, मोक्षप्राप्ति आदि कार्य ब्राह्मण के बाद सिर्फ मातंगों को ही दिए गए हैं ऐसी मानसिकता मातंग समाज के लोगों में है । ये लोग अस्पृश्य थे फिर भी इनको दिए गए कार्य सम्मान जनक

थे । मातंग समाज का शिक्षित एवं अशिक्षित वर्ग यह मानता है कि हम गुलाम होते हुए भी हमें गंदे काम करने के लिए मजबूर तो किया था लेकिन हमने नहीं किए । लेकिन ऐसा नहीं है यह इन लोगों का केवल भ्रम ही है, क्योंकि बलुतेदारी प्रथा में इन लोगों को मिट्टी में समाएं हुए अनाज का हिस्सा दिया जाता था । हलगी बजाने और दाईन के काम के अधार पर यह लोग अपने कामों को शुभ और सम्मान जानक कार्य समझने लगे थे ।

महाराष्ट्र में वाघ्या, देवपूजक, देवदूत आदि मातंग जाति के ही पुरूष रहते थे । उसी प्रकार मातंग जाति की स्त्रियों में मुरळी[1], देवदासी आदि ईश्वर से संबंधित शुभ कार्य करने चाहिए इस तरह के भी कार्य इन लोगों पर थोपें गए थे । गाँव, बस्तियों में इन्हें शुभ और मंगल देवपूजक समझा जाता था जिनकी वजह से गाँव में बीमारी, भीषण महामारी की गुंजाईश नहीं रहती है ऐसा समझा जाता था । इस तरह की वाघ्या, मुरळी, देवदासी जैसी प्रथाओं को हिन्दू समाज में पवित्र माना गया है और साथ ही इसे पुण्य का काम समझकर ज्यादातर 'मांग' जाति पर ही थोप देने काम किया गया है । सवाल यह है कि अगर यह काम सम्मान जनक थे तो फिर सवर्णों ने इसे क्यों नहीं अपनाया तथा अपने समाज से किसी स्त्री को देवदासी क्यों नहीं बनाया ? यदि ऐसा होता तब यह जरूर लगता था कि इस तरह के कार्य सम्मान जनक है ।

फसल के समय या फिर बुआई के समय 'मांग' लोगों को खेती में जाकर देव-देवताओं के सामने खेत मालिकों को अधिक रूप में फसल प्राप्त होने के लिए प्रार्थना करनी होती थी या फिर उनकी स्तुति करनी चाहिए ऐसी प्रथा थी । इस प्रथा को शुभ मानकर उससे ज्यादा फसल का उत्पादन प्राप्त हो इसके पीछे

की ऐसी धारणा प्रचलित थी । यह जोगवा[2] या जोगीनी मांगने के कार्य मांग लोगों के करने से ही शुभ माने जाते थे ।

'मांग' जाति को इस तरह से शुद्ध माना जाता था कि खेत में, गाँवों में, या फिर गाँव के बहार जैसे बड़े-बड़े महल बनाते समय, हवेलियों के निर्माण में अगर 'मांग' जाति के व्यक्ति की बली देने से या उन्हें उस नीव में दफना देने को शुभ माना जाता था और उस भवन-निर्माण को हमेशा यश प्राप्ति मिलती है ऐसी भी धारणा थी । 'मांग' जाति के व्यक्ति की बली देकर उसे खेत में दफ़ना देने से वह खंडोबा[3] बनकर खेत की रक्षा करता है । इस तरह की धारणा भी उस समय प्रचलित थी । उसमें से ही खंडोबा की पूजा शुरू हुई थी और यह खंडोबा मातंग जाति का ही था । खंडोबा की मुरळी भी मातंग जाति की ही होती थी । इस कार्य को भी शुभ ही समझा जाता था । मांगीर बाबा नामक यह प्रस्थान इसी प्रथा में से निर्माण हुआ है । मांगीर बाबा के पोवाड़ों में इस प्रथा का विस्तार से वर्णन मिलता है । 'मांग' जाति के लोगों को दफनाने की प्रथा को भी इस संस्कृति में शुभ माना गया है । एक व्यक्ति को जिंदा दफनाना तथा उसके परिवार के साथ छल करने जैसी प्रथा को किस अधार पर शुभ माना जाना चाहिए ।

गाँव या बस्ती में किसी भी प्रकार की नैसर्गिक आपत्ति आ जाती है तब उसका निवारन मातंग जाति के लोगों को ही करना पड़ता था । गाँवों में किसी प्रकार की बीमारी फैलने से या महामारी आने से मरीआई[4] की पूजा कर के उन्हें पूजा के सारे सामान को गाँव की सीमा पर रखकर आने की भी एक प्रथा थी । अगर गाँव में कोई आक्रमण करता है तो 'मांग' लोगों का यह काम होता था कि

वे शंक बजाकर पूरे गाँव को जगाने और सबसे पहले युद्ध में भी शामिल हो जाने चाहिए, इस तरह के भी नियम गाँवों में प्रचलित थे।

राजाओं के रजवाड़े के, हवेलियों के रक्षक 'मांग' जाति के शूर-वीर पुरूष ही रहते थे। महात्मा फुले के अंगरक्षक भी मांग जाति के ही थे। लहुजी बुवा साळवे यह फुले के अंग रक्षक थे। यही नहीं पेशवाई राज्य में भी मस्तानी के बारा अंग रक्षक 'मांग' जाति के ही थे ऐसा वे लोग बताते हैं और शिवाजी महाराज की सेना में भी महारों की तरह ही 'मांग' जाति के सरदार या सैनिक बड़े पैमाने पर थे। 'मांग' लोगों को अत्यंत शूर, शुभ या प्रामाणिक माना जाता था। पेशवाई राज में उन्हें नाईक कहकर संबोधा जाता था। उनके नाम इस तरह से रहते थे - नागनाक, सदनाक, गणनाक आदि।

इस प्रकार के काम मातंग समाज के लोगों को बाँट दिए गए थे। उनके कामों को देखकर वह काम अस्पृश्यों के समझकर रूढ़ अर्थ में हीन समझे जाते थे फिर भी उनके काम गंदे नहीं थे जैसे भंगी समाज को मैला ढोने, महारों को मरे हुए ढोरों को उठाने, उसे चीरफाड करने, उसका माँस खाने, चमारों को चमड़ा बनाने, उससे चप्पल आदि बनाने जैसे अत्यंत हीन कार्य गाँवों में करने पड़ते थे। कुछ अस्पृश्यों लोगों को तो इससे भी भयानक कार्य करने पड़ते थे जैसे स्मशान में काम करने वाले चाँडल। परंतु मांगों को मात्र स्वच्छता के लिए झाड़ू, सुप, टोकरियाँ आदि बनाने, रस्सी बनाने, बैलों के लिए ऐंठन बनाने, गुढ़ी-तोरण लगाने और गाँव की रक्षा करने आदि। इस तरह के शुद्ध और अच्छे मगर अप्रतिष्ठित कार्य बाँट दिए गए थे। इनके काम मुलतः गंदे नहीं थे इसका कारण यह था कि 'मांग' यह जाति अच्छे संस्कारों में से, राज करनेवाले जाति

में से, प्राचीन वैभवशाली, शुभ और मंगल संस्कृति में से आयी हुई जाति थी। बाद में यह युद्ध में हार जाने से पराजित या गुलाम बन गयी थी। यहाँ पर भी यह लोगों भावुक होते दिखाई देते हैं। क्योंकि महारों के साथ इन लोगों को भी मरे हुए जानवरों को ढ़ोना पड़ता था तथा उसका माँस ग्रहण करने की अनेक कहानियों को देखा जा सकता है। ऐसा नहीं करने पर इन दोनों जातियों को दंड दिया जाता था। यही नहीं डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक आंदोलनों के बाद महार जाति ने इस तरह के कार्य करने त्याग दिए थे लेकिन मातंग समाज इन कार्यों को छोड़कर स्वाभिमान से जीने की चाह में नहीं था। फिर यह कैसे मान लिया जाए कि इस समाज के जो भी कार्य थे वह सम्मान जनक थे।

उसी तरह आज भी अनेक लोगों को यह पता नहीं है कि महानुभाव पंथ के निर्माता 'मांग' भाई थे जिसे मा. श्री. रा. चि. ढेरे ने अपने शोधात्मक किताब 'मातंगीपट्ट' नामक ग्रंथ में यह सिद्ध किया है कि महानुभाव जैसे प्रभावी पंथ के संस्थापक 'ढेगो-मेघो' यह दोनों 'मांग' भाई थे और इसी 'मांग' भाई पंथ का आगे चलकर महानुभाव में रूपांतरण हो गया है।

1.2. ग्राम संरचना में मातंग समाज का स्थान

भारतीय समाज में प्रचलित समाज संरचना और ग्राम संरचा में मातंगों का स्थान तथा मातंगोत्तर जाति के परस्पर संबंधों के स्वरूप को समझने के लिए ग्रांम संरचना को जान लेना आवश्यक है। भारतीय समाज व्यवस्था में बहुत सारी खामियाँ है जिसमें आज भी सुधारना होती दिखाई नहीं देती है। हमारी भारतीय संस्कृति एक मात्र संस्कृति है जहाँ पर जाति व्यवस्था को महत्त्व दिया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं भारतीय समाज व्यवस्था में

दलित ही नहीं संपूर्ण बहुजन समाज ही बहिष्कृत रहा है । दलित जो है वह समाज से बहिष्कृत रहा है तो आदिवासी सभ्यता से बहिष्कृत रहा है । दलितों में भी अनेक जातियाँ है जो आपस में भेदभाव रखती है । जिसमें मातंग और महार, चमार, तेली, धोबी आदि को विशेष रूप से देखा जा सकता है । महार जाति के घर गाँव से दूर रहते थे लेकिन मातंग समाज के घर तो उससे भी दूर एक तरह से गंदगी में रहते थे । आज परिस्थितिओं में बदलाव नजर आ रहे हैं फिर भी जाति व्यवस्था कायम है ।

ग्राम संरचना के अनुसार 'मांग' जाति के घर बस्तियों से दूर परंतु बस्तियों से बहार या बस्ती में प्रवेश करते समय सबसे पहले 'मांग' लोगों के ही दर्शन होने चाहिए इस पद्धति से उनकी बस्तियों का निर्माण किया जाता है जो गाँव के पुरोहितों द्वारा निश्चित किया जाता था । उनके घर संभवतः पूर्व दिशा में ही पायें जाते हैं । सूर्य को प्राचीन काल से ही आराध्य देवता माना गया है चाहे वह आर्य संस्कृति में हो अनार्य । सूर्य को शुभ या मंगल समझा जाता है । क्योंकि गाँव से बहार जाने वाले व्यक्ति को या आने वाले व्यक्ति को मांग जाति के व्यक्ति का दर्शन होते ही उसके दर्शन से उस व्यक्ति को कार्य में यश प्राप्ति होती है । इस तरह की धारणा समाज में थी । क्योंकि मांगों के दर्शन सूर्य के दर्शन की तरह शुभ माने जाते थे । हिन्दू संस्कृति में शुभ और मंगल शब्द को देवता का स्वरूप समझा जाता है । पहले से ही मातंग समाज की दयनिय अवस्था थी । अब उतनी गंभीर नहीं है क्योंकि मातंग समाज विकास की दिशा ओर बढ़ रहा है । इस समुदाय में सभी परिवार एक दूसरे से जुड़े रहते हैं । समाज एक दुसरे को मदद करने में आगे आता है जैसे सामाजिक कार्यो में, विवाह, मृत्यु आदि में सहभागी होकर एक दूसरे के सुख दुःख बाँट लेते हैं ।

अपने लोगों को आर्थिक रूप से, खेती-बाड़ी के मामले में, घरेलु चीजों को लेकर एक दूसरे की मदद करते हैं। सामाजिक कार्यों में एकत्रित होकर कार्यक्रम को सफल बनाते हैं।

मातंग समाज पर हिन्दू संस्कृति हावी हो गयी है लेकिन उस तरह से नहीं है जैसे हिन्दू समाज छुआछूत को मानता है। यह समाज किसी भी समाज के साथ छुआछूत की भावना नहीं रखता है। क्योंकि इस समाज को भी सदियों की गुलामी सहने का अनुभव है साथ ही हिन्दुओं के यहाँ नौकरी करना, मराठों के घर में काम करना इसके बदले में सिर्फ अल्प मात्रा में सिर्फ अनाज दिया जाता था पैसा वगैरह नहीं मिलते थे। इस अनुभव से वे लोग समाज में इस तरह के नियमों को नहीं मानते हैं। उसी प्रकार हिन्दू समाज के विधवा स्त्री को समाज में स्वतंत्रता नहीं रहती थी न ही वह दूसरी शादी कर सकती थी, लेकिन दलित समाज में पहले से ही विधवा विवाह को मान्यता दी गयी है। मातंग समाज में स्त्रियाँ पुरूषों के साथ काम करती हैं चाहे वह खेत का हो या घर का ज्यादातर स्त्रियाँ ही करती हैं। मातंग समाज में स्त्रियों को मान दिया जाता है। सामाजिक कार्यों में स्त्रियों का भी सहकार्य मिलता है। तो हम यह कह सकते हैं कि मातंग समाज के स्त्री-पुरूष मिलकर सामाजिक कार्यों में बड़े पैमाने पर भाग लेते हैं और सामाजिक कार्यों को पूरी निष्ठा के साथ निभाते हैं।

1.2.1. जात पंचायत

मातंग समाज में पहले जात पंचायत थी लेकिन उस समय गाँव का मुखियाँ जो है वह मराठा समाज से कोई भी एक व्यक्ति रहता था। अब इस समाज ने अपने ही समाज के किसी बुर्जुग व्यक्ति के हाथों में मुखियाँ का भार सौंप दिया है। इस समाज में ग्राम पंचायत सदस्य, सरपंच आदि है। गाँव कोठा

यहाँ पर साक्षात्कार में वे लोग बता रहे थे कि यह पंचायत साडे बारह गाँवों की पंचायत है। इस पंचायत का कार्यालय परमडोली गाँव में है। यह तेलंगणा और महाराष्ट्र के सीमा पर है, यहाँ पर दोनों तरफ की पंचायतें कार्य करती हैं और लोगों को दोनों तरफ से योजनाएँ मिलती है। इस ग्राम पंचायत का सरपंच किसी भी जाति का हो सकता है खास बात तो यह है कि यहाँ पर ज्यादातर दलित एवं आदिवासी समाज ही रहता है। इस गाँव के तेलंगाना ग्राम पंचायत के सरपंच मातंग समाज के ही है। इस समाज में जब भी पंचायते होती हैं तब गाँव के मुख्य व्यक्ति सरपंच और कुछ बुजुर्ग इस समस्या का हल निकालते हैं। वाद-विवादों को ज्यादातर मिटाने की कोशिश की जाती है। किसी वाद-विवाद को मिटाने में गुनेहगार को दंड दिया जाता है, अगर वह इस दंड को स्वीकार नहीं करता है तब उसके नाम से पुलिस केस दर्ज की जाती है। वैसे गाँव पंचायत के कार्य गाँव वाले ही मिटाते हैं। गाँव पंचायत के कार्यों को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है -

1.2.2. पंचायत के प्रमुख कार्य

1) अपने समाज के संपूर्ण व्यवहार पर नियंत्रण रखना।

2) लोगों की ओर से परंपरा का पालन करवा लेना।

3) समाज के वाद-विवादों को ज्यादा बढावा नहीं देना।

4) समाज के झगड़े या वाद-विवादों को मिटाना।

5) अपनी संस्कृति का ध्यान रखना।

6) अपने समाज में हो रहे व्यभिचार और अनैतिकता को रोकना।

7) समाज की मर्यादा का पालन करना, या उसका सम्मान करना।

इस तरह से मातंग समाज में जात पंचायत कार्य करती है और समाज भी इन सारी बातों का ध्यान रखता है ।

जात पंचायत में मुख्य रूप से निम्न विषय रहते हैं -

1) खेती-बाड़ी को लेकर झगड़ा ।

2) दारू पीकर झगड़ा करना, गालियाँ देना ।

3) भाई-भाई का झगड़ा ।

4) अपने जाति की इज्जत गंवाना ।

5) एक दूसरे के खेतों में जानवर चराने से वाद-विवाद ।

6) घर में पत्नी को दारू पीकर मारना ।

7) छोटी बड़ी चोरी करना ।

8) माँ-बाप से अपनी जायदात का हिस्सा माँगना ।

9) व्यभिचार करना ।

10) पर पुरूष के साथ संबंध रखने के कारण झगड़ा ।

11) पत्नी को छोड़ना या तलाक देना ।

आदि बातों को समाज में ही सुलझाया जाता है । समाज ऐसे छोट-मोटे झेगड़े में लोगों के सहमती से और गुनेहगार को मान्य होने लायक दंड देते है । उसके परिस्थिति के अनुसार दंड दिया जाता है और चेतावनी दी जाती है कि दुबारा ऐसी गलती न करें । मातंग समाज के जात पंचायत में किसी भी वाद का निर्णय लेते समय दोनों तरफ की बातों को सुनकर उस पर विचार विमर्श

करने के बाद गाँव वालों से राय लेकर ही निर्णय लिया जाता है । गुनाह करने वालों को पैर पकड़ने की सजा भी दी जाती है । गुनाह को देखकर ही दंड दिया जाता है । तलाक जैसे निर्णय लेने में मात्र दुल्हन का मूल्य याने दहेज में दी गयी राशी कुछ चीजें आदि देने के बाद ही छुटकारा मिलता है । इस प्रकार से जात-पंचायत के कार्य होते हैं जिसे समाज सुलझाता है और अंतिम निर्णय भी समाज ही लेता है और यह निर्णय सभी लोगों के सहमती से लिया जाता है । आज भी समाज में इस तरह की जात-पंचायत चलती है और लोग भी समाज में ही सुलझाने को उचित समझते हैं ।

1.2.3. शिक्षा

हिन्दू मानसिकता ने दलितों को शिक्षा से वंचित रखा था । दलितों को शिक्षा नहीं मिली थी । उसी दलितों में यह समाज तो शिक्षा से बहुत ही दूर रहा है । मातंग समाज की शैक्षणिक पृष्ठभूमि आज भी नहीं बनी है और यही एक कारण है कि इस समाज का विकास नहीं हुआ है । मातंग समाज में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत जरूरी है । मैं जब साक्षात्कार ले रहा था तब मधुकर गोपले गाँव कोठ्ठा, जिला आदिलाबाद इन्होंने मातंग समाज की शैक्षणिक प्रगति की बात करते हुए कहा कि मातंग समाज में आज भी लोग अंधश्रध्दा को मानते हैं जिसका मुख्य कारण है अशिक्षा । वह कहते है कि 40-45 प्रतिशत समाज शिक्षा को महत्व देता है बाकी लोग शिक्षा को महत्व नहीं देते हैं । समाज में शिक्षा का प्रसार करना बहुत जरूरी है । जो लोग अंधश्रध्दा आदि को नहीं मानते हैं वे लोग डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में भी सुधार आ रहा

है। जहाँ पर हम लोग गए थे उस गाँव के ज्यादातर युवक शिक्षा ग्रहन करने के लिए शहरों में जा रहे हैं।

उसी तरह मालेपुर गाँव, जिला आदिलाबाद में भी गए थे वहाँ के एक व्यक्ति से बात हो रही थी। जिनका नाम है वाघमारे पिराजी उम्र 72 साल वह कहते है कि हम लोगों को शिक्षा ग्रहन करने का अधिकार नहीं था तब भी मैंने चौथी तक पढ़ाई की थी। उन्होंने अपने गाँव ताजमय ता. अहमदपुर जि. लातुर में पढ़ाई की है। ऐसे व्यक्ति के लिए शिक्षा का महत्व कितना है इस बात का पता चलता है। आज इनका बेटा अध्यापक है। उसी तरह इसी गाँव में बहुत से युवक एम.ए, बी. एड. कर चुके हैं और कुछ नौकरी भी कर रहे हैं। जिसमें सूर्यकांत मेटे, परमेश्वर मेटे यह बी.एड. कर अब अध्यापक की नौकरी कर रहे हैं। आज यह समाज शिक्षा के महत्त्व को जान पा रहा है। जिस प्रकार हम इस गाँव के मातंग युवकों की बात कर रहे थे उसी प्रकार से पहले बताए गए गाँव में भी कुछ लोग सरकारी नौकरी कर रहे है और कुछ युवक पढ़ाई कर रहे हैं- जिसमें है मधुकर गोपले (एम.ए.), राजकुमार गोपले (बी.एड) वर्तमान में सरकारी अध्यापक की नौकरी पर है, व्यंकटी कोटंबे (एम.ए. बी.एड) वर्तमान में अद्यापक की नौकरी पर। विनायक गवाले यह भी (एम.ए. एम.फील, बी.एड.) लेक्चेरशिप आदि। इसी प्रकार मातंग समाज का युवा वर्ग विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने में जुड़ रहा है। एक तरह से शिक्षा के महत्त्व को समझने लगा है।

समाज में पुरूष शिक्षा के साथ-साथ लड़कियों को भी शिक्षा दी जा रही है। आज इस समाज के युवक हर एक क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। समाज में

लड़के, लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करते हुए दिखाई दे रहे हैं। फिर भी अन्य समाज की तुलना में इस समाज में शिक्षा की कमी दिखाई देती है।

1.2.4. घर द्वार

पहले तो मातंग समाज के लोगों को झोपड़ी भी बहुत मुश्किल से मिलती थी। आज इस समाज में झोपड़ी की जगह साधारण घरों ने ले ली है। अब इनके घर लकडियों से बने हुए हैं जिसके ऊपर खपरेल या टीन रहते है। यह गाँव जंगल में रहने की वजह से यहाँ के लोगों के घर अच्छे बने हुए दिखाई देते हैं। इन घरों की दिवारें लकडियों से बनाई गई है जिसे मिट्टी आदि से लिपा-पोती की जाती है। आज तेलंगणा में सरकारी योजनाओं के तहत गरीब लोगों को रहने के लिए अच्छे घर मिल रहे हैं। इंद्रम्मा पद्कम् इस योजना के अंतर्गत सरकार घर देती है और उसे बनाने के लिए कुछ पैसे भी देती है, लोग इस योजना का लाभ उठा रहे हैं और अपने लिए या अपने बच्चों के लिए अच्छे घर बना रहे हैं।

1.3. बलुतेदारी प्रथा तथा महार मांग संबंध

1.3.1. बलुतेदारी प्रथा

भारत एक कृषिप्रधान देश रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में खेती एक मात्र व्यवसाय है। कुनबी याने जमींदार भोली भाली जनता को ठगने का काम करता है। गाँवों में इन जमींदारों का राज चलता है। गांव के चारों ओर कारु और नारु याने दलित जातियों की बस्तियाँ रहती थी। यह दलित जातियाँ भी अपने-अपने जातीय समूह में बटकर रहती थी। कारु याने खेती में काम करने वाला जिसकी मेहनत और कौशल्य के दम पर खेती के व्यवसाय को मुख्य रूप

से सहायता मिलती है । कुनबी याने तत्कालीन समाज का और आज का जमींदार जिसके पास अपनी खूद की बहुतायत जमीन होती है । वह कुनबी बलुतेदारों के उद्योग को मतलब बारह बलुतेदारों को उनकी जाति के अनुसार बलुतं (परिश्रम का मूल्य) देता है । जो दलित जातियाँ जमींदारों के यहाँ काम करती हैं उन लोगों को खेती के उत्पादन में से कुछ हिस्सा दिया जाता है, जो उन्हें उनकी वंश परंपरा की और से अपने हक़ के लिए भेंट के रूप में मिला हुआ है । उसे ही 'बलुतं' कहा जाता है और जो बलुतेदारी कर बलुतं पाते हैं उन बारह जातियों के लोगों को बलुतेदार कहा जाता है ।

जमींदारों को इन बलुतेदारों से लाभ मिलता है । उसी प्रकार इन गरीब लाचार लोगों को भी काम के लिए दर-ब-दर भटकने की बजाय टिक कर काम करने का मौका मीलता है । जमींदार के उत्पादन में से उन्हें उनका हिस्सा बलुतं के रूप में मिलता है । आज आधुनिक कहे जाने वाले इस देश में जहाँ पर धर्मनिरपेक्षता की बात की जा रही है, वहीं पर ऐसा भी समाज जीता है जिनके दरवाजे पर रोज की नई सुबह गरीबी की दस्तक देती है । देश में आज भी इस तरह की गुलामी खत्म नहीं हुई है । कुछ लोग उस परंपरा को मानते हुए लोगों को डरा-धमका कर उनसे गुलामी करवाते हैं । साथ में यह भी एहसास दिलाते हैं कि तुम बलुतेदार हो तुम्हें यह करना ही होगा । यह प्रथा आज भी रूढ़ है, महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्रों में आज भी देखने को मिलती है । खेती के संबंध में हो या फिर जीवन जीने की जरुरतों को पूरा करने वाली इस व्यवस्था को ही बलुतेदारी कहा जाता है ।

आज के दौर में बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था के चलते यह गुलाम बनाने वाली व्यवस्था कमजोर सी पड़ गयी है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि

शैक्षणिक प्रमाण बढ़ने से इसकी जड़े कमजोर पड़ गयी होगी। कुछ क्षेत्र में यह प्रथा आज भी रूढ़ है इसका कारण यही हो सकता है कि वहाँ पर जो पूर्व परंपराएँ, प्रथाएँ रूढ़ हैं उसके मूल में अंधश्रध्दा है । लोगों के जहन में से अंधश्रध्दा ही नहीं जाती तब इस तरह की गुलामी कैसे नष्ट हो सकती है। जिस प्रकार जोतियों का बंटवारा किया गया है उसी प्रकार जमीनों का भी बंटवारा किया जाता है जैसे मराठी में काळी-पांढरी (काली-सफेद) कहते हैं जिसका अर्थ है काली याने गाँव के आसपास की जमीन और सफेद का अर्थ है जहाँ पर गाँव या बस्ती रहती है। हर गाँव की अपनी एक सीमा होती है। इन सीमाओं पर वहाँ के 'क्षेत्रदेवता' गाँव की रक्षा करते हैं इस तरह की धारणाएँ समाज में प्रचलित थी और आज भी है। जहाँ तक गाँव की सीमा फैली हुई रहती है वहाँ तक उस क्षेत्रदेवता, भूतपिशा आदि का बोलबाला रहता है ऐसी समझ समाज में रूढ़ हो गयी थी।

जमींदारों को अपना उद्योग चलाने के लिए या फिर दुनियादारी की जरुरतों को पूरा करने के लिए एक मजदूर की जरूरत थी । तब जाकर जमींदारों ने अपनी खेती के उत्पादन में से कुछ हिस्सा देकर कारु और नारु को गाँव में स्थान दिया। जमींदार के जीवन में कारु की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। उसके बिना जमींदार का आर्थिक दर घट जाता है। खेती से संबंधित जितने भी काम होते है वे सारे काम याने जोतने, उगाई से लेकर फसल निकालने तक के सारे काम बलुतेदार करता है। साल भर काम करने के बाद जो फसल निकलती है उसमें से कुछ हिस्सा इनको मिलता है। वह बारी-बारी से दिया जाता है । इसमें भी मातंग समाज को मिट्टी में समाने वाला अन्न मिलता था, वे लोग उसे ही ले जाते थे। फसल के बाद जो भी मिलता था उसे

ही बलुतं- अलुतं कहते है । बलुतं-अलुतं को अनेक प्रतिशब्द दिए गए हैं – जैसे मराठी में बलुत्या, अलुत्या, आय, घोगरी, पेंढ़ीकाड़ी, सळई, भिकने, शेर, हक्क आदि । (गावगाडा- त्रिबंक नारायण आत्रे)

मातंग समाज के चिंतक प्रभाकर मांडे बलुतेदारी प्रथा जमींदारों जो हैं वे प्रकार से बलुतं देते है इसे विस्तार स्पष्ट करते हैं - “जमींदारों को जिन बलुतेदारों से फायदा होता है उन बलुतेदारों के भी वर्ग बनाए गए हैं । उनके तीन वर्ग है । पहला- सबसे बड़ा, दूसरा- मझला, तीसरे को सबसे छोटा कहा जाता है । इसे व्यवस्था में कुनबी (जमींदार) को प्रतीक के रूप में गाय कह सकते हैं और जो बलुतेदार हैं वे उस गाय के बच्चें हैं । तब गाय के बच्चें बारी-बारी से आकर दूध पिते हैं । जिस प्रकार गाय के बच्चों में जो सबसे पहले आकर दूध पीता है, उसे सबसे ज्यादा दूध मिलता है और उसका पेट भर जाता है, जो बाद में आ जाते हैं, उन्हें पेट भर नहीं मिलता याने वे भूखे रह जाते हैं । इसमें भी ठीक ऐसा ही होता है जिसमें जमींदार को जिससे लाभ मिलता है उसे सर्व प्रथम बलुतं मिलता है और जो बाद में आते हैं उन्हें मिट्टी में मिला हुआ अनाज मिलता है । इसमें गाय, कास और गाय के बच्चें रूपक है ।”[5] इस उद्धरण से यह बात साफ होती है कि दलित जातियों को अपनी मेहनत का हिस्सा भी नहीं मिलता था । फसल की वह मात्रा मिलती थी जो जमीन पर गिर गई हो । मतलब असावधानी में जो गिर जाती है वह फसल । जिसकी मात्रा अत्यंत अल्प होती है । जिसमें मिट्टी ज्यादा और फसल कम होती है । जो मिट्टी के साथ तिनके के रूप में उन्हें मिलती थी ।

बारह बलुतेदारों की सूची तथा उनके काम और काम के बदले में दिए जाने वाला मूल्य याने बलुत :

क्र.	बलुतेदार की जाति का नाम	व्यवसाय तथा काम	मूल्य/पारिश्रमिक
1-	सुतार (बढ़ई)	लकड़ी की वस्तुएँ बनाना, खेती के औजार बनाना, कुल्हाड़ी, फावड़ा, हल आदि के डंडे बनाना आदि ।	पान-सुपारी एक रुमाल और फेटा
2-	लोहार	खेती के औजार बनाना, कुछ बर्तन बनाना, कत्ती, कुल्हाड़ी आदि ।	अनाज- गुढ़, मुंगफली
3-	चमार	लगाम, चमडे की वादी तथा चप्पल जुत्ते आदि बनाना ।	हल चलाने के बदले चार शेर धान्य ।
4.	मांग	झाड़ु बनाना, सहनाई बजाना, हलगी बजाना आदि ।	हर रोज रोटी के टूकड़े, हल चलाने के बदले में चार शेर अनाज ।
5.	महार	स्मशान में लकड़ी जमा करना, मृत्यु की खबर पहुँचाना, मरे हुए जानवरों को ढ़ोना. शादी वगैरह के उत्सव में लकड़ी फोड़ना, गाँव कामगार के नाम से सरकारी कामकाज संभालना आदि ।	इनामों के रूप में जमीन दी गयी है ।
6.	नाई	बाल काटना, हजामत करना, दाढी बनाना, मुडंन करना आदि ।	छोटे बच्चों को नहीं बल्कि घर के बड़े सदस्यों के हिसाब से कुछ रोटियाँ और सालन ।
7.	धोबी	कपड़े धोना आदि ।	कुछ पैसे
8.	कुम्हार	मिठ्ठी के घड़े, मटके आदि बनाना ।	अनाज, गुढ़, मुंगफली
9.	कोळी (कोली)	गाँव के चावड़ी की देखभाल करना, साफ-सफाई करना, पानी भरना आदि ।	फसल के वक्त बलुतं स्वरूप अनाज ।
10.	सोनार	जेवर बनाना, छोटे बच्चों के कानों में बालियाँ आदि लगाना ।	बलुतं और मजदूरी

11.	गुरव	ग्राम देवता के मंदिर धोना, दिया जलाना, उसमें समय समय पर तेल चढाते रहना आदि ।	नौ-प्रकार के अनाज / खाद्य पध्दार्थ ।
12.	जोशी (ग्रामजोशी)	धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्य पंचाग तथा पुराण आदि की जानकारी देना ।	फसल के समय बलुतं इसके अलावा फल आदि और साथ में कपड़े भी ।

देहातों में दो गट विभाजित है प्रथम 'स्पृश्य' और दूसरे भाग में 'अस्पृश्य' आते हैं । देहातों में कितने भी गट या भाग क्यों न हो उनके आपस में अंत संबंध निर्माण हो ही जाते हैं । बलुतेदार अपने उत्तरदायित्त्वों को जानते थे । उनकी संख्या बारह थी । उसी प्रकार ग्रामिण जीवन की हर जरूरतों को पूरा करने वाली जातियों को अलुतेदार या नारु कहा जाता है । बलुतेदारों के अलावा 18 ऐसी जातियाँ है जो अस्पृश्य मानी जाती हैं । वे इस प्रकार हैं- तेली, तांबोळी, साळी, धनगर, शिंपी, माळी, गोंधर्म, डोर्या, भाट, ठाकर, गोसाई, जंगम, मुलानी, वाजंत्री, घड़शी, कलावंत, तराळ और भोई आदि ।

1.3.2. महार और मातंग संबंध

अतीत में मातंग और महार दोनों जातियाँ अलग नहीं थी बल्कि एक ही थी, कालंतर में समाज व्यवस्था ने इनमें कर्म के आधार पर लकीर खींच दी । उसके बाद जो एक थे उनका विभाजन दो रूपों में हो गया जिन्हें अलग-अलग नामों से अभिहित होना पड़ा जिसे आज हम महार और मातंग कहते हैं । इस संदर्भ में 'गावगाड़ा' के लेखक त्रि. ना. आत्रे का कहना है कि "मूल रूप से महार और मातंग यह दोनों जातियाँ महार जाति से अलग होने वाली उपजातियों में से ही होनी चाहिए या फिर उनके पीछे-पीछे आकर उनके साए में रही होगी ।"[6] भारतीय समाज व्यवस्था का आधार ही जाति है जिसमें एक जाति दूसरी

जाति से घृणा करती है। दलित समाज तो पहले से ही समाज से बहिष्कृत रहा है। यह जाति व्यवस्था शहरों में भी उतने ही प्रमाण में देखने को मिलती है जितनी गाँवों में। इन जातियों में भी संघर्ष होते दिखाई देते हैं जिनमें महार और मातंग समाज भी है। इसे स्पष्ट करने के लिए दोनों जातियों की पृष्ठभूमि पर नजर डालनी होगी।

1.3.2.1 महार जातिः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय जाति व्यवस्था में महार मांग जातियों को अस्पृश्य माना गया है। इनमें महार जाति को ग्रामीण समाज की संरचना में बलुतेदारी के साथ साथ वतनदारी भी प्राप्त थी। (वतनदारी का मतलब है जिनको जमीन हो उसे वतनदार कहते हैं। महार जाति को पहले से ही इनाम के रूप में जमीने मिलती थी) ग्राम संरचना में महार जाति के काम इस प्रकार के थे- गाँव की सफाई, मृत जानवरों को ढ़ोना, लाश जलाने के लिए लकड़ियाँ इकठ्ठा करना, किसी शादी विवाह में लकड़ियाँ फोड़ना, मौत की खबर पहुँचाना, गाँव की रक्षा करना और सरकारी अधिकारियों को संदेश देना आदि। इस तरह के कार्य भारतीय परंपरा के अनुसार महार जाति को करने पड़ते थे और यह अनिवार्य भी था।

महार जाति की उत्पत्ति की बात की जाए तो यह ज्ञात होता है कि महार लोग महाराष्ट्र के मूलनिवासी थे और एक समय यह शासन करने वालों में से थे। महार से ही महाराष्ट्र राज्य का नाम रखा गया है यह तर्क शब्दकोशों में मिलते हैं। कहा जाता है कि महारठ्ठ में महार और रठ्ठ इन दोनों शब्दों के साथ राष्ट्र की जाति का संयोग हुआ और उसे महारठ्ठ ऐसा रूप दिया गया तत्पश्चात महाराष्ट्र ऐसा संस्कृतिकरण हुआ ऐसा मत श्रीधर केतकर जी का है। महात्मा फुले के

मतानुसार 'महाअरि' का अर्थ 'महार' है । महारों का राष्ट्र यानी महाराष्ट्र है ऐसा मत प्रकट करने वाले विद्वानों में अलेक्झांडर रॉबर्टसन और मोल्सवर्थ आते हैं । समाज वैज्ञानिक डॉ. दत्तात्रय पुरुषोत्तम खानापुरकर जी ने महारों की प्राचीनता और उनकी सत्ता के विषय में यह कहा है "हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्य जातियों में अगर किसी का शोषण हुआ है तो वे है 'महार' । पेशवा के शासन में गले में मटका बांधने का नियम पारित किया गया था, वह इसलिए कि गाँव में जब भी चलते-फिरते हुए ब्राह्मण नजर आते हैं तब वे महार जाति के व्यक्ति की परछाई से अपवित्र न हो इसके लिए उसे लेट जाना पड़ता था । इतना ही नहीं उसके कदमों के निशान से ब्राह्मण अपवित्र न हो इसलिए महारों को कमर में झाड़ू बाँधकर घुमना पड़ता था जिससे उनके कदमों के निशान मिट सके ।"[7] इस बात से यह पता चलता है कि पेशवा के शासन में जाति व्यवस्था कितनी कठोर थी ।

महारों की कुल देवता मरीआई है ऐसा बताया जाता है । मरीआई का अर्थ मातृभूमि है । मरीआई का स्थान महार वस्ती के आस-पास रहता है । जहाँ महारवाड़ा है वहाँ मरीआई का देवस्थान रहता है और महारवाड़े देश भर में फैले हुए है । गाँवों में महार जाति के लोग अभिवादन करने के ले 'जोहार' कहते थे । लेकिन आगे चलकर इन लोगों ने जोहार करना बंद कर दिया और उसकी जगह पर समता, स्वतंत्रता, बंधुत्ता और स्वाभिमान का पाठ पढ़ाने वाले डॉ. भिमराव अम्बेडकर के नाम में से 'भीम' शब्द लेकर 'जय भीम' के नाम से अभिवादन करने की प्रथा महार जाति में रूढ़ हो गयी । महारों को नागवंश का वंशज बताया जाता है इस बात को डॉ. अम्बेडकर ने अपने ग्रंथ 'अछूत कौन

और कैसे बने’ में यह सिद्ध किया है। उनका कहना था नाग और दास यह दोनों अलग-अलग नहीं है बल्कि एक है। इसके आधार पर समाज वैज्ञानिकों ने महार जाति को नागवंश का वंशज है ऐसा स्पष्ट किया है। नाग लोगों ने गौतम बुद्ध के धम्म को स्वीकार किया और धम्म का उद्देश्य बताते हुए संपूर्ण भारत में धम्म का प्रचार तथा प्रसार किया। इस बात को ध्यान में रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने बुद्ध के धम्म का पूर्ण अध्ययन कर सन् 1956 में विजयादशमी के दिन अपने लाखों अनुयायिओं के साथ बौद्ध धम्म की दीक्षा ली।

1.3.2.2. मातंग समाजः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मातंग समाज प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं का हिस्सा रहा है। एक समय यह राज करने वाली जाति के नाम से जाने जाते थे। कहा जाता है कि मातंग जाति बहुत ही शूर वीर, देशभक्त और राष्ट्रनिष्ट के नाम से महाराष्ट्र के इतिहास में अमर रही है जिसे प्राचीन समाज का ऐतिहासिक वारसा मिला है। राष्ट्र निर्मिति के कार्यों में मातंग समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश की रक्षा के लिए और स्वतंत्रता के लिए मातंग समाज के वीरों के बलिदान के पुरावे इतिहास के पन्नों में मिलते है। हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना में मातंग समाज का बहुत बड़ा योगदान रहा है। प्राचीन काल में शासन करने वाले इस समाज को अनेक प्रकार की कलाएँ एवं कौशल्य का वरदान मिला है। इस समाज को प्रमाणिक, लड़ाकु, जिद्दी और स्वाभिमानी आदि नामों से भी अभिहीत किया जाता है।

मराठी स्वराज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज के किल्ले के निर्माण में मातंग समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है साथ ही अनेक किल्ले जितने में यह समाज लड़ाकु सरदारों के रूप में था जिसे महाराष्ट्र के इतिहास में

देखा जा सकता है । मातंग समाज का अतीत अत्यंत वैभवशाली तथा गौरवशाली रहा है । इस समाज के ऋषि, राजे-महाराजे, शूर वीर योध्दा आदि तथा उनमें पनपने वाली देशभक्ति रखने वाले अपने पूर्वजों से मातंग समाज परिचित था । लेकिन भारतीय जाति व्यवस्था द्वारा निर्मित काल्पनिकता और धर्मांधता की गुलामगीरी की कारण इस समाज में क्रांति की झलक दिखाई नहीं देती है ।

1.3.2.3 मातंगः उत्पत्ति की दंतकथा

'मांग' या मातंग जाति की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं । प्राचीन हिन्दू धर्म के ग्रंथों में जाति वाचक शब्द मिलते हैं । इन धर्म ग्रंथों में सबसे पुराने वेद ग्रंथ ऋग्वेद में 'चंडाल' शब्द का प्रयोग हुआ है । धर्मसुत्र में 'चंडाल' नामक जाति को अस्पृश्य माना गया था । 'मांग' या मातंगों को भी 'चंडाल' का वंशज बताया जाता है । पाली साहित्य के 'सुनिपात' नामक ग्रंथ में 'चंडाल' और 'मातंग' दोनों का एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है । इसके आधार पर विद्वानों ने मान लिया कि चंडाल याने मातंग है । इसी प्रकार संस्कृत में भी 'मांग' या मातंग जाति को 'श्वपच' या 'श्वापक' आदि नामों से अभिहीत किया गया है । उपर्युक्त दोनों शब्दों का उल्लेख महाभारत तथा मनुस्मृति में मिलता है ।

महर्षि वि. रा. शिंदे ने 'भारतीय अस्पृश्यतेचा प्रश्न' (भारतीय अस्पृश्यता के सवाल) नामक अपने इस ग्रंथ में 'मांग' या मातंग जाति के उत्पत्ति की चर्चा कुछ इस प्रकार की है ।

1. 'मांग' मूलतः कोल (कोली) वंश के है ।

2. इस जाति के लिए – माँग, मांग, मंग इस तरह के शब्द दिए गए हैं, मंग का अर्थ है बंदर, इसके आधार पर मातंगों का मंग के रूप में संस्कृतिकरण मान लेना चाहिए ।

3. इ. सं. छठवें दशक के अंत में चालुक्य राजा ने मातंगों पर विजय प्राप्त की थी इस तरह के तर्क बदामी नामक गाँव के मुकुटेश्वर के मंदिर के पास पड़े हुए विजय स्तंभ के शिलालेखों में मिलते हैं ।

4. मुकुटेश्वर = मांग + कुट + ईश्वर - अर्थात् मातंगों के देवता इस तरह का उल्लेख किया गया है । उसी प्रकार मंगेश, शांतादुर्गी, शांतारी, मंगापति, मंगादेवी आदि का संबंध मातंगों के साथ है ऐसा बताया जाता है ।

'मांग' तथा 'मातंग' जाति का उल्लेख 'लिलाचरित्र' में मिलता है । यह ग्रंथ इ. सं. तेरहवें दशक के उत्तरार्ध में लिखा गया है इस ग्रंथ को ज्ञानेश्वरी से पूर्व का ग्रंथ माना जाता है । डॉ. वि. भि. कोलते जी का कहना है – 'ज्ञानेश्वरी' में मांगी नामक शब्द के रूप में मांग जाति की स्त्री का निर्देश मिलता है । 'गोविंदप्रभु चरित्र' में यह उल्लेख मिलता है कि 'मांग' एक अस्पृश्य जाति है साथ में यह भी कहा गया है कि वह गाँव के बाहर रहने वाली जाति है । संत तुकाराम महाराज के अभंगों में 'मांग' जाति का उल्लेख मिलता है । उसी प्रकार महात्मा फुले के लेखन में भी 'मांग' या 'मातंग' जाति का उल्लेख मिलता है । उदा.

मराठीः- मांगास बहुत पिडिले।

सजीव दड़विले गढ़ीच्या पाया।।

लेश उरले उष्टे मागा।

नाही ज्यागती आर्य न्यायात।।

मांगानो, सत्ताविन सकळ कळा।

झाल्या अवकळा पुसा मनाला।।

मांग बधूंनो, तुम्ही राज्यकर्ते आहात।

सत्ता मिळवा।।[8]

हिंदीः- बहुत सताया गया मातंगों को।

जिंदों को दफ़नाया गया।।

लेश मात्र बच पाये थे झूठा मांगने।

फिर भी पूरे ब्रह्माण्ड में न्याय नहीं मिला।।

मातंगों, सत्ता के बिना कुछ भी नहीं।

अब बहुत झेल लिया तुम यह जान लो।।

मातंग भाईयों, तुम सत्ता करने वालों में से हो।

सत्ता प्राप्त करों।।

'अस्पृश्यांचे प्रश्न' (अस्पृश्यों के सवाल) नामक इस ग्रंथ के लेखक माटे श्री. म. जी ने मातंग समाज की उत्पत्ति को लेकर तर्क देते हुए एक दंत कथा प्रस्तुत की है । 'मांग' जांबुऋषि के वंशज माने जाते हैं । जांबऋषि को कुल मिलाकर सात संतानें थी । उनके जेष्ठ पुत्र को शिवजी ने कामधेनु नाम की गाय दी थी उसने उस गाय को काटकर उसका मांस खाया था । जब गाय को काटा गया था

तब उनके कनिष्ट पुत्र वहीं पर उपस्थित थे । उसके शरीर पर रक्त की बूंदे गीरी थी । इस बात की खबर शिव जी तक पहुँच जाती है तब उन्होंने जांबऋषि के जेष्ठ और कनिष्ठ पुत्र को श्राप दिया था । इस श्राप का परिणाम यह निकला कि जेष्ठ पुत्र महार और कनिष्ठ पुत्र 'मांग' बन गएँ ।'

1.3.2.4. महार और मातंगों के बीच संघर्ष की भावना

महार समाज की अपेक्षा मातंग समाज की स्थिति अत्यंत दयनिय थी । मातंग समाज को ग्राम संरचना में किसी भी तरह का स्थान नहीं था, साथ ही उनके पास किसी भी तरह के उत्पादन के साधन नहीं थे । वहीं महार समाज को परंपरा से मिली हुई वतनदारी थी । इसका कारण यह भी हो सकता है कि महार समाज का शासन से या फिर उनके प्रतिनिधियों से संपर्क बना हुआ था । इसके विपरित मातंग को परंपरा ने निम्नलिखित कार्य सौंपे दिए थे जैसे – फाँसी देना, (यह काम चंडाल किया करते थे इसलिए मातंग समाज को चंडाल का वंशज माना जाता है) उसके बाद बलुतेदारी में हिस्सेदारी मिली, इससे पहले यह लोग जंगल में रहते थे । इनमें अलग तरह का धाड़स दिखाई देता है, आगे चलकर यह लोग आश्रय के लिए गाँवों में स्थायी हो गए । कुछ विद्वानों के मतानुसार मातंग समाज वनवासी या आदिवासी है इसीलिए उनके कौशल्य और कार्य पद्धति को देखकर उन्हें गाँवों में प्रवेश मिला था । गाँव में प्रवेश मिलने के साथ-साथ मातंग समाज को बलुतेदारीं में भागीदारी मिल गयी । इस बात से तो हम सब वाकीफ़ हैं कि महार और मातंग दोनों जातियाँ अस्पृश्य मानी जाती है । इन जातियों पर निम्न प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए थे जैसे- मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक उत्सवों, चावड़ी, गाँव पंचायत आदि में बैठने पर निषेध था । जब से मातंग समाज को बलुतेदारी में भागिदारी मिली थी तब से

ही नहीं बल्कि उससे भी पहले से इन दोनों जातियों के एक साथ रहने का जिक्र मिलता है, जिसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही महार और मातंग जातियों में संघर्ष होता दिखाई देता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन दोनों जातियों में कलह उत्पन्न होते थे। मातंगों का स्थान महार की तुलना में कनिष्ठ ही माना जाता है।

महार और मातंगों के विषय में महर्षि वि. रा. शिंदे का कहना यह है कि "अपने देस के मूलनिवासी महार नहीं बल्कि मातंग होने चाहिए। वे आगे कहते है, महाराष्ट्र की राजनीति में, मध्य काल तथा मराठों के शासन में जितना महार जाति का उल्लेख मिलता है उतना अन्य जाति का नहीं मिलता। वे यह भी मानते हैं कि महार और मातंग जाति में आज भी वैर की भावना देखने को मिलती है। जिस प्रकार मराठों ने महारों पर विजय प्राप्त की थी उसी प्रकार क्या मातंगों ने महारों पर विजय प्राप्त की होगी ? महार की अपेक्षा मातंग क्रूर दिखाई देते हैं, सामाजिक संरचना में महारों से भी निम्न दर्जा मातंग समाज को मिला है। इसके पीछे महारों का हस्तेक्षेप होना चाहिए। इस आधार पर महारों को नहीं बल्कि मातंग समाज को इस मातृभूमि का पूर्वज मानना चाहिए। जिन बावन अधिकारों की सूची बनाई गयी थी और यह सूची अनेक बार बनाई गयी है, इसके बावजूद उस सूची में दूर-दूर तक मातंगों का संबंध नहीं मिलता है। इस तरह के जो भी तर्क दिए जा रहे हैं इसके जिम्मेदार वे दोनों भी हैं क्योंकि इन दोनों के आपसी संबंध ठीक नहीं रहे है वे एक दूसरे को शत्रुता की नजर से देखते हैं। अंत में वे कहते हैं महारों ने मातंगों को अतीत में पराभूत किया था जिसके कारण महार समाज आज भी बार-बार अपने अधिकार घोषित करता है।"[9]

इस विवेचन से यह ज्ञात होता है कि महार और मातंग समाज में प्राचीन काल से ही वैर भाव देखने को मिलता है । यह वैर भाव उनमें कैसे निर्माण हुआ होगा इसका कारण यही हो सकता है कि बलुतेदारी में भागीदारी । उसी प्रकार गाँव संबंधों में या गाँवकी के काम को लेकर उनमें संघर्ष चलते आ रहे थे । इसका एक उदा. भी दिया जा सकता है । सन् 1810 की बात है गाँव गराड़े जि. पुणे में एक पंचायत बुलाई गयी थी जिसमें महार और मातंगों का उस पंचायत में यह विषय था जो इस प्रकार था – "कृष्णा नामक व्यक्ति के घर में उसका बैल मर जाता है । उस बैल को सिदनाम गायकवाड नामक व्यक्ति ले जा रहा होता है, तब कृष्णा उसे रोकते हुए यह कहता है कि हम लोगों का महार जाति से किसी भी तरह का संबंध नहीं है और आज से हम ही हमारे मृत बैलों को ले जाते रहेंगे ।"[10] अगर इस संदर्भ को देखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि महार और मातंग इन दोनों जातियों में द्वेष उत्पन्न हुआ था । यह दोनों जातियाँ अस्पृश्य समझी जाती थी और इनमें बलुतेदारी और वतनदारी को लेकर या फिर अन्य विषय को लेकर संघर्ष होते रहते थे । उसके बाद उन दोनों में वाद निर्माण होता था जिसका परिणाम गाँव पंचायत तक ही नहीं बल्कि न्यायालय तक जा पहुँचता था । महार और मातंग जातियों में विशेष कर इन बातों को लेकर संघर्ष होते थे-

1.3.2.5. हक़ के लिए लड़ाई

गाँव कामों में अपने हक़ के लिए महार और मातंगों में संघर्ष होते थे । मरे हुए जानवरों को ढ़ोना यह काम पहले से ही महारों लोग करते थे । लेकिन जब से मातंग समाज ने गाँव में प्रवेश किया था तब से वह अपने हक़ की बात करने लगे थे, इसी कारण इन दोनों में वाद निर्णाण होता रहा है । पेशवा के

शासन में कसबा इंदापुर नामक गाँव में महार और मातंगों में वाद उत्पन्न हुआ था तब एक नियम पारित किया गया था वह यह था कि ‘पड़ पडल ती महारानी न्यावी व आपली जीवनवृत्ति करावी ।’ (पड़ का अर्थ है मृत जानवरों का मांस) अर्थात् जहाँ कहीं भी जानवर मर जाता है तब उस जानवर को महार लोग ले जाएँगे और अपनी उपजीविका चलाएँगे ।

1.3.2.6. बारात निकालने के हक़ को लेकर लड़ाई

महार समाज घोड़े को पवित्र मानता है । इसीलिए वे लोग दूल्हे को घोड़े पर बिठाकर बारात निकालते है, वही मातंग समाज की स्थितियाँ भिन्न थी, हालांकि वर्तमान स्थितियों में बदलाव नजर आ रहा है । पूर्व परंपरा को देखा जाए तो जिस प्रकार महार समाज अपने दूल्हे की बारात घोड़े पर निकाला करते थे वही मातंग समाज अपने दूल्हे की बारात बैलों पर बिठाकर निकाला करता था । इस प्रकार इन दोनों जातियों में इस तरह की परंपराएँ रूढ़ हो गयी थी । यदि ऐसे अवसर पर मातंग समाज का कोई व्यक्ति सम्मान बढ़ाने के लिए अपने बेटी की बारात घोड़े पर बिठाकर निकालता है तो महार समाज अपने आप को अपमानित महसूस करता था । उन्हें ऐसा लगता था कि मातंग समाज के लोग घुसखोरी कर रहे है । इस तरह की छोटी-छोटी बातों को लेकर वाद निर्माण होता था जिससे लड़ाई-झगड़े होते थे । आपस में होनोवाले संघर्ष और बढ़ते हुए द्वेष की वजह मुसलमान शासन है ऐसा वे मानते है उनका कहना है कि मुसलमान शासन द्वारा पारित किए गए नियमों के कारण इनमें वैर भाव उत्पन्न होता है । मातंगों को मानना है कि मुस्लिम शासकों ने महार और मातंग जातियों में वैषम्य को बढ़ाने के लिए महारों को ‘विशेष अधिकार’ दिए थे ।

इसमें सोचने वाली बात यह है कि दोनों जातियाँ अपने अंत संबंधों को नजर अंदाज कर 'उंच-नीच की भावना' स्थापित करने की कोशिश कर रही थी । क्योंकि यह दोनों भी जातियाँ अस्पृश्य जातियों में से है फिर भी इनके बीच इस तरह एक दूसरे के प्रति भेद-भाव की भावना स्थापित करना यह एक प्रकार से तत्कालीन सामाजिक संरचना का परिणाम था । उसे ध्यान में रखते हुए यह दोनों जातियाँ एक दूसरे से घृणा करती हुई दिखाई देती हैं ।

1.3.2.7. गाँवों में होने वाली चोरियाँ

प्राचीन काल में गाँव की रक्षा की जिम्मेदारी महार जाति की थी । गाँव में किसी भी तरह की चोरी होती है तो उस चोर के कदमों के निशान से उसका पता लगाने का काम उनका था, वह किस दिशा में गया होगा और उसे कैसे पकड़ना है इसके लिए महार लोग जाने जाते थे । अगर गलती से वे लोग चोर को नहीं पकड़ पाते तो उन्हें अपनी वतनदारी में से पैसे चुकाने पड़ते थे । इसलिए वे यह मानते थे कि मातंग लोग गुनहगार तथा चोर हैं, चोरी करना इनका पेशा है, इस तरह के वैर भाव को लेकर दोनों में संघर्ष की भावना उत्पन्न होती थी ।

1.3.2.8. मरिआई का उत्सव

यह उत्सव मनाने के लिए हिन्दू धर्म की परंपराओं के अनुसार गाँव के स्पृश्य और अस्पृश्य जातियों को मान दिया जाता था । उस दिन भैंसे को लेकर पूरे गाँव में जुलुस निकाला जाता था, उस समय पूर्व पद्धति के अनुसार महार जाति का व्यक्ति भैंसे और मटके को लेकर आगे रहना चाहिए और मातंग समाज का व्यक्ति पीछे रहना चाहिए यह प्रथा समाज में रूढ़ थी । मरिआई की पूजा

करने के लिए महार समाज में से चार महिलाएँ तथा मातंग समाज से केवल एक महिला रहनी चाहिए ऐसा भी नियम था । जुलुस के पश्चात महार लोग उस भैंसे को हल्दी वगैरह लगाकर पूजा करते थे उसके बाद मरिआई के मंदिर के सामने लाया जाता था और उसके बाद नौ-प्रकार के खाद्य पदार्थ तथा नागवल्ली के पाँच पत्तों से बना हुआ बिड़ा उसके गले में डाला जाता था । उसके बाद गाँव के पाटिल को उस बिड़े को धीरे से काटना पड़ता था, ऐसी प्रथा समाज में बहुत दिनों तक रूढ़ थी । आरंभ में इस प्रथा में ऐसा नियम था कि उस भैंसे को महार समाज का कोई भी व्यक्ति जिसे उस भैंसे की केवल चमड़ी ही काटनी होती थी, उसके बाद मातंग समाज का व्यक्ति उसकी बलि चढ़ाता जिसके अपने नियम थे । मूंडी और धड़ अलग हो जाने चाहिए । यह सब करते समय उनमें झगड़े वगैरह न हो इस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था । इस प्रथा में अगर महार समाज के किसी व्यक्ति के हाथों गलती से भी उस भैंसे की चमड़ी के साथ थोड़ासा भी खून निकल आता है तो कयामत आ जाती है । दोनों समुदायों में झगड़े का वातावरण निर्माण हो जाता है । उस भैंसे की चमड़ी के साथ खून निकलता है तो मातंग समाज अपना अपमान समझ लेता था । बस यही एक कारण काफी हो जाता है जिससे दोनों समुदाय में झगड़ा हो जाता था । अब इस तरह की प्रथाएँ बंद हो चुकी है । अब समाज में परिवर्तन की भावना देखने को मिलती है । दोनों समुदायों में बंधुता की भावना भी झलकती है ।

1.3.2.9. महार-मातंग एकता की आवश्यकता

महारों ने 'गाँवकी' के कार्यों को त्याग दिया था । परंपराओं से मिले हुए मान और हक़ को त्याग देने के बाद महार और मातंग समाज में जो वैर भाव

बना हुआ था एक तरह से नष्ट हो गया। साथ ही साथ इन लोगों में इस तरह का समझौता भी होना चाहिए कि हम जिन बातों को लेकर एक दूसरे से भिड़ जाते थे वह सब व्यर्थ था यह मानकर सब कुछ भुलाकर समाज की पूनर्रचना करनी चाहिए जिसमें समता, स्वतंत्रता और भाईचारे की स्थापना हो सके। एक ऐसे समाज का निर्माण होना चाहिए जिसकी कल्पना बुद्ध ने, मध्यकालीन संतों ने, महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर ने की थी।

स्वाधीनता के बाद डॉ. अम्बेडकर के आवाहन को प्रतिसाद देकर महार जाति ने बौद्ध धम्म की दीक्षा ग्रहन कर धर्मपरिवर्तन कर लिया था। वे हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धम्म के उपासक बन गए थे। लेकिन मातंग समाज के कुछ लोगों ने इस धर्मांतरण का विरोध किया था, इससे पहले भी उन लोगों ने डॉ. अम्बेडकर के आंदोलनों में सहभागीता नहीं दिखाई थी। महाड के चवदार तालाब के सत्याग्रह से लेकर धर्मांतरण तक आते-आते अनेक बार सवर्णों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। उस समय भी मातंग समाज के कुछ लोग डॉ. अम्बेडकर के साथ थे जिस प्रकार डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण दलित समाज के लिए लड़ रहे थे उस प्रकार से मातंगों ने उन्हें साथ नहीं दिया था। उनके नेतृत्व को भी वे स्वीकार नहीं करते थे फिर भी कुछ समझदार लोग आंदोलनों में शामिल हो गए थे।

आज का मातंग समाज अपने समाज के आदर्श लोकशायर अण्णा भाऊ साठे के संघर्ष को भी याद करता है। उनके मार्गदर्शन में सर्व प्रथम डॉ. अम्बेडकर के सपनों का भारत था। लोकशायर अण्णा भाऊ साठे ने अपने भाषणों के माध्यम से मातंग समाज में चेतना जागृत की। उन्होंने इस समाज को अंधविश्वास से मुक्त होने का संदेश दिया। काल्पनिक देवी-देवताओं को

त्यागने की बात कही साथ ही रुढ़ी परंपराओं का भी खंडन किया । इसे ध्यान में रखकर आज का मातंग समाज डॉ. अम्बेडकर की वैचारिकी से परिचित हो रहा है और समाज में परिवर्तन लाने के प्रयत्न भी कर रहा है । आज का मातंग समाज शिक्षा को महत्व देने लगा है । डॉ. अम्बेडकर ने बहुजन समाज को शिक्षा का मूलमंत्र दिया था 'शिक्षित बनो, संघटित हो और संघर्ष करो ।' आज मातंग समाज की शिक्षित युवा पीढ़ी डॉ. अम्बेडकर द्वारा निर्मित समतामूलक समाज की कल्पना कर रही है । आज यह समाज बड़े पैमाने पर बौद्ध धम्म की दीक्षा ले रहा है । एक तरह से हिंदू धर्म को त्याग कर बौद्ध धम्म की ओर अग्रसर होता दिखाई दे रहा है जिसका उदाहरण मानवाधिकार के नेता एकनाथ आवाड का धर्म परिवर्तन है जो 2002 में बौद्ध धम्म की दीक्षा ली थी जो डॉ. आंबेडकर के धर्मपरिवर्तन के बाद पहली बार मातंग समाज के किसी व्यक्ति ने इस ऐतिहासिक घटना को अंजाम दिया था । इसके बाद मातंग समाज के अनेक लोग नागभूमि (नागपूर) में हर वर्ष बौद्ध धम्म स्वीकारते हैं । इससे यह ज्ञात होता है कि आज महार और मातंग समाज में भातृत्व की भावना निर्माण हो चुकी है, जिसकी जरुरत बहुत पहले थी । देर से ही सही लेकिन एकता की आवश्यकता है । आज मातंग समाज गर्व से जयभीम का अभिवादन कर रहा है, तथा अपने घरों में काल्पनिक देवी-देवताओं की जगहों पर बुद्ध, कबीर, फुले, अम्बेडकर तथा अण्णा भाऊ साठे की प्रतिमाएँ लगा रहा है । इस प्रकार से इस समाज में परिवर्तन होता हुआ दिखाई दे रहा है ।

1.4 मातंगों का धार्मिक जीवन

1.4.1 देवी-देवताः-

सदियों से दलित समाज को शिष्ट समाज के मंदिरों में जाने की इजाज़त नहीं थी। ऐसे में मातंग समाज ने अपने देवताओं की पूजा करना शुरू की थी। मातंग समाज के अपने देवता हैं और यह समाज अपने इन देवताओं में विश्वास रखता है जैसे - मरीआई, महाँकाली, रेणुकामाता, आंबिकामाता, पोचम्मा, अनुसया, विठोबा, दत्तात्र्येय, बालाजी, हनुमान आदि देवताओं में मातंग समाज की आस्था है। साथ ही पंढरी की वारी भी करते हैं इसमें भी वे विश्वास रखते हैं। इन देवी-देवताओं के देवस्थान इस प्रकार हैं- मरीआई तथा सटवाई यह दोनों की पूजा खेतों में की जाती है तथा यह देवियाँ एक प्रकार से उनके कुल देवता मानी जाती हैं। इनके अतिरिक्त महाँकाली जिसे वे लोग 'धुरपतमाता' कहते हैं इस देवी का मंदिर महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले में है। 'धुरपतमाता' का शुभ दिन है रविवार है ऐसा बताया जाता है। माहोर नामक गाँव, महाराष्ट्र में ही रेणुकामाता तथा अनुसयामाता का भी मंदिर है। बारड़ इस गाँव में पोचम्मा का मंदिर है। पंढरपुर में विठोबा का मंदिर है जिसकी वारी यह समाज करता है। तुळजापुर में आंबिकामाता का मंदिर है आदि। इसी प्रकार मातंगऋषि से इस समाज की उत्पत्ति मानी जाती है उन्हीं के नाम से 'मार्तंडेश्वर' नाम से चंद्रपुर जिले में एक मंदिर है जो अभी भी अस्तित्व में है लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि इस मंदिर में भी ब्राह्मण पंडित बने बैठे हैं।

मातंग समाज ‘मारूती’ की भी उपासना करता हैं । इस समाज के कुछ देवी-देवताओं के नाम बकरियों एवं मुर्गियों की बली दी जाती है । वहीं कुछ देवी-देवताओं को शाकाहारी ‘निवद’ (नौ प्रकार के खाद्य पदार्थ) दिए जाते हैं । मातंग समाज के लोग विवाह के बाद अपने कुल देवता का आशिर्वाद लेने जाते हैं । अगर कोई बीमार पड़ जाता है तो उस बीमारी को दूर करने के लिए देवी-देवताओं से मन्नत मांगते हुए प्रसन्न होने की याचना करते हैं । अपना परिवार सुख शांति से रहने के लिए मन्नते माँगते हैं, व्रत करते हैं, अपने कुल देवता जहाँ कहीं भी हो वहाँ पर साल में एक बार दर्शन लेने के लिए जाते हैं ।

1.4.2. पर्व त्यौहार

मातंग समाज का अलग से अपना कोई भी त्यौहार नहीं दिखाई देता है । मातंग समुदाय हिंदू धर्म के सभी त्यौहार मनाता है । वैसे तो मातंग संस्कृति एक प्रकार से हिंदू संस्कृति के आधार पर ही चलती है तब तो यह जाहिर है कि इनके त्यौहार भी वही होंगे जो हिंदू समाज मनाता है । जैसे- साल के नये वर्ष के रूप में गुडीपाडवा, आखाड़ी (आषाड़ी एकादशी) नागपंचमी, पोला(बैलोंका त्यौहार), दशहरा, दिवाली, संक्राति, होली आदि ।

1.4.3. खान-पानः-

दलित समाज की स्थिति पहले से ही अच्छी नहीं रही है । तो यह समाज पहले से ही मांसाहारी बन चुका था इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे माँस न खाता हो वे सभी प्रकार के माँस खाता हैं जैसे गौ मांस, सूअर का मांस, बकरी का मांस, मछली, जंगल के प्राणियों का मांस, कुछ पंछीओं का मांस जैसे मोर,

आदि । खेती में उत्पन्न ज्वार, बाजरा, चावल, मक्का, गेहूँ, मुंग, उड़द, अरहर आदि । पुरूष वर्ग शराब का शौकीन होता है ।

1.5 मातंगों की जीवन पद्धति

1.5.1 . जन्मः-

प्रसव के समय दाईन का काम मातंग समाज की महिला ही किया करती थी । आज भी इस समाज में प्रसव के समय वृद्ध महिला दाईन का काम करती है । पाँच दिन तक शिशु के जन्म से लेकर सारे काम करती है । हालांकि अब ज्यादातर अस्पताल में ही प्रसव हो रहे हैं, फिर गाँव की स्थिति को देखा जाए तो गाँव में दाई एक महान वैद्य की भूमिका निभाती है । दाई पाँच दिनों तक बालक और उसके माँ की सेवा करती है । पाँच दिनों तक शिशु की माँ को घर से बहार नहीं निकलने दिया जाता है । बहार जाना भी हो तो उसके साथ एक लोहे का साधन दिया जाता है जिससे भूत-प्रेतों से बच सके ऐसी धारना समाज में प्रचलित है । वह स्त्री पाँच दिनों तक घर में हो या बाहर बिना चप्पल के नहीं निकलती है, झाडु को हाथ नहीं लगाती है, इस स्त्री को पाँच दिन तक तीखा खाना नहीं दिया जाता है उसे सिर्फ सेंवियाँ खिलाते है । जिससे शिशु या बालक को तकलिफ न हो । पाँच दिनों के बाद दाई को उनकी सेवा के बदले में कुछ पैसे और कपडे, चूडियाँ आदि दी जाती है । पाँचवे दिन शिशु की माता दाई की मदत से सटवी[11] की पूजा करती है । घर में घी का दिया जलाकर उसकी आँच से बने हुए धुई से काजल बनाते है और दोनों माँ-बेटे को लगाते हैं । इस तरह से पूजा कर शिशु के सुखी जीवन की प्रार्थना की जाती है । इसी कार्यक्रम में महिलाएँ शिशुगीत गाती हैं –

पाळणाः

पहिल्या दिवसी राजा दरबारी, आला अंशाला असा केतरी ।

बाळ शिवाजी पहिल्या अवतारी । जो... बाळा....जो...जो...रे ..जो । ।

दुसर्या दिवसी चला मंदिरी, केलीया रास नानाई परी,

नाहु घालीती दासी सुंदरी... जो...बाळा...जो...रे....

तिसर्या दिवसी वाजली घंटा, सार्या नगरांमध्ये आंनद मोठा ।

उठा बाया नो सिंतोडा वाटा..... जो...बाळा...जो...जो..रे...

चौथ्या दिवसी केला श्रृंगार, आले तानाजी मामा सैलार,

असे शिवाजी शोभे सरदार.... जो...बाळा...जो...रे... जो

पाचव्या दिवसी पाचवी केली, धन्य आंबिका धाऊनी आली ।

जय प्राप्ति राजाला दिली, जो...बाळा...जो...जो..रे...जो

1.5.2 नामकरणः-

पहले 9वें दिन नौवी मलिनता के समाप्त होने के साथ ही नौवी मनाई जाती है । इसी दिन शिशु का नाम रखा जाता है । लेकिन अब ऐसा नहीं रहा है लोग इन सारी प्रथाओं को नहीं मान रहे हैं जो मानते हैं वे सिर्फ नाम के वास्ते यह सब करते हैं और जब चाहे तब नाम रख रहे हैं । पहले यह सब होता था जिसे पाळणा[12] कहते हैं । इस कार्यक्रम में बालक को झुलें में रखा जाता है जिसमें बुआ का विशेष महत्त्व रहता है । इस कार्यक्रम में अपने रिश्तेदारों एवं गाँव के लोगों को आमंत्रित किया जाता है जिसमें में बालक के नाना-नानी शिशु के माँ-बाप और शिशु को भेंट के रूप में नये कपडे दिए जाते है । इस कार्यक्रम में गाँव की महिलाएँ भी रहती हैं जिसमें वृद्ध महिलाएँ कुछ नियम भी बताती हैं

जैसे वे सबसे पहले शिशु को उसकी बुआ की गोद में रखते है और बुआ उस बच्चे के कान फूँकती है तब वहाँ पर महिलाएँ ऊपर से बुआ को मारती हैं जो एक प्रकार का विनोद करते है। वे पसंद आने के पश्चात वृद्ध महिलाएँ उस नाम से गीत गाती है। इस प्रकार से नामकरण का कार्यक्रम संपन्न होता है। दलित समाज में यह प्रथाएँ आज भी कायम है। जिसमें समाज और रिश्तेदार एकत्रित होने के लिए इस तरह के कार्यक्रम किए जाते हैं। जब यह कार्यक्रम चलता है तो उपस्थित महिलाएँ पाळणे के गीत (झुले में डालकर गाए जाने वाले गीत) गाती हैं जो पाँच प्रकार के होते हैं जिसके आधार पर उस शिशु का नाम रखा जाता है

"पहिल्या दिवसी जन्मलं बाळ।
उजेड़ पड़ला तिनई ताळ
बाळ जल्मले हिन्दुला काळ
जो..... बाळा... जो ... जो.... रे.... जो।।धृ।।"

"बाळाला झोके द्या गं हाती धरूनी दोरी
पाळण्यात आहे माझी लाखाची तिजोरी
मंदा-वंदा-कुंदा झोके द्या गं कुणी, म्हणुनिया गाणी,
पाळण्यात आहे माझी लाखाची तिजोरी
बाळा जो...जो...रे..बाळा...जो...जो...रे ।।धृ।।"

"त्यात छकुला माझा चिमुकला
दिसते किती तरी देखना,

हळु-हळु हलवा गं सोनुल्याचा पाळणा ।

वरत खाली पाय हलवते

केविलवाणी का पाहते,

देवा माझा प्रिय बाळाची पूर्ण करावी कामना

हळुहळु हलवा गं सोनुल्याचा पाळणा,

बाळा जो...जो...बाळा...जो...जो ।।धृ।।

1.5.3. जावळ (मुंडन)

मातंग समाज में इस प्रकार के कार्यक्रम किए जाते हैं । समाज में प्रचलित विश्वासों के अनुसार ये लोग पुत्र के जन्म के पश्चात अपने देवी-देवताओं को मन्नत माँगते हैं कि मैं फलां-फलां अपने पुत्र का मुंडन आपके दरबार में करना चाहता हूँ । उदा. के लिए ज्यादातर लोग तिरूपति बालाजी और महाँकाली (चंद्रपुर, महाराष्ट्र) की मंदिरों में जाकर मुंडन करने की मन्नते माँगते हैं । यह शिशु जन्म के पश्चात होता है और उसके सात-आँठ महीनों बाद , एक साल के बाद भी करते हैं यह घर वालों पर निर्भर करता है कि वे कब करना चाहते हैं । इस कार्यक्रम में बच्चे के 'मामा' को पहले बच्चे के दस-बारह बाल काटने पड़ते है उसके बाद नाई मुंडन करता है ऐसी प्रथा है । जब तक मामा बच्चे के बाल नहीं काटता तबतक उसे मुंडन नहीं कहा जा सकता । सगा मामा न हो तो मुँह बोले भाई को यह काम करना पड़ता है । उसके बाद बच्चे के बालों को पानी के पत्तल में रखते है और उसे कहीं छुपाते है या फिर गाढ़ देते है । गाँव में कर रहे हो तो नाई को कुछ पैसे दिए जाते है । अगर महाँकाली मंदिर के नाई की बात करें तो वहाँ के नाई वहाँ पर आने वाले लोगों से बहुत पैसे

लूटते हैं । ऐसे समय पर लोग पैसों को नहीं देखते हैं वे जितने माँगते हैं उतने पैसे देकर करवाते हैं । यह मुंडन होने के बाद वे अपने गाँव में गाँव भोज देते है । इस तरह से मुंडन की प्रथा आज भी बनी हुई है । लेकिन कुछ लोग अपवाद है जो हिंदू धर्म को नहीं मानते है वे इस तरह के कार्यक्रम करना पसंद नहीं करते है ।

1.5.4 . विवाहः-

मातंग समाज में विवाह प्रथा हिंदू संस्कृति के अनुसार चलती आ रही है । मातंग समाज में भी उपजातियाँ है जो एक दूसरे से विवाह करने में संकोच करते हैं जैसे- तेली मांग, गारूड़ी मांग, ढोल्या मांग, पेंड्या मांग आदि । पहले यह उपजातियाँ एक दूसरे से रिश्ते जोड़ने में भेदभाव करते थे । लेकिन आज के दौर में इन लोगों में बदलाव आ रहे हैं और वे अपनी उपजातियों में विवाह कर रहे हैं । इस समाज में उपनामों को देखकर शादी की जाती है । दोनों उपनाम मिलते हैं तो वे अपने भाईचारे का सम्बध जोड़ते हैं । इस समाज में मामा की लड़की के साथ शादी की जा सकती है और बुआ के लड़की के साथ भी शादी हो सकती है । विवाह के लिए उम्र को भी ध्यान में रखा जाता है जहाँ लड़कों के लिए 18 साल से 25 साल तक वही लड़की के लिए 18 साल से 20 साल की उम्र निर्धारित होती है । पहले ऐसी प्रथा थी कि वे लोग बच्चे के जन्म से रिश्ता तय किया करते थे । लेकिन अब ऐसा नहीं किया जा रहा है क्योंकि समाज विकासोन्मुख होता जा रहा है और बच्चों के भविष्य की फिक्र करने लगा है ।

विवाह के कई चरण होते हैं जैसे लड़की देखना, मंडप डालना, हल्दी लगाना, मंगलाष्टिका आदि । पहले तो घर के बुजुर्ग लड़की देखने जाते थे, उन्हें पसंद आने के बाद वे रिश्ता तय करते थे । दोनों तरफ के बुजुर्ग लोग रिश्ते तय

करते थे, लेकिन अब बदलते युग में लड़का जाकर लड़की पसंद करता है फिर घरवालों को भेजता है । लड़के वालों को लड़की पसंद आने के बाद फिर एक बार लड़की वाले लड़के के घर आते हैं और घर-दार आदि देखकर रिश्ते की बात करते हैं । दोनों तरफ के लोगों के पसंदी के बाद यह बाते होती है कि दहेज कितना देना है, दहेज के अलावा और क्या देना है और लड़की वाले भी पूछते हैं कि लड़की को क्या दिया जाएगा जैसे गहने आदि की बात करते हैं । बात चीत में दोनों पक्षों की सहमती के बाद विवाह की तारीख निकाली जाती है ।

सारी बाते तय होने के बाद दूल्हे वाले अपने सगे संबंधियों और गाँव वालों के साथ दुल्हन के घर जाते हैं । वहाँ पर दुल्हन को दूल्हे के ओर से नये कपड़े दिए जाते है जिसके बाद दुल्हन अपने रिश्तेदारों के साथ बैठ जाती है । एक बात और दुल्हन को दूल्हे के पक्ष की ओर से दिए गए कपड़े और दुल्हन बनाने के पहले ही यह एक धारणा इस समाज में प्रचलित है कि दुल्हन का मामा सबसे पहले दुल्हन बनाने की सारी चीजें भेंट स्वरूप देता है जिसमें कपड़े तथा गहने आदि । दुल्हन को पाँच महिलाएँ हल्दी लगाती हैं उसके आँचल में पाँच प्रकार के धान्य बाँधती हैं । बुआ या बहन या फिर भाभी इस विधि की शुरूवात करती हैं । शादी के एक दिन पहले दुल्हन को दुल्हे के घर ले जाया जाता है । यहाँ आने के बाद उन्हें हल्दी लगाई जाती है जिसे हल्दी का ही कार्यक्रम कहते हैं । इसके साथ ही शादी होने तक दुल्हा-दुल्हन को पाँच-छः बार नहाया जाता है और नहलाते हुए महिलाए गीत गाती हैं । इस तरह के गीत शादी खत्म होने तक गाए जाते हैं । विवाह के वक्त दुल्हन का मामा दुल्हन को मंडप में ले जाता है । इसके बाद लोगों में अक्षत[13] बाँट दिए जाते हैं । उसके बाद मंगलाष्टिका ली जाती है और विवाह संपन्न हो जाता है । मातंग समाज में आज भी हिन्दू धर्म की तरह ही विवाह विधि संपन्न होती है । लेकिन कुछ

अपवाद भी है जो जागृत हो गए हैं वे लोग हिन्दू धर्म के अनुसार शादी नहीं कर रहे हैं बल्कि बौद्ध धर्म के अनुसार शादी कर रहे हैं । विवाह विधि में दूल्हे और दुल्हन को मंडप में बैठाया जाता है । उसके बाद दूल्हा दुल्हन के गले में मंगलसुत्र बाँधता है । वहाँ उपस्थित लोग दूल्हा दुल्हन को आशीर्वाद के रूप में अक्षत डालते हैं और उनके सुखी दाम्पत्य जीवन की प्रार्थना करते है । बाद में वहाँ पर उपस्थित लोगों को भोजन दिया जाता है उसी के साथ दूल्हा-दुल्हन को तरह-तरह के उपहार दिए जाते है । शादि के बाद दुल्हन की गोद भरायी जाती है जिसमें दुल्हन की साड़ी के पल्लू में सूखा नारियल, तांबुल, सुपारी, हल्दी, खजूर, बादाम आदि डाले जाते हैं । इस प्रकार मातंग समाज में विवाह होते हैं । सामान्यतः यह विवाह पद्धति हिन्दू पद्धति ही है इसमें कुछ भी फर्क नहीं है तथा यह कह सकते हैं कि मातंग समाज में हिन्दू प्रथा एवं परम्परा का मिश्रण है ।

1.5.5 मृत्युः-

मातंग समाज में अंधश्रध्दाओं के चलते और हिन्दू संस्कृति के हावी होने के कारण समाज में आज भी उसी प्रकार की प्रथाएँ और अनुष्ठानों को माना जाता है जैसे कि हम पहले भी इस बात की चर्चा कर चुके है कि बड़े पैमाने पर मातंग समाज में अंधश्रध्दा फैली हुई है जिसका एक मात्र कारण है अशिक्षा । इस तरह की अंधश्रध्दाएँ और अनुष्ठान, प्रथाएँ हिन्दू समाज द्वारा मातंग समाज ने ग्रहण की है । आज भी यह समाज इन सारी बातों से उभर नहीं पाया है । इसी के अनुसार यह समाज उन्हीं परंपराओं को आगे बढ़ा रहा है जैसे की मृत्यु के संस्कार हो, शादी ब्याह हो, देवीदेवताओं में विश्वास रखना आदि बातों को

पूरी निष्ठा के साथ निभाता है जिसमें हम मृत्यु के संस्कारों को इस प्रकार से देख सकते हैं-

जब घर में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब गाँव वाले उस व्यक्ति के अंतिम संस्कार की तैयारी इस प्रकार करते हैं- सबसे पहले तो मृतक को नहलाया जाता है, उसी तरह नए कपड़े पहनाए जाते है, उसके बाद उस व्यक्ति को ताटी[14] पर लेटाया जाता है । पहले तो इस तरह के साधन नहीं होते थे तो उस मृतक को पुरानी चार पाई को उलटा कर उस पर लेटाया जाता था और स्मशान में ले जाकर जलाते थे या फिर दफ़नाते थे । इस में यह भी होता है कि अगर मृतक शादी-शुदा हो तो उसे जलाते है और अविवाहित हो तो उसे दफनाते है । मृतक को ताटी पर लिटाया जाता है और बारी-बारी से चार व्यक्ति अपने कंधो पर लेकर उस ताटी को स्मशान तक ले जाते हैं । उसके पीछे-पीछे सभी लोग और रिश्तेदार मुरमुरों में पैसे मिलाकर शव के उपर फेंकते हुए स्मशान तक जाते हैं । उसके बाद चिता को मुखाग्नी दी जाती है या फिर दफ़नाया जाता है ।[15] स्मशान से लौटने के बाद कोई भी व्यक्ति स्नान करने से पहले न घर में प्रवेश नहीं कर सकता है और न ही किसी को छूता है, न छूने देता है । गाँव में और भी एक नियम यह है कि जब तक शव को गाँव के बहार नहीं लेकर जाते हैं तब तक गाँव का कोई भी व्यक्ति अपने घर में पानी की एक बूँद तक नहीं लाता है । यह प्रथा समाज में आज भी है ।

उपर्युक्त प्रथाओं के अतिरिक्त और भी प्रथाएँ समाज में रूढ़ है । जैसे मृत्यु के बाद लगातार दो दिन एक लोटे में दूध और मृतक के पसंदीदा पदार्थ लेकर स्मशान में जाते हैं और जब तक उस लोटे को कौआँ आकर नहीं छूता या दूध नहीं पिता तब-तक कोई भी व्यक्ति घर लौटकर नहीं आता है कौआँ छूने या पीने

के बाद उसी लोटे में राख डालकर ले आते है । वहाँ से लौटने के बाद मृतक के बड़े बेटे को मुंडन करना पड़ता है ।

मातंग समाज में तेरहवीं (मृत व्यक्ति के शोक में तेरहवें दिन मनाई जाने वाली विधि) मनाई जाती है । तेरहवीं के पहले दिन लाई गयी राख को एक जगह रख कर पूजा करते है और तेरहवें दिन उस राख पर निशान दिखाई देते है, कहते है कि मृतक व्यक्ति के दूसरे जीवन के चित्र उस राख पर दिखाई देते है जैसे वह जानवर बनता हो तो उसका चित्र, साँप बनता हो उसका चित्र, इन्सान बनता हो तो पैर के निशान आदि । इस प्रकार से उन लोगों का विश्वास है । तेरहवीं के दिन मृतक के संबंधि उनके घर पर एकत्रित होते हैं । मृतक का बेटा उनकी समाधि की पूजा करता है । बहन तथा बहनोई के तरफ से उस व्यक्ति को नये कपड़े प्रदान किए जाते हैं । इस तेरहवीं की विधि में गाँव भोज दिया जाता है । उसके बाद पूरी रात जागने के लिए लोग भजन आदि का कार्यक्रम रखते है जिसमें सामाजिक गीत भी गाते है और मृतक के संबंधित कुछ गीत गाते हैं । इस तरह से यह विधि संपन्न होती है ।

1.6 मातंग समाज का पारंपारिक व्यवसाय

मांग समाज को हिन्दू धर्म का घटक माना जाता है । इस समाज का रिश्ता यहाँ की ग्रांम संस्कृति तथा कृषि संस्कृति से जुड़ा हुआ है । भारतीय समाज संरचना में मनोरंजन तथा अत्यंत हीन माने जाने वाले कार्य शूद्रों को दिए गए थे । इसी भारतीय परंपरा के अनुसार मातंग समाज ने अपने वाद्ययंत्रों के माध्यम से लोगों का मन बहलाने का काम किया है । अंग्रेजों के शासन में मातंग समाज ने अपने अलग-अलग तमाशे के गट निर्माण किए गए थे जिसमें से शायरी का जन्म हुआ जो आगे चलकर क्रांतिकारी जलसे में रूपांतरित हो गयी

थी और आज के दौर में भी क्रांतिकारी जलशे देखने को मिलते हैं। हालांकि उसके संदर्भ बदले हुए नजर आ रहे है। वर्तमान समय में मातंग समाज इस परिवर्तन की प्रवाह की धारा में शहरों की ओर स्थलांतरित हो रहा है। लेकिन भारतीय परंपरा की तहत मातंग समाज का अपना एक स्वतंत्र्य व्यवसाय रहा है। इस समाज की महिलाएँ भी अपने पति के काम में हाथ बटाती है, आरंभ में कुछ महिलाएँ मेहनत मजदूरी करती थी, केरसुनी (झाडू) आदि बनाना मातंग समाज की महिलाओं का मुख्य व्यवसाय था। खेती के काम में उपयोग में आने वाली सारी चीजें जैसे हल आदि का सामन, जमींदारों तक पहुँचाने का काम मातंग समाज करता था। इसके साथ-साथ झाडू तैयार करना, बाँस की लकड़ियों से कुछ चीजें तैयार करना, जैसे टांटवे टोकरियाँ आदि। इसके आलावा वाद्ययंत्र बजाने में यह समाज प्रवीण था और आज भी है। 'हलगी' बजाना इस समाज का प्रमुख व्यवसाय माना जाता है।

वंश परंपरा के अनुसार वाद्ययंत्र बजाने की यह कला इस समाज ने अपने कठोर परिश्रम से ग्रहन की है। विवाह तथा अन्य उत्सवों में शहनाई, 'हलगी' आदि बजाने का काम यह समाज करता है। मातंग समाज पहले से ही एक प्रसिद्ध कलावंत के नाम से जाना जाता है। गीत गाना तथा वाद्य बजाने की कला मातंगों में प्रखर रूप में दिखाई देती है। इसी संदर्भ में गाँवों में एक उक्ति प्रसिद्ध है- 'बामणा घरी लिवणं काय, मांगां घरी गाणं काय।' (अर्थात् ब्राह्मण के घर में लिखना और मांगों के घर गाना) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मातंग गीत-गानेवाले कलावंत है। इस समाज ने मनोरंजन कर समाज का मन बहलाने का काम पीढ़ी-दर-पीढ़ी से किया ही है। लेकिन आज के उत्तर-आधुनिकता के दौर में मातंग समाज का यह पारंपारिक व्यवसाय डुबता हुआ

नजर आ रहा है । समय के साथ साथ परिस्थितियाँ भी बदल जाती है जिसके कारण समाज के व्यवसाय की स्वरूपता भी बदल जाती है । मातंग समाज के साथ भी यही हुआ है । इस तांत्रिक युग में नए-नए वाद्ययंत्र संगीत के क्षेत्र में आ चुके हैं जिसे यह लोग सीख नहीं पा रहे है क्योंकि उनकी उतनी हैसियत नहीं है कि वे सारी चीजें खरीद ले या सीखे । आर्थिक परिस्थिति के कारण वे लोग यह सब नहीं कर पा रहे हैं । जिसके चलते इस समाज का पारंपारिक व्यवसाय नष्ट होता हुआ दिखाई दे रहा है । जिसका एक मात्र कारण यह है कि मातंग समाज आर्थिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर पड़ गया है । अब यह जरुरी हो गया है कि मातंग समाज को आर्थिक और शिक्षणिक रूप से मजबूत होना चाहिए ।

1.6.1 खेती

मातंग समाज का मुख्य व्यावसाय खेती ही है । इस गाँव में याने 'कोठ्ठा' और 'मालेपुर' इन दोनों गाँवो में मैंने क्षेत्रकार्य किया है जो आदिलाबाद जिले के अंतर्गत आते हैं । इन दोनों गाँवों में मैंने यह पाया कि ज्यादा तर लोग खेती ही करते हैं । कुछ लोगों के पास अपनी जीविका चलाने के लिए अल्प मात्रा में ही भूमि होती है । इसलिए वे लोग दूसरों के खेतों में मजदूरी करने के लिए भी जाते हैं । यहाँ के लोग अपने खेतों में निकलने वाले फसल की बिक्री नारनूर, आदिलाबाद जैसे शहर के बाजारों में बिक्री करते हैं । वे अपने दयनिक क्रिया-कलापों की वस्तुओं को खरीदने के लिए नारनूर (जिला आदिलाबाद) जैसे शहरी हाटों में जाते हैं । इसके अलावा मातंग समाज में पुरूष वर्ग अपनी परंपरा को निभाता है । जैसे वे लोग शादी-विवाह के समय बँड बजाने का काम भी करते हैं जो यह उनका मूल व्यवसाय भी था । वे लोग इसे आज भी निभा

रहे हैं । इससे भी उन्हें आर्थिक मदद मिलती है । आज इस समाज का यह व्यावसाय कोई भी एक साहुकार कर रहा है और उन्हें सिर्फ एक रोज का वेतन देकर बाकी का हड़प ले रहा है । इस तरह से इस मातंग समाज के व्यावसाय से भी वे लोग अपनी ऊँची-ऊँची इमारते बना रहे हैं ।

मातंग समाज के लोगों के पास उतनी अच्छी जमीन नहीं हैं । कुछ लोगों के पास हैं । इसी जमीन से वे अपने परिवार का गुजारा करते हैं और मजदूरी भी करते हैं । वे अपने खेतों में मुख्य रूप से कपास, ज्वार, बाजरा, तुव्वर, मूँग, उड़द, सूर्यफूल, सोयाबीन मिर्ची आदि की खेती करते हैं । यह समाज बैलों के बल पर खेती करता है । भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत होता है, कभी-कभी वे लोग किसी दूसरों के साथ भी उसकी खेती में भागीदारी से खेती करते हैं । पारम्पारिक रूप से खेती करते हुए वे लोग यंत्रों का भी प्रयोग कर रहे हैं ।

1.6.2. पशुपालन

मातंग समाज पशुओं का पालन करता है । वे लोग गाय, बैल, बकरी, मुर्गा कुत्ता आदि पशुओं को मुख्य रूप से पालते हैं । बैलों का उपयोग वे लोग खेती के लिए करते हैं । गाय से दूध एवं गोबर प्राप्त होता है, साथ ही बैलों की भी मदद होती है । मुर्गे और बकरियाँ मुख्य रूप से आर्थिक सहायता के लिए होते हैं तथा मांसाहार के लिए भी पाले जाते हैं । कुत्तों को वे लोग वफादार पशु के रूप में पालते हैं और खेत में ले जाते है ताकि बंदर आदि खेतों में आकर फसल कराब न करें जिसके लिए उनके कुत्ते बड़े काम में आते हैं ।

1.6.3. मजदूरी

मातंग समाज में गरीबी बड़े पैमाने पर नजर आती है । इस गरीबी के कारण और जमीन अच्छी न होने कारण कई लोगों को मजदूरी के लिए जाना पड़ता हैं । मजदूरी करने के लिए वे लोग दूसरों के खेतों में या किसी दूसरे काम के लिए भी जाते हैं जैसे- रस्ता बनाने का काम हो जंगल कटाई का काम हो आदि करते है । पुरूष लोगों में अलग-अलग काम हैं । वे लोग अच्छी कलाओं से वाखिफ़ हैं वे लकड़ियों का काम करते है जैसे दरवाजे बनाना, खिड़कियाँ बनाना, पलंग बनाना आदि काम करते हैं । इन लोगों में से कुछ लोग गन्ना तोड़ने के लिए बाहर गाँव में जाते हैं, यह काम दिवाली के बाद चार-पाँच महीने के लिए करते हैं । मिर्ची तोड़ने के लिए भी जाते हैं, ईंट भट्टों पर भी जाते हैं, शक्कर के कारखानों में भी जाते हैं । इस प्रकार से मातंग समाज में मजदूरी के लिए जाते हैं । आज तेलंगना में रोजगार हामी चल रही है जिससे लोगों को मदद मिल रही है ।

1.7 मातंगों की उपजातियाँ

एक प्रकार से देखा जाए तो भारतीय संस्कृति में दलितों की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है । भारत के दलित और आदिवासी बहिष्कृत रहे हैं । दलित जो है वह समाज से बहिष्कृत रहा है और आदिवासी सभ्यता से बहिष्कृत है । महाराष्ट्र में दलित शोषितों में महार और मातंग यह दो जातिया ज्यादातर शोषित रही थी । सदियों से चतुर वर्ण व्यवस्था ने इन जातियों पर जूल्म ढाए हैं । हिन्दू संस्कृति मातंग समाज पर हावी हो गयी है । इस समाज ने सदियों से अन्याय और अत्याचार सहे है और आज भी महाराष्ट्र के कुछ भागों में

इन लोगों पर अत्याचार हो रहे हैं । यह समाज ऐसे अन्यायों को एक तरफ सहता रहा है वही दूसरी ओर उन्हीं परंपराओं को मानता भी है । महाराष्ट्र में इस समाज पर राज करने वालों में मराठा, ब्राह्मण, कोमठी आदि थे । मातंग समाज ने इन जातियों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलामी की है । इस गुलामी संस्कृति का उदय महाराष्ट्र से ही माना जाता है ।

पेशवे कालीन राज में इन लोगों को पहचान ने के लिए अलग से उनके साधन बना दिए गए थे । वैसे तो पेशवाई शासन में हि दलितों पर अत्याचार करने की पहल चली थी । इस पेशवा साम्राज्य ने दलितों के पहचान के लिए और उनसे अपवित्र होने से बचने के लिए इस समाज को कुछ इस तरह गुलाम बना दिया था कि वे उसे अपना अधिकार समझकर अपना रहे थे या भयभित थे । दूसरे बजीराव पेशवाई राजा ने महार और मांग जाति को शूद्र कहकर उन्हें थूकने के लिए उनके गले में मटका और उनके पैरों की धुल उनके साथ ही चली जानी चाहिए जिसके लिए उनके कमर में एक झाड़ु बांध देने का आदेश दिया था जो नहीं मानेगा उसे घोर यातनाएँ दी जा रही थी । यह गरीब और निसहाय लोग उस प्रथा को अपना रहे थे । पेशवाई शासन 'मांग' और 'महार' जाति के लोग रस्ते पर चलने से भी अपवित्र हो रहा था, वे लोग जमीन पर थूंकने से भी अपवित्र हो रहा था । जिसके लिए इस शासन में इस गरीब जनता पर बंधी बनाई गयी । इतना ही नहीं इसी राज में मातंग समाज को लोग दूर से पहचाने जाने चाहिए जिसके लिए उनके हाथ में काला धागा बांधने का भी नियम बनाया गया था, इस नियम को आज भी कुछ अंधश्रध्दा पालने वाले मातंग समाज के व्यक्ति बखुबी निभा रहे हैं । इस तरह से पेशवाई शासन में मातंग समाज पर थोपे गए नियमों से इन लोगों को अपनी संस्कृति गवानी पड़ी

और साथ ही गरीबी इनके दरवाजे पर दस्तक देने लगी। इस प्रकार इस समाज को सभ्य समाज ने बहिष्कृत किया और अपनी संस्कृति को भूल जाने के लिए मजबूर किया गया।

मातंगों की अपनी संस्कृति थी जो मांगलिश राजघरानों से संबंध रखती थी। इस मांगलिश राजाओं में ऐसे योध्दा थे जो अपने राज में जनता के कल्यान का ध्यान रखा करते थे। इन राजाओं को ब्राह्मण मानसिकता ने या राजाओं के षड़यंत्र रचकर उन्हें हराया और गुलाम बनाया। इसी तरह बौद्ध काल में भी मातंग समाज के राजा थे जो जनता के हीत में रहते थे। इससे यह पता चलता है कि यह संस्कृति बहुत ही पुरानी है। बताया जाता है कि बौद्ध काल में प्रसिद्ध राजा बिंबिसार और राजा प्रशांतजित यह दो राजा मातंग समाज से थे, ऐसे पुरावे मिलते है जो मुझे साक्षात्कार में भी श्री. मधुकर गोपले ने इस विषय में यह बताया कि बौद्ध कालीन राजा प्रसनजीत और राज बिंबिसार का संबंध मातंग समाज के साथ है।

मातंग समाज महाराष्ट्र से संबंध रखता है। क्योंकि मातंग कहने से हमें संकेत मिलता है कि यह महाराष्ट्र के मांग है। इसी जाति को अलग-अलग नाम दिए गए है जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। महाराष्ट्र के मातंग जातियों में 12 उपजातियाँ देखने को मिलती है। यह उपजातियाँ ब्रिटिश शासन में बनाई गयी है। वे सब मातंग ही थे लेकिन उन्हें डर के मारे अपने नाम अलग-अलग बताने पड़े थे। ब्रिटिश शासन महाराष्ट्र में लागु था तब की यह बात है उस समय मराठों ने एक साजिश रची थी जिसके तहत इन लोगों को अपनी ही जाति के अलग-अलग नाम बताने पड़े। यह साजिश थी कि मराठो आदि ने मातंग समाज को चोर घोषित किया और ब्रिटिश सरकार से गुजारिश की कि इन

लोगों को पकड़कर उम्र-कैद की सजा दी जाए, क्योंकि ये लोग हमारे खेत लुटते है आदि । जाहिर सी बात थी जिन लोगों की जमीन जायजाद आदि छिनकर उन्हें भिकारी बना दिया गया हो और फिर उन्हें मजदूरी भी न मिल रही हो तो वे बेशक चोरियाँ करने लगे थे । ऐसे में अंग्रेजों ने इस जाति के लोगों को पकड़ना शुरू किया जो मिलता उसे वे लोग मारते पिटते और कैद कर देते थे । जब कोई मिलता था तो पहले उनसे पूछते थे कि तेरी जात कौनसी है वह 'मांग' या 'मातंग' कहते ही उसे पकड़ लेते थे चाहे वह चोरी करे या न करें । तब इन लोगों को एक सुझाव यह मिला कि सिर्फ मातंग नहीं उससे कुछ जोड़कर कहते है । तो तब से वे लोग होशियार हो गएँ और पुलिस पकड़ते ही कहने लगे कि साहब मैं 'मांग' नहीं मैं गारूड़ी मांग हूँ, फलाँ हूँ, मैं तेली मांग हूँ,मैं ढोली मांग हूँ आदि इस प्रकार से इस जाति में उपजातियाँ बनी जो आज भी अस्तित्व में है ये सारी जातियाँ महाराष्ट्र में पाई जाती हैं ।

मातंग समाज की उपजातियाँ

1. 'मांग' (आज के सुधारणावादी समाज की मातंग जाति)[16]
2. गारूड़ी मांग
3. पेंडे मांग
4. होलार मांग
5. डोम्बारी मांग
6. डक्कलवार मांग
7. कुक्कलवार मांग

8. मादिगा मांग

9. ढोल्या मांग

10. तेली मांग

11. रामोशी मांग

12. काकरी मांग

आदि 'मांग' जाति की उपजातियाँ हैं जो महाराष्ट्र में पायी जाती हैं इसी तरह आंध्र या तेलंगाना में भी मादिगा का जाति की उपजातियों को देखा जाता है । तेलंगाना में भी मराठी बोलने वाले 'मांग' जाति के लोग बड़े पैमाने पर मिलते हैं । जो लोग मराठी बोलते हैं वे 'मांग' या 'मातंग' कहलाते हैं और जो लोग तेलुगु बोलते हैं उन्हें मादिगा कहा जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि तेलुगु प्रांत में भी मातंग लोग अपना जीवन यापन कर रहे हैं । आंध्र या तेलंगाना के मादिगा लोगों की उपजातियाँ पूछने पर यह बताया है कि मादिगा जाति में भी उपजातियाँ हैं जिसकी एक सूची हमें दी गयी जो महत्वपूर्ण रही है । उस सूची के आधार पर मादिगा जाति की उपजातियाँ इस प्रकार हैं-

1. चिंदु मादिगा (Chindu Madiga)

2. डक्कली मादिगा (Dakkali Madiga, Performers)

3. डक्कली मादिगा (कलाकार) (Dakkali Madiga, musicians)

4. बैंडला, बावन, पांबालु मादिगा (Baindla/ Bawan/ PambaluMadiga)

5. संगाडीवारू मादिगा (Sangadivaru Madiga)

6. असादी मादिगा (Asadi Madiga)

7. मादिगा मस्ति (Madiga Masti)

8. नुलका चंदायालु मादिगा (Nulaka Chandayyalu Madiga)

9. माला जंगालु (Mala jangalu)

10. गुर्रमवारू (Gurramvaru)

इस प्रकार से यह तेलंगाना और आंध्र के मादिगा समाज की उपजातियाँ हैं।

हम यहाँ पर मातंग समाज की बात कर रहे है जो ज्यादातर महाराष्ट्र में ही निवास करते हैं। तेलंगाना में मातंग समाज सबसे ज्यादा आदिलाबाद जिले में है। आदिलाबाद जिले के 'मांग' या 'मातंग' मराठी भाषी ही हैं और इनका संबंध भी महारीष्ट्र से ही बताते हैं। क्योंकि इनके पूर्वज महाराष्ट्र से ही यहाँ पर अपनी उपजीविका चलाने के लिए आए थे और आज वे यहाँ के ही निवासी बन गए हैं। मुझे भी इन्हीं लोगों से मदद मिली है जो मेरे इस विषय के बारे में जो विचार या अपने मतों को उध्दृत कर रहा हूँ यह उन्हीं लोगों द्वारा बताया गया है।

संदर्भ

1. 'मुरळी'- देवदासी का ही दूसरा रूप यह मंदीर में ही नहीं बल्कि गाँव में भी रहती थी ।
2. 'जोगवा'- यह गाँवों में एक भीख माँगने के प्रथा के समान ही है । जोगवा मांगकर खाना आदि।
3. 'खंडोबा'-खंडोबा मातंग समाज के लोगों का भगवान है जिसका वाहन है 'कुत्ता'
4. 'मरीआई'- मातंग समाज की देवी है जैसे दुर्गामता आदि है वैसे ही यह भी एक देवी है और इन लोगों को इसमें आस्था है ।
5. मांग आणि त्याचे मांगते- प्रभाकर मांडे, पृ. सं. 14-15 ।
6. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव- डॉ. माधव बसवंते पृ. सं. 80.
7. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव- डॉ. माधव बसवंते, पृ. सं. 78.
8. मातंग समाजः इतिहास आणि वास्तव- डॉ. माधव बसवंते, पृ. सं. 47.
9. मातंग समाजः इतिहास आणि वास्तव- डॉ. माधव बसवंते, पृ. सं. 81.
10. मातंग समाजः इतिहास आणि वास्तव- डॉ. माधव बसवंते, पृ. सं. 82.
11. 'सटवी की पूजा'- प्रसव स्त्री के कपडे, आदि धोकर स्नान घर की पूजा की जाती है ।
12. 'पाळणा'- शिशु को झुले में डालकर गित गाते हुए उसका नाम रखा जाते है । झुले में डालने का कार्यक्रम ।
13. 'अक्षत'- हल्दी से रंगे हुए चाँवल ।
14. 'ताटी'- मरे हुए व्यक्ति को जिसपर लैटाया जाता है उसे ताटी कहते है ।
15. 'मुखाग्नी देना'- अगर पत्नी मरती है तो उसे उसका पति मुखाग्नी देता है और पिता मरता है तो उसे उसका बड़ा बेटा मुखाग्नी देता है ।
16. 'मांग'- मातंग समाजाच्या चळवळीः स्वरूप व दिशा, चंद्रकांत वानखेड़े, अस्मिता प्रकाशन, नागपुर.

द्वितीय अध्याय

मातंग समाज का लोक साहित्य

2. लोक साहित्य

लोक साहित्य का सीधा संबंध लोक-मानस से है । वाणी के द्वारा प्रकृत रूप में लोकमानस की सरल, निश्छल एवं अकृतिम अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है । इसमें जन जीवन का समग्र उल्लास उच्छवास, हर्ष-विषाद, आशा-आकाक्षां, आवेग उद्वेग, सुख-दुःख तथा हास-सदन का समावेश रहता है । लोकचित्र की जितनी भी अनुभूतियाँ हैं या हो सकती हैं वे सभी लोक साहित्य का विषय है । स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता इस साहित्य का प्रधाण गुण है । वास्तव में यह जनता का वह साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया है । इसमें मानवता के विकास की आदिमकालीन संस्कृति निहित तथा सुरक्षित है । इसके द्वारा मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है । लोकमानस इसका स्त्रोत है- वह लोक जिसमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना का अभाव नहीं । इसका निर्माण किसी एक व्यक्ति द्वारा न होकर स्वयं विशाल जन-समुदाय द्वारा होता है । हिंदी साहित्य कोश के अनुसार “लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक के युग-युगीण वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक-मानस प्रतिबिंबित रहता है ।”[1] दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व से सर्वथा निलिप्त लोक

भावनाओं की जानकारी में अभिव्यक्त, जो प्रधानता परम्परागत तथा मौखिक है तथा जिसमें स्थानियता के पुट के साथ ही जन-जीवन के तरल हृदय की तरंगे उद्वेलित है, लोक साहित्य है । वस्तुतः लोक साहित्य के भाव संपूर्ण मानव समाज के भाव होते हैं, मानव मात्र जब स्वानुभूति को अपनी माँ की गोदी में सीखी हुई भाषा में व्यक्त करता है, तब उसकी अभिव्यक्ति लोक साहित्य का रूप धारण कर लेती है । साधारण जनता के वे भाव तथा अनुभव जो चिरकाल से मौखिक स्थिति में सुरक्षित हैं तथा जिन्हें हम कण्ठस्थ साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं, लोक साहित्य के अंतर्गत आते हैं ।

जब से मानव हृदय सुख-दुःख की अनुभूतियों को शब्दों द्वारा व्यक्त करने में समर्थ हुआ तभी से इस साहित्य की सृष्टि होती रही है । इसकी धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती हुई सर्वत्र व्याप्त हो चुकी है । शिष्ट साहित्य इसके बाद की वस्तु है ।

लोक साहित्य महामहिम मौखिक परम्परा का प्रतीक है । इस साहित्य का समूचे रूप से अध्ययन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि जब मानव प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था, अर्थात् जीवन में कृत्रिमता का प्रवेश नहीं, अथवा कम हुआ था, उस समय मानव जीवन में संघर्ष कम था, नैसर्गिक प्रवाह अधिक, वैयक्तिक रुचि भिन्नता के स्थान पर सामूहिक भावना और सम-रसता का आधिपत्य था । एक भारत नहीं, विश्व के सारे देश और उनके अनेक जन-पद इस प्रकार की प्रकृत जीवन-स्थिति के युग से गुजर चुके हैं । किसी भी देश के

जीवन की पृष्ठभूमि में मौखिक परंपरा के अतीत को छूती हुई और धरती की आस्था में बँधी हुई गाथा सुनकर हम आनन्दित होते हैं । इस गाथा में प्रत्येक व्यक्ति समूचे कुटुंब जाति या राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है । अतीत के उस मानव के जीवन की शांति और सुख-समृध्दि के सम्मुख वर्तमान उन्नत युग का सिर झुकने लगता है, जबकि जीवन में चतुर्दिक संघर्ष और कलह के बादल छाये हुए दिखाई देते हैं, कृत्रिम साधनों से उत्पन्न जीवन-यापन की सुख-सुविधाओं के साथ असंतोष और पारस्परिक वैमनस्य की आग से प्रेम के संबंधों को क्षीण करके मानवीय भावनाएँ विलुप्त होने लगीं और आवश्यकताओं के बढ़ जाने से तीव्रतर असंतोष, अभाव और भूखमरी मच रही है ।

2.1. लोक कथाएँ

हमारे जातीय जीवन में लोक कथाओं का बड़ा महत्त्व रहा है । बूढ़ी स्त्रियाँ शताब्दियों से बच्चों और प्रौढ़ों को ये कथाएँ सुनाती आई हैं । इन कथाओं में अनेक प्रतिभाओं का प्रकाश निहित रहता है, क्योंकि ये पीढ़ी दर पीढ़ी कण्ठ में होती हुई आती हैं । कहने वाले की आत्मानुभूति के प्रभाव से इन कथाओं में निखार आता रहता है, उसके अपने भाव सम्मलित हो जाते हैं । फलस्वरूप कथा का कलेवर प्रायः बढ़ जाता है । शब्दों और मुहावरों में भी निखार आ जाता है । इस प्रकार निरंतर संचरण से कथाओं में प्रौढ़ता आती रहती है और व्यक्तिगत दायरे से प्रसारित हुई कथाएँ सामाजिक धरातल पर उतर कर लोक-कथाओं का रूप धारण कर लेती हैं ।

2.1.1. जामंत ऋषि की लोककथा

मातंग शब्द की उत्पति कहां से हुई है? इस प्रश्न के उत्तर में आदिलाबाद जिले के एक छोटे से गाँव में रहने वाले बुर्जूग व्यक्ति श्री. वाघमारे पिराजी ने एक लोककथा के आधार पर हमारे समूक प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है- वे बताते हैं कि मांतगों की कहानी हिमालय पर्वत से शुरू होती है । उस समय हिमालय पर्वत निराकार था । वहाँ पर सिर्फ पानी-ही-पानी था । तेज हवा और तुफान के चलते वहाँ पर जंबू बिट तैयार हो गया । जिसे आज हिमालय पर्वत कहा जात है वही जंबूबिट नाम से जाना जाता था । यही जम्बूबिट आगे चलकर वनस्थल बन गाया था । यहाँ की जमीन का आकार त्रीकोणीय सा था और बाकी पानी था । ऐसे ही झील-मिल पानी में कमल का फूल खिला था और उसी कमल में से 'जामंत' नामक व्यक्ति का जन्म हुआ ।

जैसे कहा जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति जल, वायु से हुई है । इस तरह का दार्शनिकों का यह कहना जामंत बाबा के जन्म के संदर्भ में सही ठहरता है । जामंत बाबा का जन्म उसी तरह हुआ जिस प्रकार जल प्राणियों का होता है । इसी जामंत बाबा को मांग जाति का बताया जाता है जो बहुत ही शक्तिशाली था और उन्हें ऋषि भी मानते है वे जामंत ऋषि के नाम से ही जाने जाते थे । इसी जामंत बाबा ने सबसे पहले समुद्र किनारे के शंक, मोती, लिंग आदि लाकर पूजा शुरू की थी । उसके बाद उन्होंने सिर्फ बारा लिंगों की पूजा की थी जिसकी आँच कैलासपुरी याने जहाँ महादेव रहते थे वहाँ पहुँचती है । महादेव को संशय आता है और वे पार्वती से पूछते है कि इतनी गरम भाँप कहाँ से आ रही है? तब पार्वती कहती है कि जामंत ऋषि पूजा करने के लिए बैठे है, वही भाँप हमारे

यहाँ तक पहुँच रही है। आश्चर्यचकित होकर महादेव कहते है इतनी भयानक ! तब पार्वती उन्हें यह कहकर जामंत ऋषि के शक्ति से ज्ञात कराती है कि यह तो कुछ भी नहीं है। अगर वे ठान लें तो कुछ दिनों में इस ब्रम्हाण्ड को नष्ट कर सकते हैं, उनमें इतनी शक्ति है। वे बहुत ही शक्तिशाली है और उनके यहाँ बारा लिंगों की पूजा चल रही है और हमारे पास केवल एक ही लिंग है 'आत्मलिंग।'

इस पूजा से महादेव धर्मसंकट में पड़ जाते है। अब उन्हें जामंत ऋषि को नष्ट करना था, और वैसे भी वे युक्ति से नष्ट कराने में तो माहिर थे ही। वे जामंत बाबा को नष्ट करने का एक षड़यंत्र रचते है। वे परेशान रहते है और सोचते है कि इस पूजा को और जामंत ऋषि को किस तरह से हानी पहुँचानी चाहिए। इसके बाद महादेव की जामंत ऋषि को नष्ट करने की युक्ति इस प्रकार रहती है- वे धवलगीरी याने आज का 'कैलास पर्वत' जहाँ पर महादेव रहते थे वहाँ से हिमालय की ओर आते है। वे अपने नंदी पर सवार होकर आते है जो उनका अपना वाहन भी है। वे कैलासपुरी से हिमालय तक नंदी पर बैठकर आते है पर यहाँ आने के बाद एक बहाना बनाते है। वे अपना नंदी अपनी मर्जी से छोड़ देते है और जामंत बाबा के पास आते है। जामंत बाबा को वे अपना नंदी घुम जाने की बात बता देते है और कहते है कि हमारा नंदी इधर ही तुम्हारे हिमालय की ओर आया है और नहीं मिल रहा है और वह हमें नजदीक भी नहीं आने दे रहा है। आप ही ऐसे व्यक्ति है जो हमारे नंदी को पकड़कर ला सकते है। ऐसे में जामंत बाबा नंदी को पकड़ने के लिए उस नंदी का पीछा करते है। जामंत बाबा के लाख कोशिशों के बावजूद नंदी नहीं मिलता है। जब नंदी नहीं मिलता है तब जामंत बाबा एक युक्ति अपनाते है। उस नंदी को जामंत बाबा भगा-भगाकर पानी में ले जाते हैं। जब नंदी पानी में तैर रहा होता है तब

उसकी पूँछ पकड़ लेते हैं जो आखरी तक नहीं छोड़ते है । जानवर ज्यादा देर तक पानी में नहीं रह सकता है और वही हुआ नंदी पानी में तैरने से थक जाता है और पानी पीकर उसका पेट फुल जाता है और वह किनारे जाकर गिर जाता है ।

नंदी को वहाँ से निकाल लिया जाता है और साथ ही उसे अदमरा कर नर का नामर्द बना दिया जाता है । सामान्यत: जानवरों को दो सिंग होते हैं लेकिन इस नंदी को तीन सींग थे जो दोनों सिंगों के बीच में एक था याने माथे पर एक सिंग था जामंत बाबा उसे तोड़ देते है । उसके नीचे के आठ दांत गिरा दिए जाते है । कुछ खास झाड़ों की खाल निकालकर ऐठन (रस्सी) बना दी जाती है । इस नंदी को काबू में करने के लिए उसके नाक में से डाल दी जाती है । नंदी को नर से नार्मद बना दिया जाता है । वह नंदी अब नंदी नहीं रहा था वह बैल बन चुका था । यही नंदी जामंत बाबा को श्राप देता है । वह नंदी कहता है कि ये 'कुनबी'[2] लोग जो मेहनत कर के खाते है, तुझे उनकी जूठन पर पलना होगा । मिट्टी, गोबर आदि में से निकालकर या धोकर तुझे खाना होगा । इस तरह का श्राप वह नंदी जामंत बाबा को देता है ।

जामंत बाबा अपना श्राप कबूल कर लेते हैं और कहते है कि चलो मंजूर है ऐसा कहते हुए वे उस नंदी को ले जाकर महादेव को सौंपते है । अब महादेव खुश हो जाते है कि एक षड़यंत्र तो पूर्ण हो गया है लेकिन वे इससे संतुष्ट नहीं रहते है । क्योंकि उन्हें तो जामंत बाबा की शक्ति नष्ट कर उनके लिंग छीनने थे । इसके लिए वे दूसरा षड़यंत्र अपनाते है और जामंत बाबा के सामने हाथ जोड़कर खड़े रह जाते है और कहते है- जामंत बाबा क्षमा चाहता हूँ लेकिन क्या करू मेरा और एक काम आपको करना होगा । तब जामंत बाबा कहते है अब

कौनसा काम करना है? ऐसा कहकर महादेव जामंत बाबा को गाय लाकर देने के लिए विनती करते है कहते है कि तुम्हारे ओर गाय है पर हमारे कैलास पर्वत पर गाय नहीं मिलती है । हमें किसी भी तरह से पूजा के लिए गाय चाहिए । अब जामंत बाबा सोचने लगते है और कहते है कि गाय तो नहीं मिलती है क्या किया जाए? बाबा अब कुछ तो कीजिए लेकिन हमें मात्र गाय लाकर दीजिए । ऐसे में जामंत बाबा गाय लाकर देने के लिए राजी हो जाते है और गाय ढूंढने के लिए निकल पड़ते है । गाय मिलती नहीं है उन्हें देखते ही गाय भागने लगती है । पर्वत के चारों ओर पानी ही पानी था । जामंत बाबा एक पेड़ के ऊपर बैठ जाते है । वे उस गाय को पकड़ने के लिए एक रस्सी से फाँसा तैयार करते है । जब गाय पानी पीकर छाव में आकर बैठ जाती है तब फाँसा डालते है । अब गाय उनसे बात करती है यह एक मिथकीय पात्र है जो किसी दैवी शक्ति से उन गाय को बात करने की शक्ति मिलती है । वह गाय जामंत बाबा से सवाल करती है कि ऋषि महाराज आप क्यों हमारा पीछा कर रहे हो? तब ऋषि जवाब देते है गौ माता ऐसा कुछ नहीं है मुझे बस तुम्हें पूजा के लिए ले जाना है । बाबा आप ले तो जाओगे सही है पर हम लोग मर जाऐंगे न? और हमारे मरने के बाद मक्खियाँ राज करेंगी, यहाँ के जीव जंतु हमें खा लेंगे । ये चिल-गिध आदि खा लेंगे और घंटे-दो-घंटे में हमारा माँस साफ कर देंगें और हमारे मरने के बाद आप हमें वहाँ से उठाकर कहीं पर फेंक देंगे, बदबू फैलेगी लोग मुँह, नाक पकड़कर घूमेंगे आदि हो सकता है । ऐसी अवस्था हो सकती है तो ऐसे में आपका हमें ले जाना कहाँ तक सही है, हम यहीं पर ठीक है हमें मत ले जाओ । तब जामंत बाबा उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहते है कि ऐसा नहीं होगा । अगर ऐसा होता है तो मैं तुम्हारा माँस अपने आत्मा में रख लेता हूँ । तब वे गाय

उनसे वचन माँगती है और कहती है कि हमारे साथ ऐसा कुछ भी नहीं होना चाहिए।

जामंत बाबा गाय को वचन देते है और महादेव के यहाँ कैलासपुरी में ले जाते है। गाय को यहाँ पर लाने के बाद 33 कोटी देवताओं को बुलाया जाता है। सब के सामने जामंत बाबा कहते है कि मैंने गाय को लाया तो है पर एक वचन भी दिया है, तो उसे हम सब को निभाना है। वे कहते है कि अगर यह गाय मर जाती है तो हम सबको उसका माँस भक्षण करना है। क्या आप सभी को यह मंजूर है अगर मंजूर है तो मैं इस गाय को यहाँ रखता हूँ नहीं है तो इसे जहाँ से लेकर आया हूँ वहाँ पर छोड़कर आ जाता हूँ। तब वे सब 33 कोटी देवता हां-में-हां मिलाकर सहमत हो जाते हैं।

यहाँ पर और एक कथा जुड़ जाती है। वह इस प्रकार है जो बाद में जामंतऋषि के साथ जिस बच्चे को भी अस्पृश्य समझा जाता है। उस बालक का जन्म इस प्रकार होता है- महादेव और पार्वती अपने नंदी पर बैठकर जंगल में प्रस्थान कर रहे होते है ऐसे में पार्वती अपने मासिक धर्म का कपड़ा निकाल कर फेंक देती है। और यह चमत्कार होता है कि जब वे उधर से लौटकर आ रहे होते है तब उस कपड़े में से बच्चे के रोने की आवाज आती है। उस आवाज को सुनकर महादेव पार्वती से पूछते है ये बच्चे के रोने की आवाज कहाँ से आ रही है। तब पार्वती कहती है यहाँ तो बालक है। वह किसका बालक है। तब पार्वती कहती है कि यह कपड़ा मेरा है, तो बच्चा भी मेरा ही हो गया न। यही लड़का आगे चलकर महार जाति का बताया गया है। लेकिन महादेव और पार्वती उस बच्चे को अपनी निगरानी में रखते है, उस बच्चे का पालन पोषण भी करते हैं। वह लड़का बड़ा होने के बाद उसे गाय चराने का या संभालने का काम सौंप दिया

जाता है। ऐसे ही कुछ दिनों के बाद वह गाय जनती है। अब यह गाय जनने के बाद उसका दूध निकाला जाता है जो बहुत ही मिठा रहता है जिसे वे लोग अमृत समझते हैं। उस दूध के साथ और एक रहस्य जुड़ जाता है महादेव पार्वती से कहते है कि इस बच्चे को दही दो लोनी दो मगर उसे दूध मत दो।

माँ की ममता नहीं रह सकती वह यह कहती है कि बच्चा अपना ही है तो दूध देने से क्या फर्क पड़ता है और एक दिन उस बच्चे को दूध देती है। उस बालक को दूध पीने से उस दूध के आस्वाद का अंदाजा हो जाता है। वह दूध एक तरह से अमृत ही था। उस बच्चे को दूध का चटका लग जाता है और वह बच्चा सोचता है कि इस गाय के माँस में से निकलने वाला दूध इतना अच्छा है तो, उसका माँस कितना मिठा और स्वादिष्ट होगा। दूसरे दिन वह गाय को चराने ले जाता है तब वह उस गाय को पत्थर फेंककर मारता है वह पत्थर उस गाय के माथे पर लग जाता है और एक सींघ भी टूट जाता है। वह गाय चक्कर आकर गीर जाती है और उसी में गाय के प्राण निकल जाते है, गाय मर जाती है। गाय मरने के बाद वह सबसे पहले जामंत बाबा को बता देता है कि बाबा गाय तो मर गयी। और उसके बाद वह सबको बता देता है।

अब वही होता है जो गाय को लाने के बाद हुआ था। महादेव-पार्वती और 33 कोटी दोवता जमा हो जाते है। वे सभी लोग उस गाय का बिना कुछ छोड़े कांट-छांट कर बड़ी हांडी में उस गाय का माँस पकाते है। यह पकाने का काम जामंत बाबा और वह लड़का दोनों ही करते है। एक तरह से दोनों भी 'विटाल' (अपवित्र) रूप से पैदा होनेवाले थे। एक किचड़ में खिलने वाले कमल से पैदा हुआ था तो दूसरा मासिक धर्म के फेंके हुए कपड़े में से। वे दोनों खाना पका रहे होते है तब अचानक एक माँस का टुकड़ा नीचे गिर जाता है। जामंत

बाबा उस गिरे हुए माँस के टूकड़े को उठाते है और साफ करते है। उस माँस के टूकडे पर लगा कचरा न निकलने पर वे उसे फूँकते है। और उसे फिर से हांडी में डाल देते है। यहाँ विडंबना यह होती है कि वे लोग इस खाने को अपवित्र समझ लेते हैं और कहते हैं कि महाराज फूंकने से उसमें थूँक तो गिरती है न और खाना भी झूटा हो गया है अब हम लोग इस माँस को नहीं खा सकते है। उन लोगों को यही एक कारण मिल जाता है और वे सब लोग उठकर चले जाते हैं।

जामंत बाबा परेशान हो जाते है और सोचते है कि इतना सारा खाना हम दोनों कैसे खा सकते हैं। यह कैसे संभव है यही सोचकर वे महातंग हो जाते हैं। अब वे तंग आ जाते है। यही महा+तंग व्यक्ति जामंत की जगह महातंग हो गया था जिसे बाद में जामंतऋषि की जगह मातंगऋषि कहा गया है। वे दोनों ही उस गाय का माँस भक्षण करते है और बचा हुआ अपने साथ बाँध कर ले जाते हैं। उस माँस को वहाँ पर भी छोड़ सकते थे पर जामंतऋषि ने उस गाय को वचन दिया था इसलिए वे माँस को अपने साथ ले जाते हैं। उन दोनों के माँस खाने से वे लोग उनसे घृणा करने लगे। और खुद पवित्र हो गए। यहाँ पर जो खाना पका रहे थे उसमें एक मातंग था तो दूसरा महार। यह दोनों जाति के लोग आज भी गाय का माँस खाते हैं और आज भी यह हिंदू मानसिकता उनसे घृणा करती है। ऐसा नहीं है कि वे लोग नहीं खाते थे वे सब वहाँ पर माँस खाने के लिए एकत्रित हुए थे। लेकिन माँस के टुकडे को फूंककर अंदर डालने से उनको एक बहाना मिल गया था और वे सब लोग उठकर चले गए थे। इसके बाद आज भी महार और मातंग समाज के लोग गाय का मांस खाते हैं। वहीं से मरे हुए जानवरों का माँस सुखाकर कई दिनों तक खाने की प्रक्रिया शुरू हुई है या बताया जाता है।

इस तरह से जामंत बाबा को महातंग बना दिया गया । जिससे वे महा+तंग से मातंग बने और आज उनकी एक अपनी जाति बन गयी है । जामंत बाबा को नष्ट कर के महादेव ने उनकी शक्ति छीन ली और उनके पास जो बारा लिंग थे वे ले लिए गए । मातंगऋषि ने भी खुशी से ग्यारह लिंग सब को बाँट दिए थे क्योंकि उन्होंने मांस भक्षण किया था सिर्फ उन्होंने अपने पास एक ही आत्म लिंग रख लिया था । जो आज भी मातंग समाज के लोगों के पास हम पाते है जिसे आत्म लिंग कहते है ।

इस प्रकार जामंतऋषि से वे मातंग बन गए और उनकी अपनी जाति बन गई । जिसे हिंदू समाज ने मातंगऋषि के समय से ही अस्पृश्य बनाया है और वह आज भी भारतीय समाजिक संरचना में नीम्न जाति मानी जाती है । आज मातंगऋषि के अनुयायी भारत के हर कोने में फैले हुए हैं । महाराष्ट्र में यह 'मातंग' नाम से जाने जाते हैं तो आंध्र या तेलंगाना में इन्हें 'मादिगा' कहा जाता हैं । उत्तर भारत में इन्हें भंगी, वाल्मीकि, डोम आदि नामों से जाना जाता है । भारतीय सामाजिक संरचना में इन लोगों को अलग-अलग कार्य दिए गए हैं ।

मातंग समाज में नमस्कार के लिए या आदर से शरनाथ शब्द को अपनाया गया है । जिसका अर्थ होता है- एक दूसरे के शरण जाना । शरण जाने के इस अर्थ को महानता का प्रतीक माना गया है । जिसे हम महामानव बुद्ध के बौध्द तत्वों में भी पा सकते हैं । जब जामंतऋषि ने बारह लिंगों की पूजा की थी तब 'लिंगायतों' को लिंगों के शरण में आने के लिए जामंतऋषि ने शरणार्थ शब्द का उपयोग किया था । इसी से शरणार्थ शब्द रूढ़ हो गया जो पवित्र भी समझा जाता है । जामंतऋषि ने जो ग्यारह लिंग बांट दिए थे वे इन लोगों में बांट दिए थे- जंगम, वानी, तेली, कुम्हार, कोमठी आदि जातियों में बांट दिए थे

। पोथी-पुराणों में इन लिंगों के बारे में लिखा गया है कि कौनसा लिंग किसका है और उसपर किसका अधिकार है। लेकिन यह पोती-पुराण पढ़ने की अनुमती शूद्रों को नहीं थी । जब इन लोगों ने पढ़ना लिखना सीख लिया तो उन्होंने अपने-अपने लिंग वापस लेना शुरू किया है।

मातंगऋषि को मातंग समाज के लोग अपना श्रेष्ठा मानते हैं । इसी मातंगऋषि के नाम से चंद्रपुर जिले में एक मंदिर भी है- 'मार्कंडेश्वर' । यह मंदिर मातंगऋषि का है लेकिन यहाँ पर ब्राह्मण ही पुजारी बनकर बैठे हुए है। भारत में विडंबना यही है कि मंदिर किसी भी जाति का प्रतीक हो पर वहाँ पर ब्राह्मण ही पंडित बनकर बैठ जाते हैं। कुछ ऐसा ही यहाँ पर भी हुआ है। यहाँ मातंगों की सेवा करने के लिए ब्राह्मण पंडित रहते हैं।

दूसरी बात यह है कि जो मिथकों से जुड़ी हुई है । वह इस प्रकार है । बताया जाता है कि अंजनी (हनुमाण की माता) यह भी एक 'मांगीन' याने मातंग समाज की महिला थी । तो यह लोग हनुमाण को भी अपनी जाति का मानते है और पूजा भी करते है और उनके नाम से सप्ताह का समारोह भी रखते हैं । हनुमान एक मातंग समाज की महिला अंजनी के पुत्र थे इसलिए उनका मंदिर भी गाँव के बाहर ही रहता हैं । और आज भी है । 'हनुमंत महाबली रावनाची दाढ़ी जाळी'- (हनुमंत महाबली ने रावन की दाढ़ी जलाई) इस महाबली के मंदिर में उनके अपनो को ही आने नहीं दिया जाता है । आज के सुशिक्षित लोग न आने देने पर कहते है कि 'अरे वह तो अपनी ही जाति का है हमें आने नहीं दिया तो क्या हुआ, करने दो उन्हें अपने बच्चे की पूजा ।' आज पढ़ी लिखी दलित पीढ़ी यह सारी कहानियाँ जानने लगी है। वे जान रहे है कि

इन देवताओं की जाति का उल्लेख इन धर्म ग्रंथों में है लेकिन यह पंडित लोग उन पंक्तियों को छोड़कर छलांग मारकर आगे की पंक्तियाँ पढ़ते हैं । जैसे- 'पुंडलिक वरदाहरी विठ्ठल' आदि कहते हैं और उसके आगे की पंक्तियाँ छोड़ देते हैं । इसे देखकर आज का पढ़ा लिखा दलित समाज उनसे सवाल कर रहा है कि इसके आगे क्या है पढ़ो उसे छोड़कर छलाँग क्यों मार रहे हो ।

हनुमान की तरह ही तिरूपति बालाजी से भी जुड़ी हुई लोक कथाएँ हैं जो इस प्रकार है- बालाजी की पत्नी 'लक्ष्मी' यह भी मातंग समाज की ही थी और बालाजी मातंग समाज के दामाद है । आज भी बालाजी के मंदिर में चमार के जूतों के बिना पुजा अधूरी है । आज भी वहाँ पर चमार एक जूता देता है और वह जूता रात में फट जाने की एक कथा बतायी जाती है ।

2.2. डक्कलवारों का जातिपुराण 'बसवपुराण'

डक्कलवार मातंग समाज की उपजाति है ऐसा बताया जाता है । डक्कलवार अपने आप को मातंग समाज के माँगते मानते हैं । माँगते का अर्थ है भिक्षा मांगकर खाना । डक्कलवार लोग भी मातंग समाज को भिक्षा माँग कर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं । यह लोग घुमंतू जीवन जीते हैं लेकिन इन लोगों का अपना एक नियम है जो इस प्रकार है डक्कलवार लोग मातंग समाज से ही भिक्षा ग्रहण करते हैं ऐसा वे खुद बताते हैं और मातंज जाति के लोग भी ये मानते हैं कि डक्कलवार हमारे माँगते है । मातंग समाज को 'जातिपुराण' की जानकारी देना उनका पेशा है । 'जातिपुराण' को ही 'बसवपुराण' कहा जाता है । 'बसव' का अर्थ है बैल । बताया जाता है कि जामंत नामक मातंग व्यक्ति ने

एक आवारा बैल को अपने बस में कर लिया था, उस बैल को तीन सींग थे वैसे तो बैलों को दो ही सींग रहते है लेकिन इस कथा में यह बताया गया है कि उस बैल को तीन सींग थे। ऐसे बैल को अपने बस में कर उसे बलीराजा के स्वाधीन किया था। जामंत ऋषि ने उस बैल को मर्द का नामर्द बना दिया था इस तरह की कथा बसवपुराण में बताई जाती है। इस लोककथा के बारे में मातंग समाज के बुजुर्ग व्यक्ति बताते आ रहे हैं, परंतु आज का युवा मातंग वर्ग इस तरह की कथाओं से कोसों दूर जा चुका है। उस बैल को मर्द से नामर्द बनाने की कथा जामंतऋषि की कथा में भी बताई जाती है, मुझे अपने क्षेत्रकार्य के दौरान इस कथा को दो-तीन जगह दोहराने का अनुभव हुआ है।

'डक्कलवार' मातंगों के सामने बसवपुराण बताने को अपना सौभाग्य समझते हैं यह कथा सुनाते हुए उनमें बड़ी श्रध्दा देखने को मिलती है। मैंने अपने क्षेत्रकार्य के दौरान उनसें बात-चीत की तब वे लोग बता रहें थे कि 'डक्कलवार' जब हमें भिक्षा माँगने आते हैं तब हम भी खूशी-खूशी उन्हें कुछ अनाज या पैसे उपहार के रूप में देते हैं, क्योंकि वे लोग सिर्फ हम लोगों से ही भिक्षा लेते हैं। वे हमें पुराण की कथा सुनाते हैं, उस कथा का विस्तार से विश्लेषण करते हैं तब हम उन्हें उसके बदले में दान देते हैं जिसमें अनाज, पैसे, और 'डक्कलवार' परिवार को कपड़े आदि उपहार रूप में दे देते हैं। 'डक्कलवार' लोगों की एक विशेषता यह है कि वे मातंगों के अलावा किसी भी समाज से दान नहीं लेते हैं, यहाँ तक की वे किसी के घर पर खाना तक नहीं खाते हैं अगर कहीं खाना खाने के लिए अग्रह किया जाता है तो वे कहते हैं कि हम तब खाना खाएँगे जब मातंग समाज का कोई व्यक्ति वहाँ उपस्थित रहता हो। उसके बाद जब वह व्यक्ति खाना खाएगा तब उसमें से जो भी बचता है वही हम खा लेंगे।

अब यह सोचने वाली बात है इतनी श्रध्दा एक व्यक्ति अपने भगवान के प्रति ही रख सकता है । मुझे भी एक ऐसे ही दृश्य का परिचय कराया गया । वह इस प्रकार है- जिसने यह कहानी बताई थी वह व्यक्ति भी मातंग समाज का ही था उन्होंने 'डक्कलवार मांग' का एक दृष्टांत इस प्रकार मुझे बताया कि डक्कलवार जाति के व्यक्ति को एक अध्यापक ने भोजन के लिए आमंत्रित किया था । वह अध्यापक आधुनिक विचारधारा के थे लेकिन उस व्यक्ति ने उन्हें 'बसवपुराण' बताने का वादा किया था इसीलिए वे उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित करते हैं । जब वह उन्हें खाना परोसते हैं तब वह व्यक्ति कहता है कि सर माफ कीजिएगा मैं यह खाना नहीं खा सकता । क्योंकि हम लोग या तो मातंगों के घर का या फिर उनका झूठा खाना ही खाते हैं । बिना मातंग व्यक्ति के खाना खाना हमारी परंपरा का अपमान समझा जाता है । तब वह अध्यापक सोंच में पड़ जाते हैं । उन्हें तो उस व्यक्ति को किसी भी हालत में खाना खिलाना ही था तब वे अपने एक मातंग समाज के मित्र को बुलाते हैं और उसे यह सारी प्रक्रिया समझाते हैं और साथ में यह भी कहते हैं कि आपको हम लोगों के साथ खाना खाना ही होगा । उनका वह मित्र पहले ही खाना खा चुका था फिर भी अध्यापक उन्हें यह कहते है कि आप खाने के लिए बैठ जाईए हम आपको खाना परोसते है, उस थाली में एक ही बार खाना परोसा जाएगा, आपको एक काम करना होगा । वहाँ पर बैठकर दो-चार निवाले खाने होगें उसके बाद आप हाथ धो सकते है जिससे उसे लगेगा कि यह खाना मातंग समाज के व्यक्ति का झूठा खाना है और वह खा लेगा, ठीक वैसा ही किया जाता है । खाने के बाद उस व्यक्ति को बड़ी प्रसन्नता मिली थी क्योंकि वह मातंग समाज के व्यक्ति के साथ बैठकर खाना खाता है । 'डक्कलवार' लोग मातंगों के सामने कथा कहने को, साथ बैठकर खाना

खाने को या उनके साथ रहने पर बहुत गर्व महसूस करते है । इसे वे अपना सौभाग्य समझते है । डक्कलवार लोगों कि यह एक खाशियत है कि वे मातंग समाज के अलावा किसी भी समाज से ना ही कुछ लेते हैं और ना ही 'बसवपुराण' की कथा किसी और को बताने की कोशिश करते हैं । ऐसा करने से वे अपनी मान प्रतिष्ठा का अपमान समझते हैं ।

2.2.1. 'बसवपुराण' का संकेत

डक्कलवार बसवपुराण की कथा कब और किसे बता सकते हैं इसके संबंध में परंपरा से कुछ संकेत दिए गए है जो इस प्रकार है- 'डक्कलवार' जब किसी गाँव में जाते हैं तब वे उस गाँव के मुखियाँ को अपने आने की खबर देते हैं । उसके बाद वह अपनी तैयारी में लग जाते है । उन्हें यह विश्वास रहता है कि सारे गाँव वाले बसवपुराण की कथा सुनने के लिए जरूर आ जाएँगे । श्याम के वक्त खाने के बाद सारे काम निपटाकर मातंग समाज के स्त्री-पुरुष अपने बच्चों के साथ 'बसवपुराण' की कथा सुनने के लिए बेताब रहते हैं । डक्कलवार 'पट' प्रदर्शन की विधी का आरंभ करते हैं । सर्व प्रथम मातंग समाज के किसी व्यक्ति के हाथों पूजा की जाती है तब 'पट' के साथ उनके वाद्ययंत्र जैसे 'किंगरी' को भी रखा जाता है । उसके बाद डक्कलवार उस किंगरी की मधूर धून पर मोर नचाते हुए मातंग जनसमुह को मुजरा करते है और उसके बाद बसवपुराण की यह कथा कुछ दिनों तक चलती रहती है । जब पुराण कथा संपन्न होती है तब भी उसी प्रकार उस 'पट' और 'किंगरी' की पूजा की जाती है जैसे आरंभ में करते हैं । यह सब होने के बाद मातंग समाज द्वार उन 'डक्कलवार' परिवार को श्रध्दा के

साथ कपड़े, कुछ खाद्य पदार्थ तथा कुछ पैसे उपहार के रूप में दिए जाते है जो गाँव के सारे लोग मिलकर चंदा के रूप में पैसे आदि जमा करते हैं और उस परिवार को भेंट के रूप में दे देते हैं । पहले इस तरह 'डक्कलवारों' की कथाएँ साल में एक बार तो भी होती थी लेकिन वर्तमान समय में कभी-कबार ही होती है । इसके बावजूद भी मातंग समाज में इसके प्रति श्रध्दाभाव देखने को मिलता है । आज यह 'डक्कलवार' लोग रोज-मजदूरी कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं साथ ही कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय भी करने लगे हैं फिर भी 'जातिपुराण' या 'बसवपुराण' के प्रति तथा उनके 'पट' के प्रति उनके मन में श्रध्दा होती है ।

2.2.2. 'पट' डक्कलवारों के 'बसवपुराण' का आधार

'पट' के आधार पर ही 'बसवपुराण' की कथा बताई जाती है । डक्कलवार पट प्रदर्शन करते हैं । जब 'जातिपुराण' या 'बसवपुराण' की कथा बताई जाती है तब इस पट का आधार लिया जाता है । ये पट लग-भग बीस-पच्चीस फीट लंबा तथा ढाई-तीन फीट चौड़ा रहता है । इस पट पर अलग-अलग रंगों से बनाई हुई एक चित्र मालिका रहती है जो परंपरा के अनुसार बनाई जाती है, इस चित्र मालिका को चित्रकार बनाते हैं । चित्र मालिका का जो 'पट' है वह एक विशिष्ट पेड़ के पत्तों से बनाया हुआ रहता है । डक्कलवार उस पट पर निकाले गए चित्रों के आधार पर 'बसवपुराण' या 'जातिपुराण' की कथा लयबध्द रूप में बताने की कोशिश करते है । डक्कलवार इस पट की बहुत ही देखभाल करते हैं, उसे बहुत संभाल कर रखते हैं । अगर उस पट के चित्र धुँधले हो जाते हैं तो एक चित्रकार को बुलाकर फिर उसी प्रकार के चित्र निकालने

लगाते है । ऐसे चित्रकार गाँवों में बहुत मिलते हैं जो घर की दीवारों पर या पट आदि पर बहुत ही सुंदर प्रकार के चित्र निकालते हैं । उन्हें इस चित्रकला में न ही किसी प्रकार का प्रशिक्षण मिलता है और न ही कोई सिखाता है बल्कि चित्रकला में वे प्रवीण रहते है ऐसा लगता है कि वह कला उन्हें परंपरा से ही मिली है जिसमें लोक चित्रकला प्रमुख रूप में दिखाई देती है ।

2.2.3. डक्कलवारों के वाद्य : किंगरी और मोर

'किंगरी' को डक्कलवारों का विशिष्ट वाद्ययंत्र माना जाता है जिसे तीन लौकी के साथ बाँस की लकड़ी में जोड़कर दो तीन तार से तानकर बाँध दिया जाता है जिसे खींचने या छोड़ने से एक मधुर सी धुन निकलती है । डक्कलवार इस किंगरी को अपनी उंगली के आधार पर ताल देता है । इसी किंगरी के उपरी छोर पर एक लकड़ी से तैयार किया गए मोर रहता है जिसे तैयार करने में वे अपने कौशल्य का परिचय देते हैं । वह बिल्कुल प्राकृतिक चित्र बनाते हैं जिसे देखकर मोर के चित्र बिंब जहन में आ जाते हैं । सामान्यतः यह दो-तीन इंच की लकड़ी से बनाया जाता है । उसी लकड़ी के मोर के पैरों में घुंघरू बाँधे जाते है जिसका हिस्सा किंगरी के तारों से जुड़ा रहता है उस तारों को स्पर्श करने से एक मधुर धुन निकलती है और एक लय निर्माण होती है । इसे ही आधार बनाकर डक्कलवार अपने 'बसवपुराण' या 'जातिपुराण' की कथा लयबध्द रूप में बताते है, यह बसवपुराण की कथा मातंगों को उद्देश्य में रखकर बताई जाती है । डक्कलवार मोर को नचाते हुए बसवपुराण की कथा लयबध्द रूप में गाते हुए सुनाते हैं ।

जब ‘किंगरी’ की धुन मिलाई जाती है तब डक्कलवार अपने कौशल्य को प्रस्तुत करता है वह जिस प्रकार गीत गाने में प्रवीण है उसी प्रकार वाद्ययंत्र बजाने में भी है। ‘किंगरी’ डक्कलवार ही बनाते हैं उसे उत्कृष्ठ ढंग से तैयार किया जाता है और जो मोर का प्राकृतिक चित्र बनाया जाता है वही चित्र उनकी किंगरी बजाने की प्रतिभा का परिचय देता है। उस प्राकृतिक चित्र में बनाए गए मोर को धुन के साथ मिलाकर उसे हलचल करने लगाते है वो चित्र रूपी मोर अपने अन्नदाता को मुजरा करता है, यह सब करते हुए डक्कलवारों के हुनर का आभास हो जाता है। डक्कलवार परंपरा से यही करता आ रहा है, दूसरे किसी भी प्रकार का व्यवसाय वे नहीं करते हैं यही उनका व्यवसाय माना जाता है।

‘बसवपुराण’ की कथा का आरंभ करने से पहले ‘डक्कलवार’ मोर के माध्यम से मातंग समाज को आवाहन देता है। यह आवाहन मोर को भी दिया जाता है। ‘बसवपुराण’ की कथा बताने के लिए डक्कलवार ‘किंगरी’ को ही वाद्ययंत्र के रूप में स्वीकारते हैं। किंगरी के अलावा भी मातंग समाज में अनेक प्रकार के चर्मकार वाद्ययंत्र देखने को मिलते हैं और उसे बजाने वाले भी। परंतु डक्कलवार ‘बसवपुराण’ की कथा प्रस्तुत करने के लिए इसी वाद्ययंत्र का आधार लेते हैं।

2.2.4. ‘बसपुराण’ कथा का आरंभ या नमन

जब भी कभी ‘बसवपुराण’ या ‘जातिपुराण’ की कथा का आरंभ होता है तो वह सिर्फ ‘ओम नमो गुरुदेव नमः’ से ही आरंभ किया जाता है। उसके बाद

सीधे सृष्टि के उत्पत्ति की कथा का आरंभ होता है। वास्तव में डक्कलवार जब भी बसवपुराण या जातिपुराण की कथा बताते हैं तब वह अक्सर सृष्टि के उत्पत्ति की कथा से ही शुरु करते हैं। इसके साथ यह भी बताया जाता है कि सूर्य, चाँद, तारे, धरती आदि को भी नमन करते हैं।

बताया जाता है कि डक्कलवारों के 'बसवपुराण' का आरंभ सबसे पहले मातंगों के प्रथम पुरुष जामंतऋषि ने किया था। इसी जामंतऋषि द्वारा छः शास्त्र, अठराह पुराणों की रचना की गयी थी ऐसा 'बसवपुराण' या 'जातिपुराण' के अंत में बताया जाता है। उसका उदा.

(मराठी) : हे कथिला जांब ऋषिनी।
केली सप्ती सागराची शाही।
आणि आठरा वनस्पतीची केली लेखनी।
सहा, शास्तर, अठरा पुराण केले जांब ऋषिनी।
या ग्रंथाला सुमारे 36 युग 18 वर्षे झाली आहेत।

(हिंदी अनुवाद) : यह कहा था जांबऋषि ने की।
सातों समुद्रों की स्याही बनाकर।
अठराह पेड़ो की लेखनी बनाकर।
छः शास्त्रों और अठराह पुराणों की रचना की।
इन ग्रंथों को लगभग 36 पीढ़ियाँ, 18 साल हो चुके है।

यह मातंग समाज में प्रचलित वह लोकगीत है जो उनके प्रथम पुरुष जांबऋषि द्वारा रचे गए शास्त्र और पुराणों तथा उनकी बुद्धि और महानशक्ति का पुरावा देता है। इस लोकगीत में यह कहा गया है कि जांबऋषि ने शास्त्रों

और पुराणों की रचना की जिसके लिए सात समुद्रों के पानी को स्याही बनाई और पेड़ो को कलम । हम पहले भी चर्चा कर चुके है कि जामंत बाब एक ऋषि थे और ऋषि मुनियों की रचनाओं का परिचय इसी प्रकार के गीतों में तरह तरह की उपमाएँ देकर ही दिया जाता है । इस लोकगीत में भी 'जामंतऋषि' को 'बसवपुराण' का निर्माता बताया गया है । इसी आधार पर मातंग समाज और डक्कलवारों के मता नुसार 'बसवपुराण' या 'जातिपुराण' यह एक 36 पीढ़ियों और अठराह सालों से चली आ रही परंपरा है । ऐसा इस लोकगीत का आशय है ।

जांबऋषि की कथा के साथ ही शक्ति की कथा जुड़ जाती है, डक्कलवार बतातें हैं कि शक्ति जांबऋषि की बहन थी । जिसका उदाहरण इस गीत में मिलता है । 'शक्ति' का जन्म निरंजन स्वामी के बदन से निकले पसीने से हुआ है ऐसा इस गीत में कहा गया है -

(मराठी) :पुन्हा लोद काय करी । चैतन्य उदवले मनी । मग काय केले त्यांनी।
डाव्या अंगाचा घाम काढुनी । दिला जळी फेकुनी ।
तेथे काय झाले नवल परी । तिच्या रुपाचे तेज गेले गगनावरी ।
साडे सात योजने उंची गेली ।
रुंदी गेली अडीच योजने । सीर असे चौफेर शुन्याप्रमाणे ।
उत्तपत्ति असं की दिवे तेजा परमाने । नेत्र कोटि सूर्य गेले लागूनी ।
अष्टभुजा गेले धड़ी लावुनी । अष्ट खड़ग् हाती घेऊनी ।
हंकार टाकिता मुख पसरिता तिरभुवनाला धाक पड़िला ।

(हिंदी अनुवाद): फिर लोदा ने क्या किया। उसके मन में चैतन्य जगा, उसके बाद

उसने अपनी बाएं ओर का पसीना निकाल, फेंक दिया जल में।

तब एक चकित करने वाली घटना घटी और एक तेज,
सौंदर्य रूप की चर्चा चारों ओर फैल गयी।

वह साडे सात 'योजन'[3] लंबी, ढाई योजन चौड़ी और सिर एकदम गोल मटोल।

उसकी उत्पत्ति दिव्य तेजों में समा गयी, उसके नेत्रों की चमक मानो सूरज की किरणें।

अष्टभुजाएँ धारण किए, लेकर हाथों में अष्ट 'खड्ग'[4]।

हुंकार देकर मुँह खोलते ही, पूरे ब्रह्माण्ड में उसका रौब फैल गया।

इस तरह से जांबऋषि की बहन 'शक्ति' का जन्म हुआ था। यहाँ पर डक्कलवार के जातिपुराणों की कथा में आकार को 'लोद' कहा गया है यह निरंजन स्वामी का नाम है जो उनकी कथाओं में बार बार आता है। शक्ति की सुंदरता का वर्णन डक्कलवार अपनी कथाओं में बहुत ही सुंदर ढंग से करते है साथ ही 'जांबऋषि' और 'शक्ति' यह दोनों भाई-बहन होने का सबुत देते हैं। वे 'जांबऋषि' को पुरुष का प्रतीक मानते हैं तथा शक्ति को प्रकृति का प्रतीक मानते हैं। इस तरह के अनेक वर्णन डक्कलवारों की कथाओं में देखने को मिलते है।

2.2.5 सृष्टि के जन्म की कथा

सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ ? निराकार को आकार कैसे प्राप्त हुआ, पानी का निर्माण कैसे हुआ आदि बातों से ही डक्कलवार अपने 'बसवपुराण' का आरंभ करते हैं । प्रथम अंधकार था फिर धूंधकार हुआ । फिर वहाँ पर एक 'बेट' का निर्माण हुआ, उसका न कोई रंग रूप था और ना ही उसका निश्चित स्थान था । उसके हुंकार से आकार प्राप्त हुआ था, निराकार को आकार मिलते ही पसीने से लथपथ हो उठा जिससे पानी का जन्म हुआ । इस तरह से डक्कलवार अपने शब्दों में सृष्टि के जन्म की कथा प्रस्तुत करते हैं । वे लोग इस कथा को 21 अध्यायों के आधार पर बताते हैं ।

(मराठी) : नमो गुरु देव । परथम होता अंधकार, मग झाला धूंधकार ।

त्या ठिकानी लोदाचा अवतार । चौफेर लागला वा-या परमान ।

मग जमला गेल्या परमान । ना रंग ना रूप । ना नाम ना धाम असा त्या लोदाचा अवतार । सोहंकार टाकिता आत्मा तयार झाला ।

हंकार टाकिता सीर पायदा झाले । धुमकार टाकिता हातपाय झाले ।।

आकारात सर्व तयार झाला । असे त्या चार काराची निर्मिती ।

पाचवा निराकारात निराळा झाला ।।

निराकारात येताच रोमारोमाला घाम फुटून नीर पायदा झाले ।

त्याचे आवस त्याला आधार । निरामधी असता त्याच्यात त्याच रहानं ।।

त्यावर त्याच आसन ।।

(हिंदी अनुवाद) : नमो गुरु देवा । प्रथम था अंधकार, फिर हुआ धूंधकार ।

उस जगह पर तैयार हुआ लोद का अवतार । चारों ओर फैल रहा था हवा के समान ।

फिर बना वर्तुलाकार । न रंग, न रूप ना स्थान ।

इस प्रकार निर्माण हुआ लोद का अवतार । पहले हुंकार को आत्मा तैयार हुई ।

दूसरा हुंकार लेने से सिर तैयार हुआ । तिसरे हुंकार से हाथ-पैर तैयार हुए ।

उसके पश्चात आकार पूर्ण रुपेन तैयार हुआ । इस तरह उन चारों का निर्माण हुआ ।

पांचवा निराकारों में निराला था ।

निराकारों में आते ही उसके रोम-रोम में पसीने से भीग गया था उससे जल का निर्माण हुआ ।

जल ही उसका आधार, वहीं पर वह रहता था, यही उसका आसन था ।

इस प्रकार से सृष्टि के जन्म की कथा बताई जाती है, यह वही कथा है जिसका जिक्र हमने मातंग ऋषि के जन्म को लेकर चर्चा की है । परंतु फर्क यह है कि 'डक्कलवार' लोग इस कथा को लयबध्द रूप से बताने में सक्षम रहते हैं । क्योंकि यही उनका धर्म है ।

2.2.6. निरंजन स्वामी और उनके आसन की कथा

इससे पहले 'शक्ति' के जन्म की कथा में निरंजन स्वामी के विषय में बताया गया था । डक्कलवारों के बसवपुराण की कथाओं में जिस 'लोद' शब्द का प्रयोग हुआ है उसे वे 'निरंजन स्वामी' कहते हैं । लोद या निरंजन स्वामी के

आसन और उनके द्वारा अपने पसीने को निकालकर फेंकने से दांए और बांए ओर से ‘जांबऋषि’ तथा शक्ति का जन्म हुआ था इस तरह की कथा ‘डक्कलवार’ बताते हैं। डक्कलवार बतातें हैं कि निरंजन स्वामी ने अपने पसीने के माध्यम से ‘जांबऋषि’ और ‘शक्ति’ को इस सृष्टि में लाया है। इसीलिए डक्कलवार शक्ति को जांबऋषि की बहन और जांबऋषि को अपना वंशज मानते हैं उसके साथ-साथ खुद को शक्ति का भाई बताते हैं।

2.2.7. आख्यान

डक्कलवार अपने आख्यानों में नाटकीय शैली का प्रयोग करते है। जिसमें निरंजन स्वामी, जांबऋषि और शक्ति आदि की कथा आख्यान के रूप में बताई जाती है। डक्कलवार इस कथा को नाटकीय ढंग से संवाद-प्रति संवाद के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिसका आधार ‘पट’ होता है। पट के आधार पर ही कथा आगे बढ़ती है इसमें कभी कभी अकेला व्यक्ति ही दोनों की भूमिका निभाता है और इस दृश्य को देखकर ऐसा लगता है मानो दो व्यक्ति आपस में संवाद कर रहे हो। जब डक्कलवार इस कथा को प्रस्तुत करते हैं तब वह गद्य और पद्य दोनों शैली में किंगरी के सहारे कथा को बहुत ही मार्मिक बना देते हैं।

2.2.7.1. सात बालकों के जन्म की कथा

अचानक जांबऋषि की जंघा में सूजन आ जाती है तब वे अपनी बहन शक्ति से विनंती करते हुए कहते है कि खड्ग लेकर इसे काँट दो। तब वह काँट है जिसमें से सात बालक निकलते हैं। उनके नाम इस प्रकार थे – रक्तमुनी, दिपमुनी, हिपमुनी, रूद्रमुनी, पालमुनी, कर्कमुनी आदि। इस आख्यानिक कथा

को भी डक्कलवार अपनी नाटकीय शैली में प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ-साथ तीन अंडों की कथा तथा समुंद्र मंथन की कथा भी प्रस्तुत की जाती है।

2.2.7.2 तीन अंडों की कथा

यह कथा ब्रह्म, विष्णु, महेश तथा चाँद सूरज की कथा है जो बहुत ही भावुक होकर प्रस्तुत की जाती है, इसमें डक्कलवारों का संवाद, निवेदन और कौशल्य को देख श्रोतागण भाव विभुर हो जाते हैं। इसमें निरंजन स्वामी द्वारा दिए गए आदेश का पालन न करने वाली शक्ति को मूर्गी बनना पड़ता है और उन अंडों पर बैठकर बच्चों को जन्म देना पड़ता है। इस प्रकार की कथा इस आख्यान में संवाद शैली में बताई जाती है जिसमें एक सुंदर नाटकीय भाव देखने को मिलता है।

(मराठी): मग निरंजनी काय आज्ञा दिधली शक्तिपरी। पाण्यावरचा फेस जमा करुनी। त्याचा खोपा करुनी। तुम्हीं पान कोंबडी होऊनी। या तीन अंड्यावर बसावे। असे बोलता निरंजनी। अवतार धरीला शक्तिनी। ती पानकोंबडी होऊनी। बैसली अंड्यावरी। ऐसे बसता तिला झाले 40 प्रहर। तरी अंड्याचा काही कळेना परकार। शक्ति झाले असे लाचार। बोले निरंजनीसी किती घटिका मी बैसू अंड्यावरी। हा तरास सोसेनी मला। म्हणूनी असाह केला। मग बोले निरंजनी शक्तीस। घे अवतार पालटुनी। मग ती शक्ती काय करी। रूप पालटले तय वेळी। झाली असे पूरवीवानी। मग निरंजनी बोले तीसी। अष्टभुजा आहेती तुम्हासी। त्यातूनी दोन भुजा छेदुनी। समतोल पाहे मोजुनी। मग शक्ति काय करी। तिने छेदिले भुजाबळी। पारडी केली तय वेळी। अंडे झोकीत असे काळी। काय झाले नवल परी। अंडी झोकिती दोन्ही

एका पारडी । एक घातले दूसर्या पारडी । दोन्ही एकल्या एकाचे वजन भारी । ते कोसळुनी पड़ले पाण्यामध्ये लागेना हातासी । तय शक्ति निरंजनीसी काय बोले । हे असेच जातील कधी तरी । ते तरी आणावे कार्यासी । मग निरंजनी काय करी । खरग घेतिले हाती । मारीले अंड्यावरी । त्यामधे ब्रह्म, विष्णु, महेश तिघेजण । दुसर्यात चंद्र-सूर्य दोन । तव निरंजनी शक्तिसी काय बोले । धन्ये तू शक्ति जाब । फार फार केलेस काम । तरी तू माझे एक वचन । या तिघांस पाणी परहान (प्राण) । पण या दोघांस पाणी नलगे हे जाण । तर शक्ति निरंजनीसी काय पुसे । ह्यांना ठेवावे कोण्या ठिकाणी । आणावे कोण्या कामी । तब बोले निरंजनी । अंड्याचे कवचाले । दोन्ही घ्यावे वाटुनी । तव शक्तिने केले त्या परमाने ।

इस कथा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चाँद आदि के जन्म की कथा का संवाद दिया गया है । इसके साथ साथ सूरज और चाँद को पानी से दूर रखने की कथा है । इससे यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी और आकाश के संबंध को दिखाने का प्रयास किया गया है ।

इस कथा में तीन अंडों की कथा थी जिसमें से दो अंडों में से निकले हुए ब्रह्म, बिष्णु, महेश आदि निकले थे लेकिन और एक अंडा बचा था जिसकी कथा इस प्रकार है । तीसरे अंडे का वजन बहुत ही कम रहता है उसमें से देवतओं का जन्म होने वाला था । परंतु उन्हें यह चिंता सता रही थी कि उसमें से देवताओं का जन्म कैसे होगा । तब निरंजन को एक उपाय सुझता है । निरंजन शक्ति से कहते है ।

शक्ति तुझी दोन्ही भुजावळी तोडी । तयाचे शिरा तोडूनी दोर करावा । या वेळी करावी दोरी वीजमंत्राचे धुसळण घ्यावे । अंडे काढून तव शक्तिने मंथन करीता

। अंडे निघाले त्यातून । तव बोलू लागली निरंजनीकारणे । या अंड्यासी टाका फोडुनी । तव निरंजन खड्ग मारिला अंड्याकारण । त्या अंड्यात निघाले चौदा रत्न संपूर्ण ।

शक्ति के मंथन के पश्चात उन अंडों में से चौदा रत्नों का जन्म होता है जिसमें ‘बळी’ (बैल), कामधेनु, 33 कोटी देवता, 28 कोटी यादव आदि के जन्म की कथा बताई जाती है । इतने लोगों को एक ही भोवरे पर रखना संभव नहीं था इसलिए निरंजन स्वामी ब्रह्मदेवता को बुला लेते हैं । इस उलझन से बाहर निकलने के लिए निरंजन स्वामी उपाय पुछते है तब बीस वेदों का अध्ययन करने से किस प्रकार का उपाय निकल सकता है ऐसा ब्रह्म देवता उन्हें कहते है जिसका दृष्टांत इस प्रकार है-

(मराठी) महा जंबूबेटावरी अगादी बसवा । जुगादी बसवा ।
तिरशूळ तीन शिंगाचा बसवा । तयाची उंची 21 योजना ।
लांबी तास योजना । वसवड़ तीन योजना एवड़ी उंची आहे ।
तरी शक्तिच्या हाताने त्याला बोलावून आणावी ।
तो जांबऋषिच्या आश्रमी जाऊनी सात बाळे आणावी ।
म्हणजे त्यातून कार्ये होतील ।........

(हिंदी अनुवाद) महा जंबूबेट पे आगाधि बसवा ।
त्रिशुल जैसे तीन सींग का बसवा । उसकी उंचाई 21 योजन ।
7 योजन लंबा । उसका कंधा तीन योजन उंचा है ।
फिर भी शक्ति से कहकर उसे बुलाया जाना चाहिए ।

फिर वह जांबऋषि के आश्रम में जाकर सात बालकों को ले आएगा।

फिर सारे काम किए जा सकते हैं।

शक्ति का बसवा को लाने जाने का दृष्टांत-

जंबू बेट पर रहने वाले जांबऋषि के संस्थान के सात बालकों तथा वसव को लाने के लिए शक्ति निकल जाती है। जो बाते इसे निरंजन स्वामी ने उसे कही थी वे सारी बातें वसव को बता देती है। तद्पश्चात वसव निरंजन स्वामी से मिलता है तब निरंजन स्वामी वसव को जांबऋषि के सात बालकों को लेकर आने की आज्ञा देते हैं। वसव जांबऋषि के संस्थान में जाता है। जांबऋषि की जटाएँ बहुत ही लंबी थी उसके साथ साथ उन जटाओं में 'खड्ग' भी लगे हुए थे, जब वसव वहाँपर पहुँचता है तब जांबऋषि अपनी जटाओं को खींच लेते हैं जिससे वसव के खुर कट जाते है, उसी समय से बैलों के खुरों के दो भाग बन गए है, इससे पहले बैलों के खुर भी घोड़े के खुर की तरह जुड़े हुए थे। वसव जांबऋषि के इस प्रकार से कसम देता है कि आप के बच्चों को किसी भी प्रकार की तकलीफ़ नहीं दी जाएगी। जिसका दृष्टांत डक्कलवारों की नाटकीय शैली में इस प्रकार दिया गया है।

(मराठी) बोलत असता जीभ कापुन देईन।

आन तिशूळ शिंग असता एक शिंग घ्यावे काढून,

त्याचा पहिला घेवा बैल करुन, दूसरी सिंगारी जाण

आणि तिसरी रणसिंग, सिंगा तुमच्या घ्यावा

रणात पहिला भाग, चौथा घोटा घ्यावा करुन,

माझ्या नाकावरी बुक्की मारुन वरचे दात पाडुन

नाकी भेसण टोचणी, मला जंगलून मंगलून पाडुन

चोळून नर असता नामर्द करा, अंगाचे अर्धे कातड़े

काढून लावा तुमच्या कारणी, इतके त्याच्या जातीला

देऊन बसव्याने जांबऋषिला अभिप्राय दिला......

(हिंदी अनुवाद) मैं अपनी जबान काटकर दे दूंगा।

मेरे तीन सींगों में से एक आप निकल लीजिए।

उसमें से पहले का बैल बना दीजिए। दूसरी सिंगारी।

और तीसरा रणसिंगी, आप रख लीजिएगा।

चारों भाग आप लीजिएगा...... उसके बाद।

मेरे नाक पर मूक्का मारकर मेरे दांत गीरा दीजिए।

उसके बाद मुझे बैल बनाकर, नीचे गीराकर नर का नामर्द बना दीजिए।

मेरी चमड़ी निकलकर आप किसी भी काम में ला सकते हो,

इतना अपनी जाति को देकर, बसवा ने जांबऋषि को विश्वास दिलाया।

इस तरह का विश्वास दिलाने के बाद जांबऋषि अपने सात ही बालकों को वसव के स्वाधीन कर देते हैं। वसव उन बालकों को लेकर निरंजन स्वामी के यहाँ पहुँच जाता है। निरंजन स्वामी ब्रह्म देवता को बुला लेते हैं उसके बाद वेदों का अध्ययन किया जाता है तब उस अध्ययन से यह बात सामने आ जाती है कि उन सात बालकों की हत्या की जाए। जिसे डक्कलवार अपनी शैली में बताते हैं जिससे उनका समाज अपरिचित रहा है।

(मराठी)   तव वेदात निघाले काय । आषाढ़मासी अमावस्या दिवशी .

वार असे शनिवारी । मध्ये घटकेच्या दिवशी ।

आज्ञा केली वसव्याशी । तुम्ही मारावे रक्तमुनीशी ।

(हिंदी अनुवाद)   फिर वेदों के अध्ययन के नुसार । आषाढ़ की अमावस्या के दिन ।

शनिवार को । ठीक दोपहर के समय ।

बसवा को आज्ञा दी गयी कि । तुम्हें रक्तमुनी को मारना होगा ।

निरंजन स्वामी की आज्ञा मिलते ही बसवा अपने त्रिशूल से रक्तमुनी की हत्या कर देता है । जिससे धरती और पानी का जन्म होता है । दीपमुनी की हत्या करने से 21 स्वर्गों का जन्म हुआ, उन सात बालकों की हत्या करने से ही इस सृष्टि में चार दिशाएँ, सप्ताह के सात दिनों को नाम प्राप्त हुए है और इस दुनिया का विस्तार हुआ है ।

इस तरह 'डक्कलवार' अपने अन्नदाता मातंग समाज को अपना 'बसवपुराण' समझाने का प्रयास करते हैं । यह कथाएँ मातंग समाज में प्रचलित है जिसका एक मात्र कारण यह है कि डक्कलवार अपने पट प्रदर्शन के माध्यम से इस 'बसवपुराण' की कथाओं को प्रस्तुत करतें हैं ।

2.2.7.3. बीज उगाने की कथा

जांबऋषि के सात बालकों की हत्या के बाद फिर वेदों का अध्ययन किया गया जिसमें यह कहा गया था कि 'बळी' (बैल) और बसवा मिलकर बीज बोएँगे उससे निकलने वाली फसल से उन लोगों की उपजीविका चलेगी जिनका जन्म

उन अंडों से हुआ था । अब निरंजन स्वामी 'बळी' को बुला लेते हैं, उसके पास तीन प्रकार के बीज देते हैं । 'बळी' अपने त्रिशूल शिंगों के माध्यम से जमीन की उगाई करता है, उसके बाद बीज बोएँ जाते हैं जो इस प्रकार हैं – कपास जिससे कपड़े तैयार किए गए, दूसरी 'अंबाडी' (जिसका तेल बनाया जाता है) थी जिससे निवारा मिला और तीसरी ज्वार थी जिससे लोगों की उपजीविका चलती है । यह सब होने के बाद बळी बसवा को यह कहता है कि मेरे कारण ही सभी देवता जिंदा रहते हैं तब बसवा को क्रोध आ जाता है और वह वहाँ से निकल कर हिमालय पर्वत पर जाकर बैठ जाता है ।

2.2.7.4. हिमालय पर्वत पर बैठे बसवा के क्रोध का वर्णन

डक्कलवारों के बसवपुराणों में सागर की उष्णता से कहीं दूर हिमालय पर्वत के निर्माण की एक सुंदर कथा बताई जाती है । बसवा का निवास स्थान हिमालय की ठंडी जगह पर था, क्रोध में वहाँ जाकर बैठने की कथा का वर्णन डक्कलवार लोग काफी विस्तार से करते हैं, सारे देवता उसे लाने के लिए जाते हैं फिर भी वह नहीं मानता है । 'बसवपुराण' में उसके क्रोध का वर्णन इस प्रकार से किया गया है-

(मराठी) मग बसवा टाकी नाकी फुत्कार । त्याने देव केले बेजार
असा बसवा शिरजोर । नाआटोपे कधीची ।
त्याच्या फुत्काराची जोर धरणी पड़े महामहावरी ।
कीतीक उड़ती, जाऊन समुंद्रात पड़ती
कितीकाच्या मुरकुंड्या फिरती । कितीक मूर्च्छाना येऊनी
धरणी वरती पड़ती ।

(हिंदी अनुवाद)   अब बसवा हांफने लगा। उसने देवताओं को परेशान कर
दिया।
ऐसे न जाने की जिद्द करने लगा कि। किसी की बात नहीं
मान रहा था।
उसके हांफने से बड़े-बड़े घयल हो जा रहे थे।
समुंदर में जा गीर रहे थे।
कितनों के सिर कट गए, तो कुछ मूर्छित हो गए थे।

'बसव' तथा देवताओं के बीच लगभग 21 दिनों तक द्वंद चलता रहा परंतु बसवा किसी की भी बात मानने को तैयार नहीं था तब देवता अपनी हार स्वीकार करते है और वापस चले आते हैं। बसवा को लाने की सारी कोशिशें नाकाम रही, बक्षिसें जाहीर की गयी परंतु कोई तैयार नहीं था। उसके बाद फिर एक बार वेदों का अध्ययन किया जाता है जिससे यह दृष्टांत मिलता है – 'त्यात वारकूस जांबऋषि' अर्थात् उस वेद अध्ययन में जांबऋषि का नाम निकलता है। तब निरंजन स्वामी जांबऋषि को बुलावा भेजते हैं और यह भी कहते है कि हिमालय पर्वत पर बैठे बसव को लेकर आए जो क्रोध में हाँफ रहा है। जांबऋषि को भी अपने सात बालकों की छल से हत्या करने वाले बसवा से बदला लेना था, तब वे तुरंत स्वीकारते हैं और शपथ लेते है कि वे उसे लेकर ही आएँगे। यह कथा डक्कलवार अपने 'बसवपुराण' में बताते हैं।

2.2.8. बसव को नर का नामर्द बनाने की कथा तथा अन्य कथाएँ

जांबऋषि हिमालय पर्वत पर चले जाते है लेकिन जाते वक्त वह कुछ भी नहीं ले जाते है, रास्तें में उन्हें एक चंदन के वृक्ष का दृष्टांत प्राप्त होता है वह दृष्टांत इस प्रकार है चंदन का वृक्ष उन्हें कहता है आगे पलास का पेड़ है, उसकी

तीन जड़ों से काम चला लो । जांबऋषि पलास की तीन जड़े खोदकर निकाल लेते है उसमें से एक को ठोक-ठोक कर उसकी रस्सी बनाते है, एक की लाठी बना लेते है । इस प्रकार जांबऋषि बसवा को लाने के लिए हिमालय पर्वत पर चले जाते है । जांबऋषि का वहाँ पर जाना और दोनों के बीच संघर्ष निर्माण और अंत में जांबऋषि को विजय प्राप्त होने की कथा को डक्कलवार आवेश में आकर सुनाते हैं । उनके अभिनय से इस कथा को रूप मिल जाता है, श्रोताओं को ऐसा लगता है जैसे वे प्रत्यक्ष किसी युध्द को देख रहे हो ऐसा अनुभव श्रोताओं को होने लगता है । उसमें दिखाए जाने वाले चित्र, शब्दों का बेजोड़ प्रयोग जिसमें संगीत और अभिनय का भरपुर मिश्रण होने से यह कथा परिणाम कारक संपन्न होती है । डक्कलवारों के शब्दों में कथा का एक भाग-

इन दोनों के युध्द का आरंभ अभिवादन से ही होता है –

(मराठी) समोर बसव्या पाहुनी । शिवलिंग शरणात घातीला त्यासी ।
तव जांबऋषि बोले बसव्याला । तू शूर मी वीर ।
तव बसव्याचा कुरद खवळूनी । तो धाव जांबऋषिच्या
अंगावरी आला । तव जांबऋषिनी सडासा फासा घालूनी
अडकविला शिंगाला । हसडुन पाडिला दरणीला ।
पाडीला, डांगकाठी दिली त्याच्या अंडाळीला ।
वीलमंत्राचा गोठा करुन । बसवा मर्दन मर्दाचा नामर्द केला
मुखावरी मुकरवी मारुन वरचे दात पाडिले ।
त्याने केला तिरसुळ सिंग उपटुनी । येसण चेचली त्याच्या नाकाला ।
बसवा जार घेऊनी हाती बसवा घेऊनसानी ।

तो देवाच्या सभेत गेला।

जांबऋषि बसवा को निरंजन स्वामी के स्वाधीन कर देते है उसके बाद निरंजन स्वामी बळी को बुलाकर उस बळी को ही उपहार के रूप में जांबऋषि के स्वाधीन करते है। साथ में 'बळी' से वचन माँग लेते हैं कि जांबऋषि को वह कभी धोका न दे, उनके साथ बैमानी न करें। तब 'बळी' निरंजन स्वामी को इस प्रकार वचन देता है –

(मराठी) मी जर बैमान होईल जांबऋषिला
तर उणे माझा वंशाला
जो पर्यंत चंद्र-सूर्य आहे गगणाला
तो पर्यंत बैमान होनार नाही जांबऋषिला
ऐसे बोलुन बळीने वचन दिले 33कोटी देवांना
आणि निरंजनी स्वामीला
हातात हात घालून जांबऋषिला
जांबऋषीने मदमेरुला बसवा अंधिला

(हिंदी अनुवाद) अगर मैंने जांबऋषि से बैमानी की।
तो मेरा वंश झूठा खाएगा।
जब तक चांद-सूर्य है गगण में।
तब तक बैमानी नहीं करुंगा।
ऐसा कहते हुए 33 कोटी देवताओं और
निरंजन स्वामी को बळी वचन दे रहा था।
तब निरंजन स्वामी से हाथ मिलाकर।

जांबऋषि ने बसवा को उनके हवाले कर दिया ।

उपर्युक्त कथा आज की समाज व्यवस्था में 'बळी' और 'मांग' इन दोनों के परस्पर संबंधों का पुरावा देती है । डक्कलवारों के 'बसवपुराण' में अनेक प्रकार के उत्पत्तिओं की कथाओं का स्पष्टिकरण दिया गया है । इस पुराण कथाओं में यह बताया गया है कि समाज में जो भी प्रथाएँ प्रचलित रही है उसका निर्माण देवताओं ने ही किया है ऐसा आभास दिलाते हुए वे कथा को समझाने का प्रयास करते हैं ऐसा उनकी प्रस्तुति से लगता है । वर्तमान परिस्थिति में असंतोष की तरफ ध्यान न देकर सिर्फ संतुष्टपूर्ण जीवन जीने के लिए समाज को प्रेरित करने में इस कथा की योजना अप्रतिम सिध्द होती है ।

2.2.9. मातंग समाज को बसव का श्राप

डक्कलवारों के 'बसवपुराण' में मांग समाज के राऊत नामक व्यक्ति ने बसवा को अपने बस में कर लिया था, उसकी अकड़ निकाल कर रख दी थी इस तरह की कथा दी गयी है । बसवा से युध्द कर के उसे बैल बनाना, नर का नामर्द बना दिया जाना आदि । अपने परिवर्तित रूप के पश्चात बसवा ने 'मांग' समाज को श्राप दिया था वह श्राप इस प्रकार है बसवा ने 'मांग' राऊत से कहा था- तुम दरिद्री रहोगे, भिखारी बन जाओगे, मिट्टी में मिला हुआ अन्न ही तुम्हारे नसीब में होगा आदि । आज भी मातंग समाज पर इस श्राप का प्रभाव दिखाई देता है । उनकी दरिद्र्यता कारण उनका होता हुआ शोषण नहीं बल्कि बसवा का दिया हुआ श्राप है ऐसा वे मानते हैं । यही करण हो सकता है जिससे मातंग समाज में समाज व्यवस्था के विरुध्द किसी भी प्रकार का आक्रोश दिखाई नहीं देता है । उनके होते हुए शोषण का अंदाजा भी उन्हें नहीं था जिससे शोषण के

खिलाफ़ संघर्ष करने की प्रेरणा उनमें जागृत नहीं हो सकी । जिन परिस्थितिओं से वे गुजर रहे थे उसी में वे खुश थे । लेकिन परिस्थितियाँ बदलती रहती है । आज का मातंग युवा वर्ग शिक्षित हो गया है । शिक्षित होने के कारण वह इस तरह की कथाओं 'बसवपुराण', 'जातिपुराण' का खंडण करने लगा है । वह समाज व्यवस्था के दोगले चेहरें पढ़ने लगा है और अपने समाज को यह बताने का प्रयास कर रहा है कि हमारी दरिद्रता का कारण बसवा का दिया हुआ श्राप नहीं है बल्कि इस समाज व्यवस्था द्वारा हमें गुलाम बनाए जाना है ।

2.3. पोतराजों का मौखिक वाङ्मय

लक्ष्मी माता या 'मरीआई'[5] के 'मांग' भक्तों को 'पोतराज' कहा जाता है । पोतराजों को ही 'भूत्या' नाम से संबोधित किया जाता है । अंधविश्वास से ग्रस्त समाज में कुछ धारणाएँ रूढ़ सी हो गयी है, ऐसी कुछ धारणाओं में से मातंग समाज देवी-देवताओं को मन्नते माँगता था, इस तरह की धारणाएँ पोतराजों में बड़े पैमाने पर देखने को मिलती हैं । जब भी पोतराज घराने में पहली संतान जन्म लेती है तो उनका मानना यह होता है कि इसका जन्म देवी माँगी हुई मन्नत से हुआ है । वे अपनी पहली संतान को देवी के नाम से छोड़ देते हैं । इस तरह देवी-देवताओं के लिए अपना जीवन अर्पण करने वाले बालक को बुजुर्ग गुरु द्वारा दीक्षा देकर पोतराज बनाया जाता है जिस प्रकार ब्राह्मण के बच्चों को उसके निश्चित आयु के अनुसार द्विजत्व प्रदान नहीं हो सकता उसी प्रकार इन बच्चों को भी पोतराज नहीं बनाया जा सकता, ना ही वह अपने गुरु की दीक्षा के बिना पोतराज नहीं बन सकता । हर एक बालक को पोतराज बनने से पहले

अपने गुरु से गुरुमंत्र पाकर दीक्षा ग्रहण करनी पड़ती है । पोतराज बनने के बाद उसमें देवी का रूप संचार हो जाता है । फिर वह सर्व सामान्य लोगों को तरह-तरह की कथाएँ सुनाता है, ऐसा वे लोग खुद बताते हैं । उदा. के लिए नींब के पत्तें खाना, हाथों पर जलता कपूर रखना, उसे खा लेना, सिंदूर खाना, बदन पर कोड़े मार लेना आदि । जिन पोतराज बालकों को देवी के स्वाधीन किया जाता हैं, वह अपना बचपन अपने घर में ही व्यतीत करते हैं और बड़े होते ही एक वृध्द पोतराज से गुरुमंत्र की दीक्षा दी जाती है । गुरु उन बालकों को अपनी गोद में लेकर पोतराजों की दीक्षा देता है ।

2.3.1 'बढ़ण' विधि

'बढ़ण' विधि उत्साह की तरह मनाई जाती है । जिन बालकों को पोतराज बनाया जाता है, उसकी आयु 10-14 साल की होते ही उसके माता-पिता को यह चिंता लगी रहती है कि माता का प्रकोप लगेगा, किसी समय कोई भी 'बढ़ण'[6] विधि करने को टाल देते हैं या किसी तरह के संकट के आ जाने से या घर में कोई बीमार रहने से वे यह मान लेते हैं कि यह माता का ही प्रकोप है । तब वे जल्द से जल्द 'बढ़ण' विधि संपन्न करते हैं ।

'बढ़ण' उत्सव मनाने के लिए एक दिन निश्चित किया जाता है । सामान्यतः आषाढ़ या श्रावन माह के 'मंगल' या 'शुक्र' को ही यह पूजा की जाती है । क्योंकि मंगल और शुक्र को वे लोग देवी का दिन समझते हैं । जब यह दिन निश्चित किया जाता है तभी एक भैंसे को खरीदा जाता है और उसे देवी के

नाम से छोड़ दिया जाता है ताकि वह खा-पिकर मोटा हो जाए, वह किसी के भी खेत में जाकर कुछ खा लेता है तभी उसे कोई नहीं मारता क्योंकि वह देवी के नाम से छोड़ा दिया जाता है। बढ़ण विधि के दिन घर-द्वार, मंडप आदि सजाएँ जाते हैं। बढ़ण के दिन उस बालक को और उसके माता-पिता को उपवास रखना पड़ता है। उस दिन बालक को और उसके माता-पिता को पूरे शरीर पर हल्दी लगाई जाती है, साथ ही पूरे परिवार को वाद्ययंत्र बजाते हुए नहलाया जाता है। उनको नहलाने वाली गाँव या सगे-संबंधियों में से 5-7 महिलाएँ रहती है। यह सब होने के बाद 'बढ़ण' का जुलूस निकाला जाता है।

2.3.2. 'बढ़ण' का जुलूस

यह जुलूस नियमावली के रूप में निकाला जाता है। इसमें 'मांग' समाज के चर्मकार वाद्ययंत्रों का महत्त्व रहता है जो विशिष्ट उत्सवों के लिए बजाया जाते हैं। आज कल तो बँड बजाने की प्रथा रूढ़ हो गयी है, पहले ऐसा नहीं था। इसके साथ-साथ 5-10 महिलाएँ पानी से भरे हुए घट लेकर चलती रहती हैं। उस घट में नीम्ब के पत्ते रहते है। मरीआई के संबंध में किसी भी कार्यक्रम में नीम्ब के पत्तों को बहुत महत्त्व दिया जाता है। इसका कारण पूछने पर वे लोग बताते हैं कि 'अंबाराज' (आम) और 'लिंबराजा' (नीम्ब) इन दोनों ने मरीआई को बहुत मदद की थी। बताया जाता है कि जो स्त्रियाँ घट लेकर चल रही होती है वह स्त्रियाँ भी माता का रूप धारण कर चलती है जैसे- खूले बाल, माथे पर

सिंदूर, हल्दी आदि । उनके पीछे गुरुमंत्र देने वाला पोतराज तथा वह लड़का जिसे पोतराज बनाया जा रहा हो वे रहते हैं और उनके पीछे बाकी सारे लोग रहते हैं । पोतराज तरह-तरह के अंगविक्षेप करता रहता है क्योंकि उसमें देवी का रूप आ जाता है । उसके चेहरे पर हल्दी, सिंदूर लगे हुए रहते है । ऐसे में जुलूस में चलने वाले लोग बीच-बीच में आकर उस बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए नींबू और पैसे फेंकते हैं । गुरु और शिष्य के पीछे पुरुष और स्त्रियाँ तरह-तरह के अंगविक्षेप करते रहते हैं । इनके अलावा पूजा का साहित्य लेकर चलने वाला एक व्यक्ति रहता है जिसके सिर पर एक टोकरी रहती है जिसमें पूजा का साहित्य रहता है जैसे उड़द की दाल, नारियल, रोटी के टूकड़े, अंडें, दो-मुर्गे-मुर्गियाँ, अगरबत्ती, सुखा नारियल, हरी चुडियाँ, कँगी, आईना, सिंदूर आदि चीजों का समावेश रहता है । वे लोग बताते हैं कि यह पूजा की टोकरी बहुत बजनदार रहती है लेकिन पोतराज अपने मंत्रों के माध्यम से उसे हल्का बना देता है, उसके बाद उस व्यक्ति को वह वजन नहीं लगता है उसे फूल लेकर चलने का अनुभव होता है । इन सबके पीछे माता के लिए छोड़ा गया 'रेड़ा'[7] रहता है । इस तरह से इस जुलूस का थाँट-माँट होता है । यह जुलूस गाँव की दाइने ओर से होते हुए निकाला जाता है और जहाँ पानी का नाला या नदी रहती है वहाँ जाते है नदी ना होने पर कुएँ पर भी काम चलाया जाता है । वहाँ जाकर जगह साफ की जाती है उस जगह पर हल्दी, सिंदूर, चाँवल आदि डालकर सजाया जाता है और वहाँ पर पूजा का साहित्य रखा जाता है । उसके

बाद मंत्रोंचार कर पूजा आरंभ की जाती है । इस पूजा में विशिष्ट प्रकार के मंत्र-तंत्रों का प्रयोग किया जाता है ।

2.3.3 . जलपूजन

जिस जगह को सजाया जाता है उसी जगह पर उस बालक को पूर्व दिशा की ओर देखते हुए खड़ा किया जाता है । उसके हाथ में आरती रहती है । आरती में जलने वाला दिया 'कणकी'[8] से बना हुआ रहता है उसमें कपूर जलाया जाता है । कुछ जगहों पर आरती की जगह होम जलाया जाता है । होम जलाने के बाद वह बालक उस घट को आरती करता है, तब पोतराज गुरु 'धूपात्री'[9] गाता रहता है । इस धूपात्री गाने की प्रथा को ही जलपूजन कहा जाता है ।

जलपूजन के बाद पूजा की सामग्री नदी में बहा दी जाती है, उसमें से लोटा और थाली पोतराज रख लेता है, बाकी सारा साहित्य नदी में फेंक दिया जाता है । बताया जाता है कि पूजा की सामग्री बहाते समय माता उस पोतराज को भी खींचने का प्रयास करती है परंतु पोतराज अपने मंत्रों-तंत्रों का प्रयोग कर बच निकलता है । इस तरह की धारणा इस समाज में रूढ़ है । इस विधि के बाद वापस जाना होता है लेकिन जिस रास्ते से आते हैं उस रास्ते से नहीं जाते हैं क्योंकि उसके विरुध्द दिशा से जाने पर गाँव को प्रदक्षिणा मिलती है, ऐसी उनकी धारणा है ।

2.3.4. गुरुमंत्र

जुलूस समाप्त कर घर लौटने के बाद 'कानशारवनी'[10] का कार्यक्रम लिया जाता है, जिसके लिए धोती का पाँच हाथ नाप कर एक टूकड़ा लिया जाता है, बची हुई धोती का टूकड़ा पोतराज ओढ़ लेता है बाकी का बीछाया जाता है। उसके बाद उस पर पाँच छुआरे, पाँच सूखे नारियल आदि रखा जाता है, उसे गोद भरना कहा जाता है, जिस पर पोतराज बैठता है। वहाँ बैठने के बाद पोतराज उस बालक को भी अपनी गोद में लेकर गुरुमंत्र देता है। इसी को पोतराजों की भाषा में 'कानशारवनी' कहा जाता है। जो मंत्र गुरु अपने शिष्य को देता है उसका एक नियम है कि वह मंत्र किसी ओर को न बताएँ। ऐसा वचन हर एक गुरु अपने शिष्य से लेते हैं। यह सब होने के बाद गुरु अपने शिष्य को जोर से यह कहता है कि 'क्या दोगे' तब वह शिष्य कहता है 'तन, मन, धन और देह अर्पण।'

गुरुमंत्र देने के बाद माता के प्रतिमा की पूजा की जाती है। पूजा के समय वहाँ पर एक हार रखा जाता है। पोतराजों का 'सोट' भी यही लोग तैयार करते हैं। वह एक नारियल से बनाया जाता है नारियल जटा निकालने के बाद उस नारियल को तीन छेद रहते है उसमें से विधिपूर्वक पाँच धातु डाले जाते है, उसके साथ-साथ उसको सिंदूर लगाया जाता है और उसके बाद उसे धागे से बुना जाता है। उस सोट की भी पूजा की जाती है। पाँच पोतराज मिलकर यह पूजा संपन्न करते हैं, गुरु अपने शिष्य को हवा देता रहता है अर्थात् उसी समय

से वह देवी का रूप धारण करने लगता है । उसके कंधो पर सोट रखता है, गले में माता की प्रतिमा का एक पत्रा तथा कवड़े की माला पहनाता है । अब वह बालक पूरी तरह से भक्त बन जाता है । ठीक उसी समय उसे पोतराज का पोशाक पहनाया जाता है । रंग-बिरंगे कपड़ों से तैयार किया हुआ लहँगा या सदरा यही पोतराजों का पोशाक है । सिर के बाल बचपन से वैसे ही रहते है, आगे चलकर उनका रुपांतरण जटाओं में हो जाता है । पोतराजों के पैरों में घुंघरू बाँध दिए जाते हैं, साथ-साथ कमर पर भी घुंघरू बाँधे जाते हैं । जो पोतराज बन जाता है उसे अविवाहित रहकर ही भिक्षावृत्ति कर अपने जीवन का निर्वाह करना पड़ता है । कुछ लोग विवाह भी कर सकते हैं, विवाह करना या न करना ऐसा कोई नियम नहीं है । उसके बाद रेड़े की बलि दी जाती है । इतना सब कुछ करने के लिए बहुत खर्च उठाना पड़ता ऐसे में अगर वह व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर रहता है, तो सभी पोतराज भिक्षावृत्ति कर उसमें से उस व्यक्ति को आर्थिक रूप से मदद करते हैं ।

2.3.5. ज्ञानमाला

भक्त को दीक्षा प्रदान करने के पश्चात 'ज्ञानमाला' पहनाने की स्वतंत्र विधि मनाई जाती है । ज्ञानमाला पहन लेने के बाद उसे किसी भी तरह का डर नहीं रहता है ऐसा उनका मानना है । एक लकड़ी के पाट पर पाँच फुलों की मालाएँ रखकर पूजा की जाती है । गुरु और शिष्य देवी का रूप धारण कर लेते हैं तब शिष्य को वहाँ से थोड़ी दूर ले जाया जाता है, गुरु उन पाँच मालाओं में से एक छुपाकर रखता है, शिष्य को वह माला ढूंढनी होती है, वह ढूंढ़ने में

कामयाब हो जाता है तो समझ लेना कि उसने देवी का रूप धारण कर लिया है । उसके बाद गुरु उस शिष्य को वही माला पहनाता है जो वह ढूंढकर लाता है उसे ही ज्ञानमाला कहा जाता है ।

2.3.6. जागरण

यह विधि सिर्फ मंगल या शुक्र के दिन ही संपन्न की जा सकती है ऐसा पोतराज कहते हैं या फिर बढ़ण के दिन भी की जा सकती है कभी कुछ कारणों से उस दिन नहीं होती है । इस विधि में पोतराजों को बुलाया जाता है । पोतराज सारी रात अलग-अलग तरह के खेल दिखाते हुए, ओवी[11] गाते हुए जागरण करते हैं । उदा.

मूळ रंमे शेवट अवघ्याचा करतार ।
अनंत काळाचा पिता सद्गुरु नाहीं कसे म्हणता ।
त्याच्या विना पान हलेना, का पडे भ्रांता ।
हाती लेखनी घेऊन शोध करा पुरता ।
कोण्या ठिकाणी शक्ति नांदती सांगे निवांता ।
शुक्रवार दिन आई साहेबाचा वार ।
कोट करुन या सूर्याचं तेज, वरखेडे नागरी पाना फुलाचा आगर ।
नवस येतात ते अंत ना पार,
नवलाख रेडा पडतो आईच्या मकानावर ।
बसून सिदोजी पोताजी, धरुन धूपार्तीचा आकार, शिदोजीबुवा मल,
आळवितो तेहतीस कोटी देवताला ।

नवलाख पोतराज खेळतो देवीच्या म्होर ।

पाई पादमबळ, बेंबी हिरा, झाली त्या देवीची तैयारी ।

छबिना चाललाय मारुतीकड़े

नवलाख पोत खेळतोय बाईच्या म्होरं ।

केशव भक्त लोटतो मारुती चरणावर ।।

इस तरह की ओवी या धूपात्री 'बढ़ण' के समय गायी जाती है । उपर्युक्त गीतों में पोतराजों की शिष्य परंपरा को दिखाया गया है । इन गीतों में गुरु अपने शिष्यों को ओवी देता है उसमें अपने नाम का जिक्र करता है उसी तरह वह एक से दूसरे की ओर बढ़ती रहती है वे अपने नामों का जिक्र करता है जैसे- शिदोजी, पोताजी, केशव आदि के नाम इस गीत में आए है । गुरु शिष्यों के साथ-साथ उस गाँव का भी नाम लिया जाता है, जहाँ पर वे लोग जागरण कर रहे होते हैं ।

वैशाख माह में लक्ष्मी माता का मेला लगता है । इस मेले में सारे पोतराज एकत्र आते हैं, होम रखते हैं तब वे ओवी गाते हैं । उसमें से महिषासुर वध की कथा गीत के माध्यम से बताते हैं-

हुँकार हुँकार निरंकार निर्धारी, अन् बाईची निघाली स्वारी,

नवता धरुन होती शक्तीसागर, होता सारा जाळ,

पाण्यामधी टाकून इंधन, आणि इंधनात होतं रे कोण कोण

रुद्रमणी, महामणी, जळमणी, वळमणी

आन् रक्तमणी धरुन बग केला धरतीला,

खळखळा जमीन अहाळली, दैत्याचा खळबळा झाला,

देवाच्या बागाचा खैमान केला,

देव रागा-कुरदामही आला, अन् बीजा होम तयार केला,

अन् होमातून बाई निघाली हंकारातून ।

यह ओवी गाते हुए ही पोतराज विश्लेषण करते रहते हैं जिसमें भी डप आदि बजाएँ जाते हैं वह कथा बताते है कि देवताओं के होम से माता निकली तब देवताओं से वह पूछती है क्या चाहिए ? तब देवता सर्वनाश करने वाले महिषासुर का नर संहार करने की विनंती करते हैं । तब माता खड्ग[12] लेकर उस पर वार करती है तब उस राक्षस के रक्त की बूंदों से अनेक राक्षस तैयार हो रहे थे । यह चमत्कार देख माता फिर देवताओं के पास आ जाती है । तब देवता उसे एक उपाय बताते हैं कि तुम चील बनकर उन रक्त की बूंदों को उपर ही झेल लो वह वैसा ही करती है । फिर से युध्द शुरु होता है ।

सगळे दैत्य खपविले, एक महिषसूर दैत्य राहिला ।

म्हणून बाईनं सोन्याची सुपाली, मोत्यानं गुफली ।

चतर शिंगीच्या डोक्यावर खेळायला गुंतली ।

दैत्य म्हणे आता इला खातो ।

त्यानं पाताळातून दाभड घातल काय त्या दैत्यानं ।

बाईची गपकन् अशीच नदर, फिरली काय दैत्याकड़ ।

त्याच्या दाभाडाखालून दाभाड घातल काय माईनं

घातलं काय देवीनं ।

असा पटांगणात येऊन देला अन् कडकडा चाऊन फेकला ।

इस तरह से स्वाभिनय कथाएँ बताई जाती है । वह एक लयबध्द रूप में बतायी जाती है । इसकी विशेषता यह है कि पोतराज बीच-बीच में रुक रुक कर नाचने लगते हैं । उस कथा का विश्लेषण करने में समय लेते हैं जिससे जागरण संपन्न हो सके ।

2.3.7. पोतराजों की संभावना

बढ़ण या जागरण आदि के उत्सवों के बाद पोतराजों की संभवना की जाती है जिसमें जिनके घर में उत्सव मनाया जाता है वे लोग जो मुमकिन हो वही देते हैं । इसके अतिरिक्त जादू टोना करना, भूत पिशाच उतारना, जड़ी बूटी देना, नजर उतारना आदि कार्य पोतराज करते हैं । आज भी कुछ जगहों पर मातंग जाति के वैद्य पोतराज ही है । क्योंकि बीमारी मरीआई के प्रकोप से ही आती है ऐसी उनकी धारणा रहती है । पोतराज गाँव में भिक्षा माँगकर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं । ऐसे में पोतराजों में आपस में द्वंद चलता है वे अपनी चालाकी दिखाने का प्रयास करते हैं जैसे- दो पत्थरों को लडाई लगाना, आँखों, कानों में से सुई, सिंदूर निकालना, सिंदूर खाना इस तरह के अद्भूत प्रयोग कर लोगों में श्रध्दा बढ़ाने का काम करते हैं । उनकी आपस की भींडत देखने लायक रहती है । मंत्रों के माध्यम से एक दूसरे को मात देने की कोशिश की जाती है । पोतराज बताते हैं कि यह मंत्र नहीं एक प्रकार से नाटक किया जाता है । जिससे उनके काम को सार्थकता मिल सकती है । उदा.

बिसमिल्ला रहिमान रहीम, दनके पड़े कुरान,

अबु लगु चोट, पापे की चंडाल,

ढाली झोली बन, फकीर फकरा निकाम् मनका,

सैलीन धागा, गायकवाड पटेल,

सवा हात पगडी, बनके जाव, चलते जाव,

बडे मेहरबान, अलुंगका पलुंग,

सोने का पलुंग, एक अल्ला, सब दुनिया का भलाहि भला,

अव्वल दर्शन पिरुका, सैला मेरा पर कंठा मेरे गले का ।

इस मंत्र के बाद प्रतिस्पर्धी कोड़े से वार करते हुए जवाब देते हुए मंत्र मारता है

मुसलमान मेहरबान ये पेटी में क्या क्या भरा, नवलाख तारांगण भरा,

कंधारका हाजीशा, तुझे आई नमस्कार, तू माझी एक आरती ।

2.3.8. पोतराजों की धुपात्री : मंत्रात्मक कवने

धुपात्री या कवने पोताराजों के मौखिक वाङ्मय का एक भाग है । बढ़ण करना आदि में पोतराजों को बहुत महत्त्व दिया जाता है । आषाढ़ महिने में या अन्य दिनों में पोतराज ढ़पली (हलगी) बजाते हुए भिक्षा माँगते हैं । भिक्षा माँगते समय लक्ष्मी माता या लखाई के संबंध में गीत गाते हुए नृत्य करते हैं । पोतराज कथात्मक गीत भी गाते हैं, पुराणों की कथाओं को भी गीतों का रूप देकर गाते है । इन्हीं धुपात्रीओं के आधार पर पोतराजों का स्थान निर्धारित किया जाता है । पोतराजों को कितनी धुपात्रियाँ आती हैं यही निर्भर करता है । पोतराज धुपात्री बहुत ही श्रध्दा से गाते हैं यह गीत गेय रूप में नहीं रहते है

लेकिन उनमें एक आकर्षक प्रवाह रहता है जिससे श्रोताओं पर प्रभाव डालने वाली लय दिखाई देती है। उदा. के लिए देख सकते हैं-

जळ नेमल, जळ थापल।

जळाच्या काठी, झोटिंग झोटी।

साती आसरा, आठवा म्हशासुरा।

जळात लक्ष्मी, जळात उभी राही।

निरळ वरती हात देई, रेड्या बकर्याच पूजन होई।

बाई बाई, तुजं लेनं काई।

पाढ़रा फका, पांढरी कंचोळी।

लेईली सोन्याचं काजळ।

तुजकार पोतराज मी धुपात्री बाईची घडोघडी करी।।

धुपात्री में हमेशा सात आसरा आठवा म्हैशासुरा का उल्लेख बार-बार किया जाता है साथ ही लक्ष्मी के विराट रूप का वर्णन किया जाता है।

दूसरी एक धुपात्री में लक्ष्मी के अवतार की कथा है। जिसमें निरंजन का उद्भव कैसे हुआ साथ साथ चंद्र-सूर्य, हवा-पानी आदि का उद्भव कैसे हुआ यह बताते हुए लक्ष्मी माता के प्रकट होने को इस धुपात्री के माध्यम से समझाने की कोशिश करते हैं।

‘पाताळात गेले पाय, लक्ष्मी ती निरभुवनाची माय

धरतरी लक्ष्मीचं पोटं, आपले बाळ आपुन खाय

तरी तिचं मन नाही भाय ।’

कुछ धुपात्री में आदि माता के गुढ़ वर्णनों के साथ-साथ मरीआई के ध्यान का भी वर्णन किया जाता है ।

‘अरकट मरी, परकट मरी, मरी माता ।

तुझा रेडा, नगरीस घालून येढ़ा ।

येशीच्या दारी, पोतराज सोंगाडा ।

2.3.9. पोतराजों की धुपात्रियाँ

यही पोतराजों का मौखिक साहित्य है जो पोतराजों द्वारा इस प्रकार की धुपात्रियाँ विशेष विधि अंतर्गत गायी जाती है । ऐसी ही धुपात्रियाँ को उदाहरण स्वरूप दिखाया जा रहा है ।

1. खिर सागर, निरंजनी-निराकारातुन निघाली बाईची सवारी,
संग चांद-सूर्य, वारा हो पाणी, घऊनी फौजाचे भार,
तिन्ही ताळ, सप्त पाताळ कापायला लावती थर, थर,
हिगळत माथ थोर आंत या हुंकार माईचं तळ,
आकांत पुरुष झाला, दुनियात परलय झाला, चिरी खिरी गावाला, ड
पाताळात गेले पाय, लक्ष्मी को तिरभुवनाची माय,
धरती लक्ष्मी चे पोट
आपले बाळ आपुन खाय, तिचे मन नाही माय
बाई बाई तुझ लेन काई ।।धृ।।

2. अरकट मरी, परकट मरी, मरी माता,
तुझा रेडा, नगरीस घालुन वेढ़ा,

योशीचा दारी, पातराज सोंगाडा,
भरला लिंबानाराळानं गाडा,
निबांचं नेसणं, दहीभात शिपाडनं,
रक्ता रेडाचं खाणं, पांच सवाष्णीचं पुजनं
बाई बाई तुझ लेन काई, पांढरा फका पांढरी कांचुळी,
अशी या बाईचं लेनं, नाकी मुक्ताफळ,
लेली सोण्याचं काजळ, सातायान पाताळ
तुजकार पोतराज धुपात्री बाईची धडोधडी करी ।।
3. करल कोल्हापुरात आईचं घर,
हंकार बाईचं तळं,
तळ्यातुन सुटल भेसूर महामारीचं वारं,
देहुडी लखापतीचं माहेर, तीस लक्ष जादू, तीस लक्ष चेला
असा लक्ष्मीचा गाडा, गाड्यातल्या चौचाकी
निन्हाता पोतराज, मी धुराच बैल हाकी,
हाक हाक हाक रे पातीचा गाडा,
जाऊंदी या पन शहरवरी
पानाफुलाची आगर,
लक्ष्मी करिती रांग
गाड्यान् घोड्याची इक्रारुपाची
सुई एवढ्या मुखाची
हत्तीवर हौद, उंटावर बान,
गौड देस, बंगल देस, बाईन घतलं तेलंगाण,
तेलंगाणामंदी येल्लम्मा, पोच्चम्मा, दुर्गाम्मा,
गवळघशी मशाम्मा, सावरकराची दानम्मा, मुसलमानाची नूरुम्मा,
सोन्याचा देव्हारा, रुण्याचा करारा,
बाई बाई तुझ लेनं काई पांढरी कंचुळी ।। धृ ।।

1. गनिण्या गनिण्या गंडरूप धनिण्या,
गण्याती मल्लयानी, माणिकमोती किल्यानी

पहिली काडी गण्याची,

गण्याचे हाती चतुरंग काठी,

गण्या लागे इन्नाच्या पाठी, एकेक अक्षर पंडिता

पंतोजीचे मोतीहार, मोती भुंगा सले,

तेची पिल्ले टपासले,

टपासलेल्या भवर्या गणोबाच्या सातसे नवर्या,

किलबिल किलबिल किनारसे, देव गेले बनारसे,

बनारसेच्या ढवळया गाई, अर्धा डोंगर चरुन येई ।

चरता चरता पडला शिव, आम्ही पुंजू गणोबा देव,

गणोबाचे लोभे, चंदन सोने आरी करु, वारी करु, इया घरी पाणी भरु

शिव हर हर कैलासपती येड्या लिंग्याचां पूजन करती ।। धृ ।।

2. पहिला जपू श्रीगणेशा, दुसरा जपू मातानपता,

माता म्हणजे तीरथ काशी, पिता म्हणजे भगवान,

त्यासी नमस्कार । घडोघडी इनंती, चांदन् सुर्वेनारायणासी,

शिंगणापूरच्या महादेवासी, गाँव पंढरीच्या हनुमानाशी,

जय नमस्कार, माझी एक आरती ।। धृ ।।

3. आधी नेमतो गणराज घणपती । चौदा विद्याचा गणपती ।
हाती घऊनी लाडवाची वाटी । वाकडी सोंड फिरवून गोमटी ।।
माथ्यानं शेंदूर शोभती । श्रीशारदा, भासरी शारदा ।
एक ब्रह्मयाची कोरी । देव बसले होते गंगावरी ।।
निर्मळ जागा पाहुन । तिथ टाकलं आसन । मी आईचं करितो चिंतन ।धृ।

4. उठा उठा बायानों करा तुम्हीं सडासारवण । दारी एक तुळशी इंद्रावण ।।
म्होरी होती आखाडी एकादस । म्हणून उपास होतं बाळ गोपाळास ।

हाताचे टाळ-मृदंग सोडुन देती । म्हून मरी पंढरपुरास जाती । विठ्ठल सखायस काय बोलती ।।
अरे अरे विठ्ठल सख्या । आता तरी आशा दे मला ।
आता देतो महामरे तुला । डोळ्याच पावक लवरतर जायला ।।
कुणाचे मारती ढोरं । कुणाचे मारती पोरं ।।
अशी खबर कळाली करडं कोल्हापुरी । महिना भारी ।। कार्हन जोडतेत नानापरी ।।
हाली मवाली, देसाई न् देशमुख, तेली न् तांबोळी, वाणी न वठाव्
बाळ गोपाळ बसून, एक दिवशी विचार केला । मग महामह्रा हल्या पंजर देला ।।
तिथं आंबाजी सरदार लिंबाजी सरदार । तिथं एक मांग मोहबतदार जाऊन काढलं महामरीच कार्ह ।।
कुरवाडी न पापडी, खैरा कोंबड्याची ऐट बारी ।।
लिंबानाराळानं दुरड्यामरी । अटकुट मेंढीचं सादन करी । तुझे आई नमस्कार माझी एक आरती ।।

5. हा हा हात् म्हनी श्रीगणेशायनम् ।
दुसरं नमन गुरुच्या चरणी ।
हरिनामाचा टिळा नेमाचा पोतराज व्हता ।
शिरी-मस्तकी जटा । जटाजटावन कुन थोर ।
नवखंड पिरथिमी या जटाचा आधारं ।
चिमाजी बुवाची खुन करु कोणावशी, सांगा सत्तर ।
नोटी मारीत पोतराज या जटाचा आधारं ।
धुपार्ती पंचार्थी गुरुराया तुझी एक इनंती ।
हा हा हात् म्हणले बिसमिल्ला, बिसमिल्ला रहमान रहीम ।
जनके पडे कुरान । आग लागे पापी चांडाल । झोली बंद ।।

'मांग' पोतराजों की परंपरा में बढ़ण या कारन से होने वाले जागरण का स्वरूप परिस्थितियों के अनुसार बदलता हुआ दिखाई दे रहा है । जो गीत पोतराज गाया करते थे अब वे गीत लुप्त होते दिखाई दे रहे हैं । हमने जिन

धुपात्रियों और कवनों पर चर्चा की है उनमें सृष्टि के उत्पत्ति की कथा, गणेश, महादेव आदि के साथ-साथ चाँद-सूरज, हवा-पानी आदि को अभिवादन करने की धुपात्रियाँ भी मिलती है, इसके साथ ही लक्ष्मी के प्रचंड रुपों का वर्णन, तथा नर्गुण निराकारों में उसके उत्पत्ति की कथा का वर्णन भी इन धुपात्रियों में देखने को मिलता है । कुछ कवनों में आध्यात्मिक अर्थ भी छुपे हुए है ऐसा लगता है, कुछ शब्दों के अर्थ ही नहीं मिलते जिसके कारण इन गीतों की गुढ़ता और भी बड़ जाती है ।

पोतराजों की परंपरा सामान्यतः महार और मातंग इन दोनों जातियों में प्रचलित थी । डॉ. अंबेडकर के बौध्द धम्म की दीक्षा लेने के साथ-साथ महारों ने पारंपारिक रीति-रिवाजों या परंपराओं का खंडन किया था । तभी से यह प्रथा सिर्फ मातंग समाज में ही रूढ़ हो गयी थी । परंतु आज के दौर में मातंग समाज में सुधारणा दिखाई दे रही है, शिक्षा का प्रमाण भी बढ़ गया है । अब युवा मातंग पीढ़ी इस तरह की प्रथाएँ बंद करने के अभियान की शुरूआत की है जिससे पोतराजों में दीक्षा देने-लेने की प्रथा बहुत कम दिखाई देती है । अब पोतराजों को भी लगने लगा है कि ‘आता हे नकोशी वाटतं’ अर्थात् अब वे यह मानने लगे हैं कि यह सिर्फ एक नाटक था वे इसे शोंग याने नाटक समझते हैं ।

आज मातंग समाज में परिवर्तन दिखाई दे रहा है जिसका कारण डॉ. अंबेडकर के संघर्षों की गाथा है । डॉ. अंबेडकर ने संपूर्ण दलित समाज को जागृत करने का कार्य किया है जो उनके व्यक्तित्व की पहचान है । हाल ही में

बीड जिले में मानवाधिकार के नेता, दलित चिंतक 'एकनाथ आवाड' जो पोतराज घराने से थे, उन्होंने इस परंपरा का खंडन करने के लिए हर एक पोतराजों की जटाएँ काट दी थी और उसके बाद उन्होंने अपने अनुयाइयों के साथ बौध्द धम्म की दीक्षा ली थी जो डॉ. अंबेडकर के बाद ऐतिहासिक घटना रही है । एकनाथ आवाड के धर्म परिवर्तन की घटना संपूर्ण मातंग समाज के लिए आदर्श बन गयी है ।

2.4. मातंग समाज के लोक गीत

2.4. लोक गीत :

लोक साहित्य की दूसरी विधा है लोक गीत- यह जन मानस की भाव लहरियाँ सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त हैं । यों तो समस्त लोक साहित्य प्रेरणादायक और मानस में नवीन आलोक का सर्जक होता है, परंतु लोक साहित्य की अन्य विधाओं से भी लोक-प्रियता का वरदान लोक-गीतों को ही मिला है । क्योंकि उनमें शब्द के साथ-साथ संगीत भी होता है । शब्द और स्वर से इन्हें जीवन रस प्राप्त होता है । जिस प्रकार गीतों के रूप में हुई भावाभिव्यक्ति हृदय को वशीभूत करने की विशेष सामर्थ्य रखती है उसी प्रकार भावावेश से अत्यधिक विभोर हुआ हृदय गीत के रूप में ही अधिक फूटता है । यही कारण है कि सुख दुःख, जन्म विवाह-संस्कार मेले, त्यौहार, देव पूजन, उत्सव मनाना आदि जन-जीवन में कोई अवसर ऐसा नहीं जिस पर लोकवाणी गीतों के रूप में प्रस्पुटित न हुई हो । कई जगह मृत्यु तक के अवसर पर स्त्रियाँ प्रायः गा-गा कर रुदन

करती हैं । जब-जब मानव हृदय प्रबल भावावेग से अभिभूत होकर अत्यधिक हर्ष अथवा शोक अनुभव करता है, तब-तब उसके मानस में गीतों की स्वर लहरियाँ फूट पड़ती हैं । तदनिमित्त उसे स्वर, राग, लय और छंद आदि के शास्त्रीय नियमों का ज्ञान प्राप्त नहीं करना पड़ता । जन-मानस के स्वतः स्फुरित रस के स्रोत होने के कारण लोक-गीत सर्वाधिक लोकप्रिय बने हुए है । लोक-कथा और लोक-गीत सर्वाधिक लोकप्रिय बने हुए है । लोक-कथा और कहावतों आदि की अपेक्षा लोक गीतों में कहीं अधिक भावोत्कर्ष और रंजन शक्ति है । डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है, "शिष्टता से दूर पड़े हुए मानव के हृदय से स्वर लहरियाँ स्वयं ही छलछलाने लगती हैं, जिसका आनंद शिष्ट कहलाने वाला मानव भी लेता है ।[13]"

कंठ दर कंठ आए हुए मौखिक परम्परा से प्राप्त इन गीतों द्वारा विभिन्न स्थानों और विभिन्न कालों की बोलियों, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति तथा ऐतिहासिक और राजनैतिक पहलुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । प्रत्येक विषय का अध्ययन करते समय लोक-गीतों से हमें मार्ग दर्शन मिलता है लोक गीतों को मनुष्य की उत्पत्ति, विकास और रीति-रिवाजों की विद्या कहा जा सकता है । ज्ञान के भंडार हमारे ये लोक गीत राष्ट्रीय संतुलन बनाये रखने और विश्व बंधुत्व की भावना स्थापित करने के भी परम साधन हैं । लोक-गीतों में आत्म-तत्व की प्राधानता होने के कारण इनमें आत्म विकास का पूर्ण सामर्थ्य

है, आत्मा का विकास ही वास्तव में विश्व मानव में एकता की भावनाएँ विकसित करने का प्रेरक तत्व है। इसलिए लोक-गीतों में व्यक्तिगत भावों की व्यंजना होती है।

2.4.1 लोक गीतों में मातंगों की वाणी

ग्राम सांस्कृतिक जीवन में मातंग समाज की तरह-तरह के विधि-उत्सवों में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कृषि जीवन में मातंग समाज को विशेष रूप से महत्त्व दिया जाता था। परंपरा से चली आ रही सर्जन-सुफलीकरण की विधि के समय मातंग समाज के स्त्री-पुरुषों को केवल महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है ऐसा नहीं बल्कि ये विधि उन्हीं के हाथों संपन्न की जाती है। बीज बोते समय मातंग समाज का व्यक्ति ‘बानी’ गाते हुए पीछे-पीछे चलता था। एक समय था जो इन ‘वाणी’ को बहुत महत्त्व दिया जाता था। यह वह गीत है जो गद्य और पद्यात्मक जैसी विशिष्ट शैली में गाये जाते हैं, इन गीतों को मातंग समाज ही गा सकता है ऐसी समझ तत्कालीन समाज में प्रचलित थी, इसीलिए इस उक्ति का जन्म हुआ ‘ब्राह्मणा घरी लिवण् आणी मांगा घरी गाणं’ अर्थात् ब्राह्मणों के घर लिखना-पढ़ना और मांगों घर गाना। यह गीत गाते समय मातंग समाज अपने आप को गर्वांवित महसूस करता है। इस तरह के गीत गाने की शैली में वे अपनी दरिद्रता, समाज द्वारा होने वाला शोषण आदि भूल जाते हैं।

'बानी' शब्द 'वाणी' से बना हुआ है जो बीज बोते समय गाएँ जाने वाले एक तरह के गीत है । माना जाता है कि मातंगों की वाणी में मंत्रों का सामर्थ्य रहता है । 'मांग' समाज द्वारा इस तरह के गीत गाने से फसल अच्छी होती है, खेत मालिक को बरकत मिलती है, भू-माता प्रसन्न होती है आदि । इसीलिए जमींदार बीज बोते समय मातंग समाज के किसी एक व्यक्ति को लाया करते थे जिससे उनको लाभ होता था, ऐसी समझ समाज में थी । बीज बोएँ जाने के बाद बचे हुए बीज मातंग समाज के व्यक्ति को भक्तिभाव के रूप में दिए जाते थे ।

इन वाणीयों का आरंभ गणेश तथा सरस्वती के नमन से ही होता है ऐसा वे बताते हैं ।

वाणी क्र.1. हर हर महादेव ।

गणीराज गणपती ।

ईश्वरानं बरी म्हणले, आणले पारवती

आजचे बळी चरणाच्या सुता

हाती कासरा, चला जाऊ म्हाणाले शेता ।

शेतातुन आन म्हणले, काळी माती ।

त्याच्या बनवू खाती, खात्यानीनी नी काय केले नसरी ।

कपाळाचा केला एरण ।

हाताचे केले हातोडे, दंडाचा केला घण ।

आता न कुठे महारान म्हणाले ।

बलवा म्हणाले मागीला सुताराला ।

सुतारानं कोठं वाकस टिकस खांद्यावर घून ।

कुठं त्या खात्याजवळ आला होता ।

वाकस टिकस घेऊन ठोकून शान ।

आन् आपला घराकारणं निघून गेला होता ।

घराकारणं निघून जाऊन ।

संध्याकाळच्या पाहरी कोठं महाराज जेवणखावण केलं ।

आता कोठं सुतार होता जे निद्राग्रस्त झाला ।

आता निद्राग्रस्त झाला त्यावेळी कोंबड्याने बाग दिला

वाकसतिकस खांद्यावर टाकून

मांडवाची पाया शेजारी शिदोरी सोडून

कुठे डोंगराशी निघून गेला ।

डोंगराशी निघून जाऊन, सरकत सरकत पळस पाहिला ।

वरून न्याहळला ।

पळसाशी फुटली वाचा

मला घडवशील, माझे पाच तुकडे करशील ।

उठून भरा होशील ।

जा म्हनले, डाव्या बाजूला येडं चंदन हाय ।

एवढा करवाती धरणीशी पाडला पाहिजे ।

वाणी क्र. 2. गणराज गणपती, काम लागु दे सुतापाती

नीलुकचंद्या मांगाची विनंती ।

तेहतीस कोटी देवीची सभा भरली ।

तिरभुवनी बसव्या माजला ।

अडथळा पडला इंद्र सभेशी ।

पैजांचे विडे मांडिला कोणी उचलिना ।

प्रभानी खबर मिळाली, नीलुकचंद्य मांगाला ।

ते ऐकुन इंद्रसभामंदी उभा टाकला ।

देव अवतारी खेत्री होता ।

सभात कुणी घुसू देत नव्हतं, तसाच सभात घुसला ।

सभात गोष्ट ऐकली, पैजचा विडा उचलला ।

पाची हत्यारं घेऊन कमराला ।

तेहतीस कोटी देवाला मुजरा घातला

सात समुद्राच्या पलिकडे, बसव्याचं ठिकान... (अपूर्ण)

वाणी क्र. 3. महादेव पार्वती ।

आबंट म्हातारा, अटकस सुतारा ।

एक मांग जेवला, सातकळी तिरपती ।

बळी रे बळी, बांडाळीचे फळी सुर्व्यातळी ।

नवती धाई, नवती धरतरी ।

त्या वक्ताला बांदलीत फळी ।

धरतरीवर लाल शेंदराचा गुंदा ।

घनघर घरचा मेंढ़ा, कुंभार घरचा हंडा ।

साती आसरा, आठवा मशासुरा ।

बोला म्हसुबाच चांगभलं ।

वाणी क्र.4. औट हाथ मौगडी, पातळ फोडा कडाकडा ।

चंदनाचं तकरुन चांडा भुइच करुन पाळं ।

अनसन शिवारा, बांधला भारा ।

ते गेले तेहतीस कोटी डोंगरी ।

तिकडून आणल्या तीन नळया ।

सुतारानं तासल्या, लोहारान वस्तारल्या ।

मातंगाला हाक मारली ।

त्याच्या डोईवर मोगडा दिला ।

त्यानं नेऊन टाकल्या काळया वावरात ।

मोगडा टाकला ताठला यठला ।

ढवळया नंदी खांद्याव दिला ।

सूर्यातळी उभा केला ।

बळी चालते झाले घराकडं ।

वाणी क्र.5. अदन सुरी, मदन सुरी, रान पेरिलं चौफेरी ।

इहिर खंदली मंर्धातरी । त्याला लागले उभे आडवे चार झरे ।

तो बांधून आणला वरी ।

चार बैल पाचवा मोटकरी । खेळतो धावावरी ।

मज मांगाचा वैडा, कुंभारघरचा हंडा ।

धनगराचा मेंढ़ा । चांगभल ।

फसल निकालने के समय गायी जाने वाली वाणी

वाणी क्र.6 बळीचं बाळ मोठ हुशार । नांगरुन रान केलं निर्मळ ।

मधामधी पाडली विहिर । त्याच्या चहुकून सुटले आडवे झरे ।

लवकर बांधून आणावर । साती आसरा, आठवा म्हसूबा

करुन ठेवा काठावर । चार बैल, पाचवा माटेकरी दहावरी खेळी

पाणी पलालीनं पळ गारुळी म्हणतो माझी तारांबळ ।

बारा महिने पाण्यात घर । आव्वल धान्य, बांध निगीनं गुन्हाळघर ।

सुतारचं पोरगं हुषारं । त्यानं चरक बनविला निर्मळ ।

चुलताना म्होरी रोविला । मांगघरचं नाडं, बांधिलं चरकाचं आडं ।

सहा बैल, तीन कातरे दहावर खेळ । मोळक्या मोळी घेऊन पळं

जळव्या झाला काळझर । बसव्याला म्हणं गंडारन्या तू थोपटं खा पोटभर ।

कुंभार म्हणतो । माझ्या नांदडात रस गळं ।

लव्हाळ म्हणतो । माझ्या कल्हई शिवी नाही गुळ जलमत ।

कावळया तू फार जिवाला सांभाळ ।

वाणी क्र.7. पिरथीम नव्हती जळा अगुदर ।

महाशंखाचा अवतार ।

सुंब वळीत असे सोजळ ।

नेहुनी विकत असे तिरतभवनाच्या बाजारात ।

त्याचं करीत असे अनकुल ।

तिथं जेवत असे तीन हजार जंगमाचा मेळ ।

असा तो जगीचा जगपाळ ।

मांगा तुझ्या वंशी येऊन उध्दारले कोटकुळे ।

बोला मसुबाचं चांग भले ।।

भेट मांग फिट पांग ।

पांग कुनाचा ? दंडी दुश्मनाचा ।

अपुन खाईना, परव्याला देईना ।

उलट्या हातांनी कावळा जानीना ।

बावन लाख चेडा । शेंदरा भरला धोंडा ।

धनगरा घरचा मेंढ्रा । कुंभाराघरचा हंडा ।

तिथं मज मांगाचा पेंडा ।

दे काळी आई पिकांचा लोंढा ।

बोला मसुबाचं चांग भल ।।

राजन धन भोजन धन दरशन लक्षमी पंचमी ।

त्याहान केली पुन्याची काशी,

जोग गेला जोड मिळविला । छत्तीस देव उपासी बसले,

भादलान देखले देव बसू घालते ।

पाट-दिले त्याहाला, आंघोळ-आस्नान करून त्याहाला जेवत-खावत ।

मंग इडे पानाचे घेतले चाटा न भाटा ।

बळीराज सर्वांवून मोठा ।

बळीराजानं घातला मळा शेताच्या पेरावर ।

तिथं होत चंदनाचं झाड

पाटलाला पाच गावची पाटिलकी, मांगाला पाच पसा ।।

इन बानी या वाणीओं की विशेषता यह है कि इसमें धून वगैर न होते हुए भी एक लय में चलती हैं । यह बानी वही व्यक्ति गा सकता है जो इसके नियमों को जानता हो । मातंग समाज के ही लोग यह बताते हैं कि जिनको ज्यादा वाणी आती हैं उनकी तुलना पारंपारिक मातंग समाज से की जाती है । यह ठीक वैसा ही है जो हमनें पोतराजों की धुपात्रियों के बारे में देखा है जैसे पोतराजों को जितनी ज्यादा धुपात्रियाँ आती हैं उसे श्रेष्ठ पोतराज माना जाता है । यह जानकारी उन्हीं लोगों से मिली है । मातंगों की वाणी को बहुत महत्त्व दिया जाता था । मातंग समाज में संगीत का प्रमाण अधिक है, पहले से ही इस समाज में गीत गाने की परंपराएँ चली आ रही है । इन दिनों यह समाज वाणी गाता हुआ दिखाई नहीं देता है, यह बात अलग है कि युवा पीढ़ी इससे कोसों दूर है परंतु बुजुर्गों में आज भी वाणी और धुपात्री या बसवपुराण के पद गाते हुए देखा जा सकता है । जिन बानी की हम चर्चा कर रहे है ये वाणी मातंग समाज की उपजीविका चलाने में सहायक थी । क्योंकि तत्कालीन मातंग समाज आर्थिक रूप से बहुत कमजोर था उसे एक वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती थी ऐसे में वे अपने इस गायकी को और भी मजबूत करते थे । अपने पूर्वजों से सीखी हुई ये वाणी आज लुप्त होती दिखाई दे रही है । आज इस वाणी को बहुत कम लोग गाते है वह भी गाते नहीं किसी विशेष काम में सिर्फ गुनगुनाते हैं । जैसे खेत में काम करते हुए या फिर एकांत में बुजुर्ग व्यक्ति गाते हुए देखने को मिलते हैं ।

2.4.2. मांगीरबाबा का पोवाड़ा

यह पोवाड़े मातंग समाज के वीर पुरोषों के लिए गाए जाते हैं । मातंग समाज उन लोगों को पूजता है जिन्हें परंपरा ने यश प्राप्ति के लिए दफनाया था । हम जानते हैं कि मातंग समाज को शुभ माना जाता था और उन्हें पूज्य समझकर बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी करने के लिए इस समाज के लोगों की बलि दी जाती थी । क्योंकि इन्हें दफनाने से उन इमारतों की समय सीमा बढ़ जाता थी चाहे वह किसी कारण गीर जाती है या उसमें जितनी चाहिए उतनी सामग्री जैसे सिमेंट, रेत वगैराह कम क्यों न हो और ऐसा होने से इमारत तो गीर भी सकती है ऐसे में तत्कालीन समाज में बड़े-बड़े राजा भी इस तर्क को जाने बिना किसी बेकसूर की बलि दे देते थे । किसी भी शुभ कार्य को आगे बढ़ाने से पहले इस समाज के व्यक्ति की बलि देना तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति की आदत बन चुकी थी । मातंग समाज इसका विरोध नहीं कर सकता था क्योंकि उन्हें पता था विरोध करने पर उससे भी बत्तर मौत मिलती है ऐसे में वे दोगले मन से सोचते थे और नाखुश होते हुए भी अपना सौभाग्य समझकर बलि देने के लिए तैयार हो जाते थे । ऐसे मातंग वीरों को जहाँ-जहाँ दफनाया गया वहाँ पर मांगीरबाबा के नाम से मंदिर बनाए गए है । उन वीरों के लिए गाये जाने वाले गीतों को 'कवने' या पोवाड़े कहा जाता है । एक उदा.

पोवाड़ाः- आईबापाला होता एकला । गणगोताचा लाडका ।
देवाधर्माचा होता लाडका । लहानदारी गाव सागवान ।
गावंज्या झाले साईवर । सासरवाडी वांगेभराडी । गिरजा
गेली बाळंतपणाला । सव्वा महिन्याचा मुलगा झाला ।

नाव ठेविले रामचंद्र । गिरजाने मुल पाठवले ।

तुम्हीं यावा भेटीकरण । सव्वामहिन्याचा मुलगा झाला ।

गांवज्याला मुल पाठवले । गंवज्या तिथुन निघाला । गावात

वस्ती गेली । चावडीला गेला । बोलतो पाटिल-पांड्याला ।

आम्ही जातो सासुरवाडिली । संभाळा हो संभाळा आईबापाला ।

गांवज्या घराकडे चालुन गेला । बोलतो आपल्या आईला ।

आम्ही जातो सासुरवाडी । वांगे भराड़ी । संभाळा हो संभाळा बापाला ।

गांवज्या तिथुन निघाला, घराकडे आला । बोलतो आपल्या माईला । मी जातो सासुरवाडी । लई लांब अन् दूर हायना । नको जाऊ सासुरवाडीला । जाऊ आपुन सर्वे मिळुन । मीच मीच जाईन सासुरवाडी । गांवज्या तिथुन निघाला । नको जाऊ सासुरवाडी वांगेभराडी । आडवी मांजर तुला ते गेला । आपशकुन तुला तो घडला । चालुन तो पिता कडे गेला । बोलतो आपल्या पिताला । आम्ही जातो सासुरवाडीला वांगेभराडी । नको जाऊ सासुरवाडी- लई लांब दूर । जाऊ सर्वे मिळुनी । तेथून निघाला । डोईचा मंदिल खाली पड़ला । अपशकुन तुला घडला । गावंजा तिथून निघाला । घराकडे गेला । भरला कंबर बस्ता । हाती ढालतलवार । पाची हत्यारं घेऊन संगतीला । तिथून निघाला । गेला लखबाईपाशी चालुन । तिथुन निघाला मारोतीपाशी गेला । बोलतो मारोतीला-यश दे मला ।

तिथुन निघाला येशीत आला ।

पाया पडतो येशीबाई यश दे मला ।

लागला वनाच्या मार्गाला, बारा कोश मार्गाला ।

एक वन ओलांडिला, लागला दुसर्या वनाला ।

दोन वन ओलांडिला, लागला तिसर्या वनाला ।

तिन वन ओलांडिला, लागला चौथ्या वनाला ।

चार वन ओलांडिला, लागला पाचव्या वनाला ।

पाच वन ओलांडिला, लागला सहाव्या वनाला ।

सहावन ओलांडिला, लागला सातव्या वनाला ।

सात वन ओलांडिला, लागला आठव्या वनाला ।

इस पोवाड़े में एक व्यक्ति अपनी पत्नी के बुलाने पर ससुराल चला जाता है । वह अपने नवजात बच्चें को देखने के लिए जा रहा होता है । जब वह घर से निकलता है तब उसे उसके घर वाले माता-पिता कहते हैं कि अकेले मत जाओं हम सब मिलकर चलते हैं अकेला नहीं जाना चाहिए और वे परंपरा को मानते हुए कहते हैं कि तुम्हारा रास्ता बिल्ली ने काटा है बिल्ली अपना रास्ता काटती है तो अपशकुन माना जाता है तब तुम भी मत जाओ बेटा हम सब मिलकर चलते हैं । वह गाँव के पाटिल-पंडितों से भी मिल लेता है और उनसे कहता है कि हम ससुराल जा रहे है हमारे माता-पिता का ध्यान रखों हमारा ससुराल थोड़ा दूर है, हो सकता है कुछ ज्यादा दिन लग जाएँगे और आते समय अपनी पत्नी को भी लेकर आता हूँ । इस तरह वह सब लोगों से मिलकर अपने ससुराल जाने की जानकारी देता है और वे सारे लोग जिनसे वह मिला था वे कहते हैं कि अकेले मत जाओ पर वह किसी की भी नहीं सुनता है । अंत में माता के मंदिर में जाता है और अपने माता-पिता के लिए दुआ माँगता है और अपने ससुराल का

जंगली रास्ता पकड़ लेता है । रास्तें में रात हो जाती है तो उसे एक गाँव में रहना पड़ता है वो भी एक रात के लिए उस गाँव के मातंग समाज के लोग पाटिल के डर से गाँव छोड़कर जा चुके थे तब पाटिल इसे ही दफनाने की तैयारी करता है तब वह उन लोगों को कहता है कि मैं ‘वांगेभराडी’ जाकर अपनी पत्नी और बच्चों से मिलकर आ जाता हूँ । पाटिल वचन लेकर उसे जाने देता है वह जाकर अपनी पत्नी से घटी हुई सारी हकीकत बता देता है तब उसकी पत्नी उसे कहती है कि आपने जब वचन दिया ही है तो हम सब मिलकर जाते है और ठीक वैसा ही होता है । ये पूरा परिवार वहाँ आ जाता है और उसके बाद पाटिल उस परिवार को दफना कर अपना कार्य पूर्ण कर लेता है । इस तरह से दफनाएँ गए लोगों के लिए मातंग समाज के लोग मांगीरबाबा के नाम से गीत गाते है जिसे पोवाड़ा कहा जाता है ।

2.4.3 . मातंग समाज में प्रचलित लोक गीत

आज के दौर में मातंग समाज में परिवर्तन दिखाई दे रहा है । यह समाज काल्पनिक देवी-देवताओं को न मानकर अपने समाज के लिए संघर्ष करने वाले महान व्यक्तित्त्वों को याद करने लगा है । जो समाज अंधश्रध्दा से ग्रस्त था, आज उसी समाज की युवा पीढ़ी अपने सोए हुए समाज को जगाने का कार्य कर रही हैं । मातंग समाज के कुछ लोग धर्म परिवर्तन कर के बुध्द के धम्म की ओर अग्रसर होते दिखाई दे रहे हैं । यह समाज आज बुध्द, कबीर, फुले, लहुजी साळवे, डॉ. अंबेडकर तथा लोकशायर अण्णा भाऊ साठे आदि महान व्यक्तित्वों का सम्मान करने लगा है । अब इस समाज में इन महान व्यक्तित्वों पर आधारित गीतों को अपना वंदन गीत मानने लगे हैं ।

2.4.3.1. वंदन गीत

धनी भिमराया जीवनभर जाळली काया

धनी भिमराया जीवनभर जाळली काया

तनमन धनाने करते वंदना ।।धृ।।

शान थोर बहुजन मानले समान आहे सर्व सिरांवरी छाया,

मुका परी घास भरी पोटी त्याच्या मुलापरी लावुन प्रेमळ माया।

धनी भिमराया जीवनभर जाळली.........

दूर झाले माता-पिता जल्म हे देऊनी,

सांभाळ केला आमुचा माऊली होऊनी ।

चालने सिकवले आमाला गोड बोलने सिकवले

मौलवान वस्त्र वापराया ....

धनी भिमराया....जीवनभर जाळली..

दुबळया दिनांची आता जानली ना कोनी

भुकेलेल्या रोटी दिली तानेल्याला पानी

बंगला न म्हांडी मिळाली आम्हा मोटर गाडी

तोडल्या गुलामीच्या त्या बंधना ।।

धनी भिमराया...जीवनभर जाळली...काया

खासदार-आमदार मंत्री झाले केला मजबुत आमुचा पाया ।

संकट आले किती नाही कुणाचीच भीती बनविले धाड़सी लढाया ।

धनी भिमराया...जीवनभर...जाळली...

आंधळा तो पाहु लागे, लंगडा तो धाऊ लागे, वाचा फुटली मुक्याला

ज्ञान मिळाले खरे बहिर्यांना आज सारे येऊ लागले आयकाया..

धनी भिमराया...जीवनभर जाळली.....

आमृतवाणी भिमा गाते मुखानी

त्व् नामे आम्हीं इथे जगतो सुखानी

मिळे बहुमान उंचावली आमुची मान

दत्ता स्वाभिमानाने तराया...

धनी भिमराया.. जीवनभर जाळली काया...।

(हिन्दी अनुवाद)

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया

तन, मन धन से अभिवादन करते हैं।

छोटे बड़े बहुजन सब है समान है सभी के सिरों पर छत्रछाया

बच्चों की तरह उन्हें प्यार दिया और खिलाया

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

दूर हुए माता-पिता जन्म हमें देकर

आप ने हमें संभाला है हमारी माँ बनकर

चलना सिखाया, प्यार बात करना सिखाया

अच्छे वस्त्र पहनना भी सिखाया

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

दुर्बलों के जीवन अवस्था किसी ने ना जानी

भूखें को रोटी दी तो प्यासों को पानी

घर-बंगले, मिली है हमें मोटार गाड़ियाँ

तोड़कर गुलामी की वह जंजीरें

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

विधायक, सांसद, मंत्री बनाकर हमें ताकतवर है बनाया

संकटों का सामना करने का साहस भी दिलाया

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

आँधे लोग देखने लगे, लंगड़े भी चलने लगे और गूँगा बात करने लगा,

बहरा भी सुनने लगा है इतनों को ज्ञान है मिला

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

भीम जी आपकी आमृतवाणी गातें हैं मुख से

त्व् नामे हम यहाँ पर जीते हैं शान से

मिले बहुमान और देते हैं सम्मान

दत्ता स्वाभिमान को है बढ़ाया

मसिहा भिमराया पूर्ण जीवन जलायी है काया...

2.4.3.2. पाळणा

पहिल्या दिवसी राजा दरबारी, राज अंशाला आसा केतरी

बाळ शिवाजी पहल्या अवतारी...

जो बाळा..जो..जो..रे..जो..

दूसर्या दिवसी चला मंदिरी, केलीया रास नानाई परी।

न्हाऊ घालीती दासी सुंदरी......जो...बाळा..

तिसर्या दिवसी वाजली घंटा, सार्या नगरामध्ये आनंद मोठा..

उठा बायानों सुंटोडा वाटा...जो बाळा...जो...

चौथत्या दिवसी केला श्रृंगार, आले तानाजी मामा सैलार।

असे शिवाजी शोभे सरदार... जो...बाळा...जो...रे.

पाचव्या दिवसी पाचवी केली धन्य आंबीका धाऊनी आली।

जय प्राप्ती राजाला दिली....जो बाळा....जो...

सहाव्या दिवसी लाऊनी टाळा कानी कुंडाला मोत्याच्या माळा।

गंद केसरी कंपाळी टिळा...जो..बाळा...जो...

सातव्या दिवसी सातवी करा, जीजीबाईच्या पोटी जन्मला हिरा।

जसा मोत्यानी गुंपीला तुरा, त्याच्य स्वरूपाचा प्रकाश सारा।

जो बाळा...जो...बाळा..

आठव्या दिवसी आठवा रंग, पाहुन सेनापती झालेत दंग।

पाहुन सेनापती झालेत दंग....जो बाळा....जो...जो..रे...जो

(हिन्दी अनुवाद)

पहले दिन राज दरबार में राज वंशज का ऐसा है वंशज

बालक शिवाजी है इनका वंशज

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

दूसरे दिन चलो मंदिर में देंगे दक्षिणा तरह-तरह की

नहलाएँगी दासी सुंदरी...

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

तीसरे दिन बजती है घंटा राज नगरी में आनंद की डंका

उठकर सखियों तैयारी करो...

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

चौथे दिन किया है श्रृंगार, आये है मामाजी तानाजी सैलार

बालक शिवाजी दिख रहे थे सरदार...

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

पाँचवें दिन पाँचवीं की आंबिका माता प्रसन्न हुई

जय प्राप्ति की दुवाएँ दी

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

छटवें दिन भजन करके मोतियों की माला पहनाई,

गंद केसरी का लगाया तिलक

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो.

सातवें दिन सातवीं करों, जीजाई की कोख से जन्मा है हिरा,

जैसे मोतियों का प्रकाश है सारा...

आठवें दिन आठवा रंग देखकर सेनापति हो गए थे दंग...

जो...जो...जो...रे... जो....रे...जो...

2.4.3.3. नामकरण के गीत

त्यात छकुला, माझा चिमुकला।।

दिसते किती तरी देखना।

हळुहळु हलवा गं सोनुल्याचा पाळणा।।धृ।।

वरतं खाली पाय हालवते,

केविलवाणी का पाहते।

देवा माझा प्रिय बाळाची

पूर्ण करावी कामना।।1।।

हळुहलु हलवा गं.......

भूक लागली म्हणुनी रडला,

रडुनी चिंता तो झोपला।

बाई गं माझा सानं बाळाला,

संसारातील यातना।

हळुहळु हलवा गं.....

झोपे मध्ये का दचकते,

अर्धे डोळे का उघडते।

परिक यांच्या दैव गतिच्या,

करते का गं कल्पना।

हळुहळु हलवा गं.......।।

सु-पुत्र भारत भूचा व्हावा,

देशा करीता देह झीजावा

परी अंतरी सदा राहाव्या

मानुसकीच्या भावना।

हळुहळु हलवा गं..सोनुल्याचा पाळणा।।

(हिन्दी अनुवाद)

उसमें छकोला मेरा चिमुकला,

दिखता है कितना देखना

हलु-हलु झुलाओं सखियों सोनुले का पालना

ऊपर-नीचे पैर हिलाता है

इधर-उधर क्यों देखता है

ईश्वर मेरे प्रिय बालक की

पूर्ण करोगे ना कामना

हलु-हलु झुलाओं सखियों सोनुले का पालना

भूख लगी है कहकर रोया

रो-रो कर सो भी गया

सखियों मेरे प्यारे बालक को

कौनसी लगी है यातना

हलु-हलु झुलाओं सखियों सोनुले का पालना

नींद में से अचानक उठकर

आँखे खोलकर क्यों देखता है

इसीलिए मैं उसके सफल जीवन

की करती हूँ मैं कल्पना

हलु-हलु झुलाओं सखियों सोनुले का पालना

सु-पुत्र भारत माँ का बनेगा

देश के लिए अमर बनेगा

उसके मन में हमेशा यह होना चाहिए भावना

हलु-हलु झुलाओं सखियों सोनुले का पालना

पहिल्या दिवसी जन्मलं बाळ।

उजेड़ पडला तिनई ताळ
बाळ जन्मले हिंदूला काळ
जो... बाळा.... जो... जो.... रे... जो... ॥ धृ ॥

बाळाला झोके द्या गं हाती धरुनी दोरी
पाळण्यात आहे माझी लाखाची तिजोरी
मंदा, वृंदा, कुंदा झोके द्या गं कुणी, म्हणुनिया गाणी,
पाळण्यात आहे माझी लाखाची तिजोरी
जो... बाळा...जो....रे.....जो....रे....जो... ॥ 1 ॥

2.4.3.4. विवाह में गाए जाने वाले गीत

मातंगों की पूर्व परंपरा में लग्न विधि वर पक्ष के तरफ ही मनाई जाती थी । वधू पक्ष को सिर्फ दूल्हे के कपड़े लेकर आना होता था, बाकी सारा खर्च वर पक्ष को ही उठाना पड़ता था । वर्तमान परिस्थितियाँ कुछ भिन्न है अब वधू पक्ष को ज्यादा कर्च उठाना पड़ रहा है ऐसा भी नहीं कह सकते है, वैसे तो दोनों तरफ के लोगों को खर्च उठाना पड़ रहा है । सब कुछ बदल गया है परंतु विवाह में गीत गाने की प्रथा आज वैसे ही है जैसे पहले थी मातंग समाज की स्त्रियाँ आज भी विवाह के समय हल्दी वगैरह के कार्यक्रम में या दूल्हा दूल्हन को नहलाते हुए कुछ गीत गाती हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. माझ्या ममताईच्या सभामंदी गोठी ।

पंढीरीचा कुंकू आणा माझ्या ममताईला लेहायला ।
माज्या ममताईला आणा पांढरीचा चुड़ा ।
माझ्या ममताईच्या सभामंदी गोठी ।
मेल्यावर हळू लोटा माती ।

(इस गीत में माँ अपनी बेटी को देखने से लेकर उसके दुल्हन बनने तक की प्रक्रिया को और उसके श्रृंगार का वर्णन गीतों के माध्यम से सारी स्त्रियाँ माँ के रूप में करती हैं)

2. ओटी ही आमुची झाली खुली,
लेक लाडकी ही तुमाला दिली ।।
केले लहानाचे मोठे, तीचा लाढ ही पुरविले,
कडी खांदी घेवुनी आम्ही आजवर मिरविले

ममतेची माया तुम्हाला दिली।

लेक लाडकी ही तुम्हाला......।।धृ।।

आम्ही जन्माते, आता ती तुमची झाली,

जीवापाढ़ सांभाळा हो आता ती तुमच्या हावाली

माहेरची ही माया, तुटली सावली।

लेक लाडकी ही तुमाला दिली ।।1।।

पति प्रेमाने पहा सर्वजन जीव लावा,

घरधनी आणी नंदा जावा

बहिनीचे प्रेम द्यावा

समजावा जरी ही चुकली हुकली

लेक लाडकी ही तुमाला दिली ।।2।।

(हिन्दी अनुवाद)

झोली हमारी हो गयी है खुली

बेटी लाड़ली जो तुम्हें है दी ।

उसका पालन-पोषण कर की इच्छा भी पूरी

कँधों पर बिठाकर आज तक है प्यार दिया

माता की ममता हमने तुम्हें है दी

बेटी लाड़ली जो तुम्हें है दी ।

इस गीत में अपने लाड़ली बेटी का गुणगान किया जाता है । वे वर पक्ष के घर वालों को विनंती करते हैं कि हमने अपने लाड़ली बेटे को बहुत प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया है । उसे कभी डाटां भी नहीं अब उसे ही आप के हवाले कर रहे हैं तो आप लोग उसे अपनी बेटी समझकर प्यार कीजिएगा ।

गीत गाने वाली स्त्रियाँ सास-ससुर, दीर-ननंद तथा उस लड़की के पति को विनती करती हैं कि उसे अपनी बेटी, बहन समझकर माफ कीजिएगा । अगर उससे कुछ गलती होती है तो संभाल लीजिएगा । इस तरह की विनती करते हुए लड़की वाले ही ज्यादातर देखने को मिलते हैं ।

3. धन घेऊ धनाला ।
लक्ष्मी आई घरी काजं ।
पाचा सवासनीचा मान ।
धन घेऊ धनाला ।
खंडेराया घरी काजं ।
पाचा सवासनीचा मान ।
धन घेऊ धनाला ।
गनाजीबाबा घरी काज ।
पाचा सवासनीचा मान ।।

इस गीत में देवी-देवताओं के साथ-साथ मृत पिता के नामों का भी स्मरण किया जाता है । मंगल कार्यों में सभी देवी-देवताओं और मृत पिता को आमंत्रित करते हुए उनका स्मरण करना इस गीत का उद्देश्य रहता है । इस तरह के गीत स्त्रियाँ गाती हैं । अपने रिश्तेदारों में से ही ऐसी कुछ स्त्रियाँ मरे हुए लोगों को भी याद करती हैं । जिससे उनका स्मरण सभी के लिए आंनदायी रहता है ।

4. बंधु ईवाई करीती, मागते मी थोड,थोड
बारा बैल एक घोडं
गडु तांब्याची लगडं, वरी तांबड लुगड
लेक देऊनी पाया पडं।
बंधु ईवाई करी मागना रे काई लई

बारा बैल सोळा गायी, दूध काडाया चरई
ताक करायाला रवी, वरी सोन्यांची तिवई।
अणं सोयर्या बांधवाला मंग मनते ईवाई।।

हिन्दी अनुवादः

भैया आप मेरे समधी बन जाइए,
मैं ज्यादा कुछ नहीं मांगूगी
बारा बैल और एक घोड़ा चाहिए ।
बर्तनों आदि की लड़ी उपर से मेरे लिए कपड़े ।
उसके बाद अपनी बेटी देकर मेरा आशिर्वाद लीजिए ।
भैय्या आपको समधी बनाऊंगी नहीं मांगूगी ज्यादा कुछ ।
बारा बैल और सोलह गायें, साथ में दूध निकालने के लिए एक बर्तन ।
छाछ बनाने का साहित्य और थोड़ा बहुत सोना ।
उसके बाद रिश्तेदारों को बोलुंगी की यह मेरे समधी है ।

मातंग समाज में अनेक उपजातीयाँ है । इन जातियों के अलग अलग व्यवसाय भी है । जैसे हमने देखा है कि ‘मांग गारुडी’ जो भिक्षा माँगते है, ‘होलार मांग’ भी गीत या नाट्य प्रदर्शन कर अपनी उपजीविका चलाते हैं । उसी प्रकार ‘डक्कलवार मांग’ है जो सिर्फ मातंगों को ही ‘बसवपुराण’ की कथा सुनाकर जो मिलता है वही लेते हैं या भिक्षा माँगते हैं तो सिर्फ मातंगों को ही और जो भी दान के रूप में मिलता है उसी से अपनी उपजीविका चलाते हैं । ऐसी ही मातंगों को एक ओर जाति है जिसे ‘ढाले मांग’ कहा जाता है । ढाले

मांग बंजारा तांडे के आस पास रहते हैं, वहीं पर कुछ भी काम करते थे जो काम मिले वो करते थे वैसे तो शिकार करना इनका पेशा है वे शिकार करते हैं और बंजारा तांडे में लाकर बेचते हैं और मिले हुए पैसे वे आपस में बाँट लेते हैं । इस तरह बंजारा लोगों के साथ रह-रह कर बंजारा संस्कृति ही उन लोगों पर हावी हो गयी है वे बंजारा समाज के रीति-रिवाजों से ही अपनी विधियाँ पूर्ण करते है । जैसे यहाँ पर शादी ब्याह में गाये जाने वाले गीतों का उदा. दिया जा रहा है-

1. कथा कूचू केली फुगरीर- बाई भियान नाच नचारी ।। धृ ।।
उर परबाती बाई बेटी बाजे पर
पती मार पेटे भाई, दुखरोज फार
असे ठंगेती पाणी भरारी ।। 1 ।।

पती मार मातेमाई, दुखरोज फार
असे ठंगेती बाटी करारी ।। 2 ।।
उठ परभाती बाई रोव, ठस ठस
करतानी ओरो गळी ठाम घस
असे ठंगेती नाच नचारी ।। 3 ।।
सेवटेपर ठालिया कररीच अस
खोटे नाटे ठंग बाई मर कररलेस
असे ठंगेती खेळ करीर ।। 4 ।।

(हिन्दी अनुवाद)

एक नखरेली औरत की कहनी बताती हूँ
जो अपने पति को ऊँगलियों पर नचाती है ।
वह सबेरे चार पाई पर बैठकर

अपने पति को कहती है मेरा पेट बहुत दुख रहा है ।
ऐसी हालत में मुझसे पानी भरने को कहते हैं,
और तो और मेरा सिर भी दर्द कर रहा है
घरवाले रोटियाँ बनाने को कह रहे हैं ।

2. एकई फेरा फरलरे जमुना बेटी आपकी
दीई फेरा फरलरे जमुना बेटी बराजी
तीनई फेरा फरलरे जमुना बेटी पंचुरी
सातई फेरा फरलरे जमुना बेटी वराजी ।

उसी प्रकार 'ढाले मांगों' के देवी-देवता संबंधित इस प्रकार के गीत है जिसका एक उदा दिया जा सकता है-

भरतल गाजेती आयीचे माता, जगमग ज्योत जागाईचे

थाडी तारी आरती सदा सदा ।

सदा सवाई मया सादुये पाई, जगमग ज्योत जगाईचे ।

काचकेरो दिवलो कपुरकेरी आरती, जगमग ज्योत जगाईचे ।

तारी आरती सदा सदा ।

पवरागडेती आईचे माता, जगमग ज्योत जगाईचे .

थाडी तारी आरती सदा सदा ।।

मातंग समाज की स्त्रियाँ जोगवा माँगती हैं और जोगवा मांगते समय इस तरह के गीत गाती पायी जाती है । जोगवा याने भिक्षा माँगना है जिसमें मांग गारुडी ये मातंग समाज की उपजाति देखने को मिलती है । इस समाज की स्त्रियाँ ताल और सूर में गीत गाती है । वे लोकगीत ही गाती हैं ।

1. झुरु झुरु पाखरं । चल माझ्या माहेर ।
माहेरची घडी पाहु द्या । बबुचा धनी येऊ द्या ।
धन्यापाशी नगार्या । नगर मोठ दिंडाच ।
बाईला चौरंग बसाय सोप्याचं । अंड्यावर गोंडा ।
कंबराबर सुरी । मामाची पोरी ।
घरदार करी । घरदाराचा सैसार ।
वाढ़ा माय भाकरं ।।

(इस गीत में पंछियों के झोकों को मायके चलकर वहाँ पर मनाए जाने वाले ग्रामिण त्यौहारों का वर्णन किया गया है । वहाँ की संस्कृति गाँव के मुखियाँ का बड़पन और उनके नगर की प्रशंसा करते हुए महिलाएँ गीत गाती हैं ।

2. आळई तुळजा । देवई तुळजा । बाळई तुळजा ।
देवाच्या भगती । गोंदुळ घालती । येतील मांगीण जोगणी ।
हाती कुंकवाचे करंडे । भांग भरुन मोठ्यानं । आई बसली नवरथी ।
दहा दिवसांची भरती । पाटिल पांड्या मिळुनी । गावलोक्या मिळुनी ।
पुढ़े मशाल जळती । येतील मांगणी जोगणी ।

(हिन्दी अनुवाद)

माता भी तुळजा, भगवान भी तुळजा और बालक भी तुळजा का रूप
उनके भक्त गोंदळ करते हैं, मांगीन महिलाएँ जोगणी माँगने आती हैं ।
उनके हाथों भी कुम-कुम और माथे पर भी कुम-कुम होता है,
माता बैठी है नव रथों पर,
दस दिनों की भीड़, पाटिल, पांड्या तथा गाँव के लोग मिलकर चलते हैं
उनके आगे जलती मशालें होती है, मांगीन स्त्रियाँ जोगणी माँगने आती हैं ।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य कोश- सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. सं. 682.
2. कुनबी- जमींदार को कुनबी कहा जाता है ।
3. योजन- जोड़ने मिलाने आदि की क्रिया या भावादूरी नापने की एक पुरानी नाप जो किसी के मत से दो कोस की थी तो किसी के मत से चार कोस की थी ।
4. खड्ग – एक प्रकार के प्राचीन अष्ट शास्त्र जिसमें तलवार धनुष आदि आते है खड्ग भी एक प्राचीन शास्त्र ही है जिसे तलवार रुप कह सकते है जिसमें दो भाग होते है मुठ और लंबा पत्र इसकी विशेषता यह रहती है कि इसके दोनों ओर धार होती है जिससे काटा भी जाता है और भोंका भी जा सकता है ।
5. मातंग समाज के कुल देवताओं में से एक
6. देवी-देवताओं से मांगी हुई मन्नत पूर्ण होने के बाद खूशी से मनाए जाने वाले उत्सव को बढ़ण कहते है ।
7. भैंसे-सांड आदि को रेड़ा कह जाता हैं
8. आटे से बनी ही चीज को कणकी कहा जाता है
9. धूपात्री एक प्रकार के गीत है, मंत्र भी है जिसमें में पोतराजों का मौखिक वाङ्मय छुपा हुआ है इसी के आधार पर पोतराज को पहचाना जाता है ।
10. पोतराज गुरु अपने नऐ शिष्य के कान में कहा जाता है वही गुरुमंत्र है उसे ही कानशारवनी कहा जाता है यह ।
11. ओवी महाराष्ट्र के लोक गीतों में प्रसिध्द है जिसे स्त्रियाँ भी गाती है ।
12. एक प्राचीन शास्त्र है जिसे तलवार का रुप कहा जा सकता है, लेकिन इसके दोनों ओर धार रहती है जिसे भोंका भी जा सकता है और काटा भी जा सकता है।
13. लोक साहित्य विमर्श- डॉ. स्वर्णलता, पृ. सं. 21.

तृतीय अध्याय

3. मातंग समाज में प्रचलित 'हलगी' का ऐतिहासिक परिदृश्य

महाराष्ट्र के बारह बलुतेदारों में मातंग समाज का समावेश होता है। पेशवा के शासन में महार और मातंग जातियों को बहिष्कृत किया गया था। कालंतर में ये जातियाँ बहिष्कृत ही कहलाई गयी और इन्हें बारह बलुतेदारों में शामिल किया गया। स्वतंत्रता के पहले इन जातियों का बड़े पैमाने पर शोषण होता रहा है। जमिदारों तथा शाहुकारों ने इन जातियों को काम के बदले कुछ अनाज देकर इनसे काम करवाने का घिनौना काम किया। इन बारह बलुतेदारों के काम अलग-अलग रूप से बांट दिए गए थे। इसमें मातंग समाज को महार जाति के बाद रक्षण करने का तथा लोक संगीत जैसे 'हलगी', 'शहनाई' आदि बजाने के काम दिए गए थे तब से यह काम इस समाज में रूढ़ हो गए हैं। वर्तमान में भी यह समाज अपनी रोजी-रोटी के लिए यह काम करता है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों में बिना 'हलगी' के कोई भी कार्य संभव नहीं था चाहे वह उत्सव हो या फिर शोक वहाँ 'हलगी' जरूर रहती थी। यह परंपरा आज भी रूढ़ है। हालांकि इसका बाजारिकरण जरूर हुआ है परंतु यह कला सिर्फ मातंग समाज तक सीमित नहीं रही है बल्कि यह एक तरह से व्यवसाय बन चुका है। आज इसे कोई भी अपना रहा है इसका एक मात्र कारण यह है कि वे सिर्फ संपत्ति जमा करना चाहते हैं। इसमें मातंग समाज के किसी भी कलावंत का सहारा लेकर व्यवसाय किया जा रहा है और बदले में उस व्यक्ति को नाम मात्र के पैसे

देकर उसकी कला का श्रेय ढ़ोंगी कलाकार ले रहे हैं । आज इस बात पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि यह काम मातंग समाज कर रहा है या नहीं बल्कि यह देखा जा रहा है कि कौनसा व्यक्ति इस व्यवसाय को चला रहा है। वह एक दिन के लिए कितने रुपये लेता है और वह किस प्रकार का मनोरंजन तथा वह सारा संच उस व्यक्ति को संतुष्ट कर सकता है या नहीं ? यह सारा काम मातंग समाज ही कर रहा है लेकिन उसका श्रेय किसी ओर को जा रहा है ।

वंश परंपरा के अनुसार चर्मकार के वाद्ययंत्र बजाने की यह कला मातंग समाज ने अपने कठोर परिश्रम से ग्रहण की है । विवाह तथा अन्य उत्सवों में शनई, शहनाई, 'हलगी' आदि बजाने का काम यह समाज पहले से ही करता आ रहा है । मातंग समाज पहले से ही एक प्रसिध्द कलावंत के नाम से जाना जाता है । गीत गाने की कला तथा वाद्ययंत्र बजाने की कला मातंगों में प्रखर रूप में दिखाई देती है। मातंग समाज की लोक कलाओं को ध्यान में रखकर ग्रामीण जीवन में तरह-तरह की उक्तियों का जन्म हुआ है जिसका जिक्र किया जा चुका है। इस समाज में गीत गाने या हलगी बजाने की परंपरा बहुत ही पुरानी है और इस समाज के लोग एक होनहार कलावंत थे और हैं। इन लोगों ने मनोरंजन कर समाज का मन बहलाने का काम सदियों से किया ही है। लेकिन आज के उत्तर-आधुनिकता के दौर में मातंग समाज का यह पारंपारिक व्यवसाय डुबता हुआ नजर आ रहा है। समय के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी बदल जाती है । इस तांत्रिक युग में नए-नए वाद्ययंत्र संगीत के क्षेत्र में आ चुके हैं। जिसे यह लोग सीख नहीं पा रहे हैं,

क्योंकि इनकी इतनी हैसियत नहीं है कि वे सारी चीजें खरीद सके या सीख सकें । आर्थिक परिस्थिति के कारण वे लोग यह सब नहीं कर पा रहे हैं। जिसके चलते समाज का पारंपारिक व्यवसाय नष्ट होता दिखाई दे रहा है। जिसका एक मात्र कारण है कि मातंग समाज आर्थिक, शैक्षणिक रूप से कमजोर पड़ गया है। अब यह जरूरी हो गया है कि मातंग समाज को आर्थिक और शैक्षणिक रूप में बदलाव लाकर विकास की द्शा निश्चित करनी होगी।

मनुष्य के विवाह को भी सामाजिक जीवन में शुभ और मंगल समझा जाता है। ऐसे मंगल कार्यो में 'मांग' लोगों को अपने मंगल वाद्य दुल्हा-दुल्हन के सामने बजाने होते हैं। उन वाद्यों के ताल में, शुभ स्वरों में यह मंगल विधि या विवाह संपन्न होने चाहिए। इस तरह के पारंपारिक कार्य मांग लोगों को करने चाहिए ऐसी धारणा बन गयी थी। ढ़पली-शनई या शहनाई बजाने जैसे कार्य 'मांग' गाँव में करने लगे थे। क्योंकि यह मंगल वाद्य बजाकर वे नव विवाहीत वधु-वरों को शुभ आशिर्वाद देने से ही उन विवाहित दाम्पत्यों का जीवन मंगलमय हो जाता है ऐसी इसके पीछे धार्मिक धारणा थी। तब से लेकर आज तक मातंग समाज के लोग मंगल वाद्य बजाने के कार्य कर रहे हैं। इससे यह पता चलता है कि अगर मातंग अस्पृश्य गुलाम थे यह समझकर उन्हें हलके दर्जे के कार्य करने के लिए बाध्य किया गया था फिर भी उनके कार्यों को शुभ और मंगल ही समझा जाता था। यह इसलीए संभव हुआ क्योंकि इन 'मांग' लोगों का संबंध मांगलिशों की मातंग संस्कृति

से था । यह ‘मांग’ लोग इस मंगलमय संस्कृति में से आए हुए प्रतिष्ठित और सम्मानिय व्यक्ति थे यह सिध्द होता है ।

बस्तियों में किसी के घर पर पुत्र के जन्म के समय, शादी के बारात में, गाँव की महापूजा में, मेले में अथवा किसी भी शुभ कार्यों में ‘मांग’ लोगों को अपने मंगल वाद्य बजाने के लिए बुलाया जाता था । ऐसे समय पर मांगिन स्त्री को उनके सामने पानी से भरा हुआ मटका शुभचिन्ह समझकर पकड़ना चाहिए ये भी धारणा थी । इस तरह के कार्यों को शुभ माना जाता था । जिससे हर एक काम में यश प्राप्ति होती है ऐसा माना जाता था ।

मृत्यु के समय भी आरती के सामने ‘मांग’ लोगों को मंगल वाद्य बजाने चाहिए और उस शव यात्रा के साथ स्मशानभूमि तक जाना चाहिए । ऐसे समय पर यह लोग हृदय को स्पर्श करने वाले संगीत की धून बजाते हैं, जिससे परिवार के हर व्यक्ति में आक्रोश सा छा जाता है जिससे वे लोग गुजरें हुए व्यक्ति को याद करते हुए रोने लगते हैं । ‘हलगी’ बजाने के पीछे का यह भी कारण बताया जाता है कि इससे मरने वाले की आत्मा को शांति प्राप्त होती है । उसे मुक्ति मिल जाती है और उसकी आत्मा को मोक्ष प्राप्ति होती है । इस तरह की धारणा मातंग संस्कृति में आज भी रूढ़ है । इस तरह के शुभ और स्वर्ग प्राप्ति, मोक्षप्राप्ति आदि कार्य ब्राह्मण के बाद सिर्फ मातंगों को ही दिए गए हैं ऐसा मातंग समाज के लोगों का मानना है । यह गैर समझ मातंग समाज में है । यह लोग यह भूल जाते हैं कि इन्हे इस समाज व्यवस्था ने अस्पृश्य बनाया था फिर भी वे लोग अपने दिए गएँ कार्यों को सम्मान जनक

समझते थे । इस आधार पर मातंग समाज का सुशिक्षित वर्ग भी गुलाम होते हुए अपने पूर्वजों के हिस्सों में आए हुए कार्यों को देखकर यह कहता है कि हमें इतिहास में भी सम्मान जनक कार्य मिले थे और आज भी है । इससे ऐसा लगता है कि सुशिक्षित समाज भी कहीं ना कहीं अंधश्रध्दा की चपेट में आता जा रहा है ।

'हलगी' मातंग समाज का मुख्य व्यवसाय माना जाता था । कालंतर में यह प्रथा धीरे-धीरे कम होती जा रही है । मातंग समाज का युवा वर्ग शिक्षित होने से कुछ हद तक यह काम करने के लिए सोच रहा है । आज मातंग समाज का युवा वर्ग शिक्षित बन कर सरकारी नौकरियों में विश्वास रखने लगा है । उसी प्रकार मातंग समाज के प्रेरकों को ध्यान में रखते हुए यह समाज अपना 'हलगी' का व्यवसाय छोड़कर मुख्यधारा में आने का प्रयास कर रहा है । इसके दो कारण हो सकते हैं । एक यह कि इस समाज में सांस्कृतिक कलाओं का अपार ज्ञान है परंतु उसे महत्व नहीं दिया जा रहा है । दूसरा यह है कि इस व्यवसाय के बदले में उन्हें उस प्रकार से पारिश्रमिकता नहीं मिल पा रही है जिससे उनके परिवार का गुजारा हो सके । इसीलिए यह समाज इस तरह के काम करना छोड़कर कुछ पैसों से जमीन खरीद कर खेती को अपना मुख्य व्यवसाय बनाना चाहता है ।

मातंग समाज का मुख्य व्यवसाय खेती ही है । 'कोठा' और 'मालेपुर' इन दोनों गाँवो में मैंने अपना क्षेत्रकार्य किया है । यह दोनों गाँव आदिलाबाद जिले के अंतर्गत आते हैं । इन दोनों गाँवों में मैंने यह देखा कि ज्यादा तर लोग खेती ही करते हैं । कुछ लोगों के पास अपनी जीविका चलाने के लिए अल्प

मात्रा में ही भूमि होती है । इसलिए वे लोग दूसरों के खेतों में मजदूरी करने के लिए भी जाते हैं । गाँव की स्त्रियाँ भी मजदूरी करती है । इसके अलावा मातंग समाज में पुरूष वर्ग अपनी परंपरा को निभाता है । जैसे वे लोग शादी-विवाह के समय ‘हलगी’ बजाने का काम भी करते हैं । जो वह उनका मूल व्यवसाय भी है । वे लोग इसे आज भी निभा रहे हैं । इससे भी उन्हें आर्थिक मदद मिलती है । आज इस समाज का यह व्यवसाय कोई भी एक साहुकार कर रहा है और उन्हें सिर्फ एक रोज का वेतन देकर बाकी का हड़प ले रहा है । इस प्रकार से मातंग समाज के इस व्यवसाय से भी वे लोग अपनी ऊँची-ऊँची इमारते बना रहे हैं ।

3.1. मातंग समाज में प्रचलित 'हलगी' की परंपरा

क्षेत्र कार्य के दौरान यह जानकारी मिली है कि यह समाज बहुत पहले से 'हलगी' बजाने का काम करता आ रहा है । उन लोगों का कहना था कि उनकी यह चौथी पीढ़ी होगी जो 'हलगी' बजाने का काम कर रही है । इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि मातंग समाज में 'हलगी' की परंपरा कितनी समृध्द है । भारत देश में सांस्कृतिक कलाओं को महत्व दिया जाता है । परंतु इस समाज में प्रचलित 'हलगी' की यह प्रसिध्द कला मात्र अपमानित करने के लिए ही है ऐसी प्रतीत होता है । क्योंकि इन लोगों को किसी कार्यक्रम में बहुत ही हीन दृष्टि से देखा जाता है । तथा उन्हें अपमानित करते हुए उनके साथ बहुत ही अलग बर्ताव किया जाता है । 'हलगी' की पुरानी परंपरा के साथ-साथ मातंग समाज के वृध्द व्यक्ति 'शहनाई' बजाने में भी बहुत प्रवीण थे और आज भी है । इसे बजाने के लिए साहस की जरूरत होती है । साहस के साथ-साथ स्वास को रोककर बजाते रहना यह कोई साधारण बात नहीं है । 'शहनाई' धून तैयार करती है और उसके बाद उनका सारा संच उसी ताल में या लय में एक ऐसा माहौल तैयार करता है जिससे वहाँ का वातावरण आनंदमय हो जाता है । 'हलगी' की परंपरा बहुत ही पुरानी मानी जाती है । 'हलगी' बजाने का कार्य एक प्राकर से विशिष्ट है जिसे की भी बजा नहीं सकता है जिसके अपने कुछ नियम होते हैं । उन नियमों का पालन करते हुए ही 'हलगी' को लयबध्द रूप में बजाने का कार्य किया जाता है और ये सिर्फ

मातंग समाज के लोग ही करते हैं। सांस्कृतिक कलाओं से संपन्न यह समाज अपनी इस विशेष कला का लाभ उठाने में, अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में नाकाम रहा है। उसकी आर्थिक परिस्थिति कमजोर होने से वह अपनी कला को बेचता हुआ नजर आ रहा है। आज का मातंग समाज अपनी इस समृध्द कला के साथ किसी और की धनराशी में इल्जाफ़ा करता हुआ दिखाई दे रहा है। आज बाजार में इसके लिए उन्हें सिर्फ पर्याप्त धनराशी देकर अपना लाभ देखने वाले लोग एक तरह से मातंग समाज का शोषण ही कर रहे हैं। मातंग समाज की इस कला का आज बड़े पैमाने पर बाजारीकरण हो चुका है। भारतीय संस्कृति में कला को बहुत महत्त्व दिया जाता है। 'हलगी' की तरह ही कुछ अलग तरह के वाद्ययंत्र बजाने वाले लोग दुसरी जातियों में से होते तो उन लोगों को यहां की समाज व्यवस्था पुरस्कार से सम्मानित करती थी। बदले में 'हलगी' को मात्र मातंग समाज का मूख्य व्यवसाय समझकर कभी महत्त्व नहीं दिया गया है। इसका अर्थ क्या हो सकता है ? यह कहना थोड़ा कठीन है। सांस्कृतिक कला को महत्त्व देते हुए इन कलाकारों की तरफ भी ध्यान दिया जाना चाहिए। जिस प्रकार तेलंगाणा सरकार ने इस तरह के कलाकारों को पेंशन देने का निर्णय लिया है उसी प्रकार भारत सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए, जिससे भारतीय संस्कृति में इस तरह की सांस्कृतिक कलाएँ बनी रह सके। त्यौहारों, कार्यक्रमों, शादी-विवाह, नामकरण आदि में हम 'हलगी' लाना पसंद भी करते हैं और उस उत्साहों आदि में बजाना एक तरह का नियम भी मानते हैं। परंतु हम उन कलाकारों को उनकी मेहनत के अनुसार पैसे देने में हिचकातें

जरूर हैं । समाज अगर इन लोगों के प्रति अपनी निष्ठा नहीं दिखाता है तब इस तरह के कलाकार अपनी कला भी भूल जाएँगे और साथ ही सांस्कृतिक कलाओं का महत्व भी कम होता जाएगा । इसलिए इस समाज को और उनकी कलाओं को भी महत्त्व दिया जाना चाहिए, यदि महत्त्व नहीं दिया जाएगा तो यह एक तरह से लोक कलाओं का अपमान समझा जाएगा ।

हमें यह नहीं पता था कि 'हलगी' का उद्भव कब और कैसे हुआ है । लेकिन लोक कथाओं में 'हलगी' को लेकर अनेक कथाएँ बताई जाती है । उन लोक कथाओं में 'हलगी' के संदर्भ में यह बताया जाता है कि प्राचीन काल में एक आदिम मनुष्य अर्थात् जाबऋषि जंगल से गुजर रहे थे तब उन्होंने मृत जानवरों की खाल देखी थी । हुआ यह था कि उनके पैर से टकराया हुआ पत्थर उस चमड़ी पर जा गिरा था । तब ढ़म से एक ध्वनि निकल आई थी । तब से यह समझ में आया कि इन चमड़ियों से 'हलगी' या 'ढपली' बनाई जाती है । उसी प्रकार और एक लोक कथा में यह बताया गया है कि जामंत ऋषि ने राक्षसों से बचने के लिए कामदेव नामक राक्षस को मारने के लिए मेंढक के खाल से ही हलगी या ढ़पली बनाई थी । इस प्रकार मातंग समाज में 'हलगी' के उद्भव को लेकर तरह-तरह की लोक कथाएँ समाज में प्रचलित हैं । 'हलगी' के विषय में वे बताते हैं कि हलगी एक ऐसा लोक वाद्य है जो मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक साथ देता है । मातंग समाज इस लोक वाद्य को बजाने की कला में प्रवीण है ।

3.2. 'हलगी' बनाने की प्रक्रिया

'हलगी' बकरी या गाय के चमड़ी से बनाई जाती है। हम सब जानते हैं कि भारतीय संस्कृति में बहिष्कृत समाज में महार तथा मातंग जातियाँ मरे हुए जानवरों को ढोने का काम करती थी। साथ ही उस मरे हुए जानवरों के माँस से अपने पेट की भूख मिटाती थी। इन लोगों को उस मरे हुए जानवरों के माँस के साथ-साथ उसके चमड़े का उपयोग करना था। जिससे वे लोग तरह-तरह की चर्मकार की चीजें बनाने का काम सीख गएँ थे। यह 'हलगी' बनाने की प्रक्रिया कठीन है। 'हलगी' तैयार करने की प्रक्रिया को इस प्रकार बताया जा सकता है। 'हलगी' मुख्य रूप से बकरी या गाय की चमड़ी से बनाई जाती है। बकरी के चमड़ी से इसलिए बनाई जाती है क्योंकि बकरी का चमड़ी पतला होती है, गाय और भैंस की चमड़ी से भी बनाई जाती है। लेकिन बकरी की चमड़ी से 'हलगी' बनाने (गुँफने) में मदद मिलती है साथ ही चमड़ी पतली होने से अच्छी आवाज निकलती है, ऐसा बताया जाता है। उन लोगों से 'हलगी' को लेकर जो भी सवाल थे उन्होंने सारे सवालों का जवाब दिया तथा 'हलगी' बनाते कैसे है उसे भी विस्तार से हमें बताने की कोशिश उन्होंने की है।

'हलगी' बनाने के लिए बकरी के चमड़ी को पानी में भिगोया जाता है। इसे कम से कम दो दिनों तक भिगोकर रखा जाता है। दो दिनों के बाद उस चमड़ी को निकालकर साफ किया जाता है। इसे साफ करते समय चूना

लगाते हैं जिससे उस चमड़ी पर रहने वाले बालों को साफ किया जा सकता है। पूरी तरह से बाल निकालने के बाद उस चमड़ी को कपड़े की तरह धोते है वह एक तरह से कपड़ा ही दिखने लगता है। एकदम साफ करने के बाद 'हलगी' का रूप देने की प्रक्रिया शुरू होती है। उसे 'हलगी' का रूप देने के लिए गोलाकार बनाया जाता है जिसके लिए लोहे की कड़ी का उपयोग करते हैं जो पहले से ही बनाकर लाते हैं। 'हलगी' की आवाज में खनक लाने के लिए उस चमड़ी को लोहे की कड़े में एक आकार दिया जाता है। उसके बाद उसे चारों ओर छोटे-छोटे पत्थर बाँध दिए जाते है ताकि खिंचने में मदद मिल सके। एक धागे में पत्थर बाँधकर उसे चारों ओर से तानने की क्रिया चलती है। तानते हुए चारों ओर से फैलाकर बाँध दिया जाता है। इसे बाँधने के दौरान उस चमड़ी में इमली के बीजों की गोंद बनाई जाती है। जो उसे चिपकाने में मदद करने का काम करती है। इसे 'हलगी' बनाने के लिए चमड़ी की चारों ओर लगाया जाता है। यह लगाने से चमड़ी और लोहे की कड़ी दोनों बहुत अच्छे से चिपक जाते हैं।

'हलगी' बनाने के लिए दो ही चीजों की आवश्यकता होती हैं -1. छड़ी और 2. चमड़ी। एक लकड़ी के इस्तमाल से हलगी तैयार करना संभव नहीं होता है। ऐसा किए जाने से चमड़ी आकार नहीं ले पाती है। क्योंकि उसपर किसी भी प्रकार का तनाव नहीं रहता है जिससे चमड़ी एक जगह होने की संभावना अधिक रहती है। इसलिए लकड़ी के चार टुकड़ों का आधार लेकर उसे बांध दिया जाता है जिससे धूप में सूखाने में मदद मिलती

है । ऐसा करने से न केवल जमा होगी बल्कि वह चमड़ी ‘हलगी’ बनाने योग्य होगी । यदि उसे अच्छे से बाँध नहीं दिया जाता है तब ‘हलगी’ बनाते समय उसे ठीक से खींचकर नहीं बांध सकते हैं । हलगी बनाने के लिए आमतौर पर नीम, पीपल और साग आदि लकडियों का उपयोग किया जाता है । इसका कारण यह बताते हैं कि इन लकडियों का उपयोग करने से ही अच्छी आवाज या धून निकलती है ।

चमड़ी तैयार करना भी एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि उस चमड़ी को प्रयोग में लाने के अलग-अलग प्रकार है । जिसमें हलगी और चप्पल बनाने के लिए तैयार की जाने वाली चमड़ी की प्रक्रिया अलग-अलग हैं ।

3.2.1. चप्पल के लिए तैयार की जाने वाली चमड़ी

इस प्रक्रिया में चमड़ी के अंदर की तरफ चूना लगाकर उसे चार से छः दिनों के तक एक गोले में भिगोकर रखते हैं । उसके बाद उसे साधारण पानी में रखा जाता है । जिससे चमड़े के सभी बाल झड जाते हैं । यदि कुछ बाल रह भी जाते हैं तो उसे चाकू की सहायता से हटा दिया जाता है । चमड़ी को भिगोने के लिए बजनदार लकड़ी जैसे बबूल की लकड़ी उस पर बजन रहने के लिए रखते हैं जिससे चमड़ी पूरी तरह से भीग जाती है । कहीं-कहीं जगहों पर तो चमड़ी को लगभग तीन-चार दिन या फिर एक सप्ताह तक भी पानी में भिगोया जाता है । इस प्रकार से तैयार की जाने वाली चमड़ी ‘हलगी’ बनाने के लिए काम में नहीं आती है । ठीक उसी प्रकार कारखानों में बनी साफ-सुथरी चमड़ी भी ‘हलगी’ बनाने में उपयुक्त नहीं होती है । क्योंकि ‘हलगी’ के लिए मुलायम चमड़ी की जरूरत होती है ।

अब हम यह देखेंगें कि ‘हलगी’ के लिए किस प्रकार की चमड़ी का इस्तमाल किया जाता है तथा उसे तैयार करने की प्रक्रिया कैसी है। इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

हलगी तैयार करने के लिए लायी जाने वाली चमड़ी को अंदर से चूना लगाकर उसे दो दिनों के लिए पानी में भिगोया जाता है। उसके बाद चमड़ी पर रहने वाले बालों को हटा दिया जाता है। चूने के पानी में भिगोने से बाल बहुत आसानी से झड़ जाते हैं। उसके बाद उसे एक दिन के लिए सुखाया जाता है। एक ही दिन में चमड़ी सूख जाती है। जरूरत पड़ने पर इसे दो दिन के लिए भी सुखाया जा सकता है। इस प्रकार से हलगी बनाने वाली चमड़ी तैयार की जाती है।

आमतौर पर ‘हलगी’ बनाने में गाय और बकरी की चमड़ियों का उपयोग किया जाता है। भैंस की चमड़ी भी मजबूत रहती है और इससे भी ‘हलगी’ बनाते हैं लेकिन वह उतनी उत्कृष्ट नहीं होती है। इसका मतलब यह है कि गाय और बकरी की चमड़ी भैंस की चमड़ी की तुलना में अधिक मोटी और मजबूत होती है। वहीं गाय और बकरी की पतली और चिकनी होती हैं। चमड़ी मजबूत हो तो ज्यादा दिनों तक टिकती जरूर है, लेकिन भैंस की खाल और बड़े ‘बैरल’ का उपयोग नहीं किया जा सकता है। क्योंकि जैसे-जैसे यह पुरानी होने लगती है, वैसे वैसे वह चमड़ी सुस्त सी हो जाती है। इसकी तुलना में गाय और बकरी की चमड़ी का उपयोग किया जाता है जो लंबे समय तक नहीं रहती हैं। क्योंकि ‘हलगी’ बजाते समय हर बार इसे अच्छी तरह से गरम करना जरूरी होता है तभी वह लंबे समय तक बजाई जा

सकती है। एक और वैज्ञानिक कारण यह बताया जाता है कि बछड़े या भैंस की चमड़ी गरम करने के बाद थोड़ी देर तक ही गरम रहती है उसके बाद थंड़ी हो जाती है। दूसरा वास्तविक कारण यह भी है कि गाय और बकरी के चमड़ी की कींमत से भैंस के चमड़ी की कींमत अधिक होती है।

3.2.2. दूसरी प्रक्रिया

इस प्रक्रिया में चमड़ी सूखने के लिए जहां पर बाल होते हैं वहाँ पर राख का लेप लगाते हैं। उसके बाद लकड़ी से मारकर बचे हुए बालों को पूरी तरह से निकालने की प्रक्रिया चलती है। उसके बाद इसे एक दिन तक पानी में भिगोकर रख सकते हैं और अगले दिन तक उसी चमड़ी से 'हलगी' बनाई जा सकती है। इस तरह से तैयार की जाने वाली चमड़ी सामान्य रूप से 15, 20 मिनट तक अधिक गर्म रहती है, इसलिए उसे फिर रात भर भिगाना चाहिए और जब तक वह चमड़ी गीली रहती है तभी 'हलगी' तैयार करनी चाहिए अन्यथा 'हलगी' को कसकर बाँधना संभव नहीं होता है।

इस प्रकार से तैयार की जाने वाली चमड़ी को आकार देना एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। क्योंकि 'हलगी' तैयार करते समय उसकी कुशलता पर ही 'हलगी' की ध्वनि निर्धारित होती है। इसीलिए जो लोग इसे चिपकाने में माहिर होते हैं वे ही इसे चिपका सकते हैं। 'हलगी' बनाने के लिए इमली के बीज (Seeds) की गोंद का इस्तमाल किया जाता है। जो चिपकाने में मदद करता है इसे लगाकर गोलाकार में बाँधा जाता है। हाँ यह जानना ज़रूरी है कि इमली के बीज के आटे को पकाते समय कितनी हदतक गर्म करना पड़ता इसकी जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक होता है। हद से

ज्यादा आटे को पकाने से चमड़ी में दरारें पड़ने की संभावना रहती है । यदि आंटें को कम गरम करने पर भी आकर्षित ध्वनि उत्पन्न नहीं होती है । इसलिए कलाकार को यह पता होना चाहिए कि ‘हलगी’ को कितनी देर तक पकाने से अपेक्षित ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है इसका ज्ञान रहना बहुत जरूरी होता है । ‘हलगी’ के कलाकार को इस बात पर ध्यान देना आवश्यक होता है कि यदि ‘हलगी’ को सेंकने के तुरंत बाद बजाने से भी आकर्षित ध्वनि उत्पन्न होती है । जब भी ‘हलगी’ से सटीक ध्वनि नहीं उत्पन्न होती है तब-तब ‘हलगी’ को सेंकना जरूरी हो जाता है ।

इमली की गोंद बनाने की भी एक अलग प्रक्रिया है । इमली के बीजों को अच्छी तरह बारीक किया जाता है और उसे लगभग छः घंटों तक भिगोया जाता है । फिर उसे पीसा जाता है । पिसे हुए आंटे को पानी में अच्छी तरह से उबाला जाता है । तब जाकर वह एक प्रकार से गोंद बन जाती है । वही गोंद ‘हलगी’ के फ्रेम पर अच्छी तरह से लगायी जाती है और पहले से तैयार की गई चमड़ी को अच्छी तरह से चिपकाया जाता है । चिपकाई गई चमड़ी के किनारों में छोटे-छोटे छेद होते हैं । लोहे के तार से बनाए गए गोलाकार में छेद बनाए जाते हैं तब ‘हलगी’ को उसमें से अच्छी तरह से कसकर बांध कर उसे दो दिनों तक सुखा देते हैं । ‘हलगी’ सूखने के बाद उस चमड़ी पर बचे हुए बालों को चाकू से निकालने के बाद ही वह देखने में अच्छी दिखाई देती है । यह काम सिर्फ मातंग, मादिगा या चमार जाति के लोग ही करते हैं । यह तैयार की जाने वाली ‘हलगी’ को कंधों पर लगाने के लिए जिस धागे का प्रयोग किया जाता है वह धागा भी चमड़ी से ही बनाया जाता है । यह लगभग दो फीट लंबा होता है, धागे को पहले से

बनाये गये छेद के सहारे 'हलगी' में बाँध दिया जाता है, तभी उसे कंधे पर डालकर आगे की ओर खींचकर बजाने के लिए सहायता होती है । यही 'हलगी' बनाने की प्रक्रिया है । इसे बनाने के लिए कम से कम पाँच दिन का समय लगता है । क्योंकि दो दिन तक इसे भिगोकर रखतें हैं । तीसरे दिन उसे तानकर बाँधने का काम किया जाता है । इसे बाँधने के बाद फिर दो दिनों तक उसे सुखाया जाता है । सुखाने से उस चमड़ी में एक प्रकार की खनक आ जाती है जिससे एक सुंदर ध्वनि निकलती है । तब जाकर 'हलगी' पूर्ण रूप से तैयार हो जाती है । 'हलगी' के साथ शहनाई, शनई भी बजाई जाती है । इसके दो प्रकार बताएँ जात हैं । एक है शनई (शहनाई) और सुर । 'हलगी' के साथ सुर का होना याने संगीत में हरमोनीयम का होने के बराबर है । जिससे एक ताल या सुर पकड़ने में मदद मिलती है । पहले सुर लगाया जाता है फिर शहनाई बजती है उसके बाद 'हलगी' उसमें रंग भरने का काम करती है । शहनाई में ताड़ी के पत्ते का भी इस्तमाल किया जाता है उसकी अपनी विशिष्टता है । उनके कहने के मुताबिक यह गाँवों में रहने वाले ताड़ी के पत्तों से ही लिया जाता है । ऐसा उनका कहना है । शहनाई और सुर के साथ 'संकल' होती है जिसे सुनार बनाता है । शहनाई और सुर का नीछला भाग पित्तल का होता है । ऊपरी भाग सागवान की लकड़ियों से बनाया जाता है जिसे बड़ई बनाता है । सुर को आँठ छेद रहते हैं जिससे अच्छे सुर की कल्पना की जा सकती है । इस प्रकार से यह बनाने की प्रक्रिया है । 'हलगी' बजाने के लिए पाँच व्यक्तियों की आवश्यकता होती है । जिसमें एक ढ़पली बजाता है

दूसरा ढप, तीसरा सुर, चौथा शहनाई और पाँचवे के पास भी शहनाई का रूप ही होता है उसे बजाने का कार्य करते हैं ।

'हलगी' बनाने के लिए काफी मेहनत लगती है फिर भी यह अपने काम को अंजाम देते हैं । किसी भी परिस्थिति में अपने काम को अंजाम देना मातंग समाज की विशेषता रही है । चाहे वे लड़ने का काम हो या फिर उनकी समृध्द कला का उदाहरण पेश करना हो वे लोग इसमें जरूर सफल हो जाते हैं । मातंगों का भारतीय सांस्कृतिक कलाओं में महत्वपूर्ण योगदान रहा है । यह बात अलग है कि उनमें छीपी हुई इन कलाओं का मोबदला कभी नहीं मिला है परंतु उनकी कलाएँ विशिष्ट रही हैं । चाहे वह लोक संगीत के संदर्भ में हो या फिर तमाशे आदि । वे सांस्कृतिक कलाओं की गुणवत्ता लिए हुए अपना प्रदर्शन करने में विशिष्ट रहे हैं ।

'हलगी' को कितने प्रकार से बजाया जाता है इस प्रश्न के सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने यह कहा कि इसे कहा तो नहीं जा सकता है । क्योंकि कार्यों के हिसाब से बुलाते हैं और हम जाकर बजाते हैं । जैसे शादी-विवाह, मोहरम, कंदोरी, उसी प्रकार 'हलगी' जनाज़ो में भी बजाई जाती है, मरीआई के उत्सव आदि में विशेष रूप से बजाने का निमंत्रण हमें मिलता है । साथ ही कुस्ती आदि के अखाड़े में भी पहलवानों का उत्साह वर्धन करने के लिए बजाने के लिए बुलाया जाता है । इसे बजाने के संगीतात्मक राग वे लोग नहीं बता पाएँ क्योंकि 'हलगी' में किसी भी प्राकर के शास्त्रीय प्रशिक्षण के गुण

नहीं दिखाई देते हैं। फिर भी वे उसकी धून के आधार पर विश्लेषण कर रहे थे ।

'हलगी' मातंग समाज का पारंपारिक व्यवसाय है। लेकिन इन्हें सभी उत्सवों या कार्यक्रमों में नहीं बुलाया जाता है । यह कला बँड से बिल्कुल अलग है। हम इसे जिंदा रखने के लिए या अपनी कला को बचाएँ रखने का प्रयास करते हैं। इसे बचाएँ रखने के लिए अपनी परंपरा से प्राप्त इस कला को अपने बच्चों को सीखाने का प्रयास भी कर रहें हैं। हमारे बच्चें भी इसे सीखने की कोशिश करते हैं। हमारी परंपरा में हलगी बजाने वाली हमारी यह चौथी पीढ़ी होगी। हमारे पूर्वजों को 'हलगी' बजाने के मुआवज़े के रूप में एक साल का अनाज मिलता था। तत्कालीन समाज को 'हलगी' से आनंद मिलता था। वे लोग हमें बुलाते थे, हमें इनाम के रूप में कपड़े आदि दिए जाते थे। लेकिन अब हमें कुछ भी नहीं दिया जाता है तथा बुलाया भी नहीं जाता है। बुलाते हैं मगर बहुत कम क्योंकि अब 'हलगी' की जगह बँड पार्टी को बुलाया जा रहा है। हमें बहुत कम जगहों पर बुलाते है। हमें जब भी बुलाया जाता है तब हमारा संच (पाँच लोगों का संच) जाता है। इन्हें दिन भर बजाने के बाद दो या तीन हजार रूपयें दिए जाते हैं। अब हमें बुलाते नहीं है इसलिए अब हम भी दूसरे काम अर्थात् मजदूरी आदि करने लगे हैं। किसी को थोड़ी बहुत जमीन होती है वे जमीन करते हैं। जिन्हें नहीं है वे मजदूरी करते हैं। मजदूरी भी नहीं मिलती है। जहाँ मिलती है वहाँ पर्याप्त पैसा नहीं मिलता है। करें तो क्या करें बहुत परेशानियों से गुजरना पड़ रहा है।

3.3. 'हलगी' के प्रकार

गोलाकार के आधार पर 'हलगी' के तीन प्रकार माने जाते हैं। जिसमें 'हलगी' (ढ़पली) दूसरा ढ़पला और तीसरे के रूप में दिमकी है। इस तरह से 'हलगी' को तीन प्रकार के नाम दिए गए हैं। वैसे तो 'हलगी' जैसे अनेक चर्मकार वाद्य यंत्र है लेकिन 'हलगी' की अपनी विशेषताएँ है। जिसे 'हलगी' के महत्त्व में देखा जा सकता है।

3.3.1. 'हलगी' (ढ़पली)

ढ़पली गोलाकार के रूप में बड़ी होती है जिसे 'ढ़पली' या ढ़परा कहा जाता है। 'हलगी' को ही ग्रामीण भाषाओं में ढ़पली या ढ़परा कहा जाता है। ढ़पली के लिए इस्तमाल की जाने वाली कडियाँ तीन-चार इंच चौड़ी रहती हैं। इसे बजाने के लिए दो छड़ियों का इस्तेमाल किया जाता है। जिसमें एक अंगुठे के आकार की होती है तो दूसरी उससे भी छोटी हैती है। 'हलगी' के आकार को लेकर यह बताया जाता है कि 'हलगी' 18 या 20 इंच से ज्यादा नहीं होनी चाहिए।

3.3.2. ढ़पला

ढ़पला दिखने में ढ़पली के जैसा ही होता है लेकिन दोनों के लिए इस्तमाल की जाने वाली चमड़ी में फर्क रहता है ढ़पली के लिए इस्तमाल की जाने वाले चमड़ी में अंतर यह होता है कि डपली के लिए जाड़े चमड़ी का इस्तमाल किया जाता है वहीं ढ़पले के लिए पतली चमड़ी का इस्तमाल

किया जाता है । ढ़पला, ढ़पली की तुलना में थोड़ा छोटा रहता है । उसी प्रकार इनके इस्तमाल किए जाने में भी फर्क होता है। दोनों की आवाज एक जैसी नहीं निकलती है। ग्रामीण भाषा में ढ़पली को ढ़प भी कहा जाता है। ढ़प बजाने वाला विशिष्ट प्रकार की छड़ी का इस्तमाल करता है । साथ ही बड़ी चतुराई से अपनी ऊँगलियों का प्रयोग कर सकता है लेकिन ढ़पली बजाने वालों को इसकी स्वतंत्रता नहीं होती है। ढ़पला नियोजित जगहों पर ही बजाया जाता है । जिसे लावणी, पोवाडा, तमाशों आदि का प्राण माना जाता है।

3.3.3. दिमकी

यह 'हलगी' का तीसरा प्रकार है जो ढ़पली और ढ़पले के साथ इस्तमाल किया जाता है यह भी गोल आकार का ही होता है। यह लगभग 14 इंच का होता है। इसे बजाने के लिए भी ढ़पली की तरह ही लकड़ियों या छड़ियों का इस्तमाल किया जाता है। यह भी चमड़ी से ही बनायी जाती है। लेकिन इसे किसी नियोजित जगहों पर बजाया नहीं जाता बल्कि ढ़पली और ढ़प के साथ इसका इस्तमाल किया जाता है।

'हलगी' दाएँ कंधे पर ऱखते हैं वह इसलिए कि उसे आगे की तरफ आसानी से लिया जा सकता है , इसका कारण यह बाताया जाता है कि यह पेट को छुते हुए नाभी का सहारा लेने से ही 'हलगी' ठीक से बजाई जा सकती है। बिना नाभी के सहारे से 'हलगी' बजाना गलत तरीका समझते हैं। इसके पीछे का असली कारण यह है कि 'हलगी' बजाते समय वह हाथ से ना फिसलें।

'हलगी' बजाने के लिए दो छड़ियों की जरूरत होती है । हलगी बजाने वाला कलाकार इन दो छड़ियों का प्रयोग करता है । जो उसके दोनों हाथों में रहती है । दाएँ हाथ में जो रहती है उसकी लंबाई थोड़ी छोटी होती है जबकि दाएँ हाथ में जो होती है वह पतली एवं लंबी रहती है । इन दोनों छड़ियों को इस प्रकार से देखा जा सकता है ।

हलगी बजाने के प्रयोग में लाई जानी वाली पहली छड़ी :-

यह लग-भग एक इंच चौड़ी, गोल और बारीक नक्कशीदार होती है । यदि यह छड़ि चिकनी ना होने पर चमड़ी फटने का खतरा होता है । यह एक तरफ थोड़ी चौड़ी होती है और उसका सामने वाला भाग सपाट होता है । क्षेत्रकार्य के दौरान वे लोग बाता रहें थे कि मध्य युग में लकड़ी के बजाय बैल के सींग से बनाई हुई छड़ियों का इस्तेमाल भी किया जाता था ।

हलगी बजाने के प्रयोग में लाई जानी वाली दूसरी छड़ी :-

यह छड़ी 'हलगी' से भी ज्यादा लंबी रहती है । ये लंबी तो होती है लेकिन मुलायम भी रहती है । जिसका आकार नीचे से ऊपर तक एक जैसा ही होता है । यह विशेष रूप से बाँस की लकड़ी से बनाई जाती है ।

'हलगी' बजाने वाले कलाकार :-

तेलंगाणा या आंध्र प्रदेश में हलगी को 'डप्पु' कहा जाता है । इन प्रांतों में 'डप्पु' को विशेष महत्त्व दिया जाता है । यहाँ पर 'हलगी' बजाने वाले कलाकारों को लेकर तरह-तरह की लोक कथाएँ बताई जाती हैं । इन प्रांतों में

'हलगी' बजाने का कार्य चमार (मादिगा) जाति के लोग ही करते हैं। वहीं महाराष्ट्र में यह काम मातंग समाज करता है। मादिगा जाति के लोगों का विश्वास यह है कि देवी मातम्मा, जिन्हें मदिगा जाति की मूल देवता माना जाता है, उन्हें यह 'डप्पु' वरदान स्वरूप मिला है। इस प्रकार की लोक कथाएँ समाज में प्रचलित है। दूसरी कहानी यह भी बताई जाती है कि परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी माँ का सिर काट दिया था। तब परशुराम की माता के कटे हुए सिर को मादिगा जाति के लोगों ने संभालकर रखा था। उनकी इसी कृतज्ञता के लिए ही उनको 'डप्पु' दिया गया है। उसे ही ये लोग देवी मातम्मा समझते हैं और यही उनका दृढ़ विश्वास है। वास्तव में यह हुआ है या नहीं यह कहा नहीं जा सकता है।

मातंग और मादिगा दोनों 'हलगी' बजाने की कला से प्रवीण हैं लेकिन दोनों एक नहीं है। आंध्र या तेलंगाना प्रांत के मादिगा 'डप्पु' के साथ-साथ चप्पल आदि बनाते हैं जबकि मातंग समाज चप्पल आदि नहीं बनाता है। क्योंकि महाराष्ट्र में यह काम 'चमार' करते हैं। यही इन दोनों प्रांत के लोगों में फर्क दिखाई देता है परंतु यह दोनों भी हलगी बजाने का काम करते हैं। मदिगा जो है वह चमारवृत्ति भी करते हैं। अर्थात् आंध्र या तेलंगाना के मदिगा चमार माने जाते हैं परंतु मातंग और चमार में अंतर है। महाराष्ट्र में चमार जाति के लोग अपने आपको मातंग समाज से श्रेष्ठ समझते हैं।

मातंग समाज के पेशे के कारण चमड़ी को चिकना करने और उस चमड़ी से विभिन्न प्रकार की चर्मकार वस्तुएँ स्वाभाविक रूप में बना देते हैं।

‘हलगी’ बजाना मातंग समाज का एक प्रकार से व्यवसाय ही है और इसे बजाने का कौशल्य भी ये लोग हासिल कर चुके हैं । लोग इस ‘हलगी’ से आकर्षित होते हैं, क्योंकि वह आनंदायक होती है । लेकिन यह अछूतों का जातिगत पेशा बन गया था ।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि ‘हलगी’ की लोक कलाएँ केवल मातंग समाज में देखने को मिलती है । इस समाज को ‘हलगी’ बजाने के लिए अलग से कोई भी शास्त्रिय प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है । यह माना जाता है कि ‘हलगी’ बजाना एक प्रकार से वंशानुक्रम के रूप में विरासत में मिला है । प्रत्येक लोक कलाएँ इस प्रथा की नकल करती है कि किस प्रकार से आने वाली पीढ़ी के साथ उनके वंशजों के लिए पारित किया जाता है । इस समाज का युवा वर्ग सीखने की कोशिश में किसी प्रकार की गलती भी करता है, तो उनके बुजुर्ग उन्हें सही तरीका सिखा देते हैं । तत्कालीन परिस्थितियों में मातंग समाज ने किसी भी प्रकार से ‘हलगी’ बजाने की कोई भी शिक्षा ग्रहण नहीं की थी ।

आज के समय में समाज लोक कलाओं की ओर आकर्षित हो रहा है और ‘हलगी’ एक प्रेरक साधन होने के नाते दिन-ब-दिन लोकप्रियता प्राप्त कर रही है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लोकनाट्यों या तमाशों आदि में ‘हलगी’ का व्यापक प्रचार होता है । आजकल ‘हलगी’ बजाना सिर्फ मातंग समाज तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि अन्य जातियों के लोग भी सीख रहे हैं । जो लोग ‘हलगी’ बजाना सीख गये हैं वे लोग इन दिनों ‘हलगी’ से एक

प्रकार की अजीविका प्राप्त कर रहे हैं। साथ ही कई सम्मान और पुरस्कार भी पा रहे हैं।

वर्तमान समय में कुछ शैक्षणिक संस्थानों में महत्वाकांक्षी कलाकारों को सिखाने के लिए 'हलगी' के प्रशिक्षण के केन्द्र खोले जा रहे हैं। क्योंकि अन्य लोग 'हलगी' बजाना सीखने के लिए उत्सुकता दिखा रहे हैं। 'तेलुगु विश्वविद्यालय' के उपाध्यक्ष डॉ. सी. नारायण रेड्डी ने एक समारोह में घोषणा की थी कि 'हलगी' का प्रशिक्षण 'तेलुगु विश्वविद्यालय' में भी आयोजित किया जा रहा है। इस प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना में डॉ. सी. नारायण रेड्डी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। डॉ. सी. नारायण रेड्डी तेलुगु पारंपरिक साहित्य, संस्कृति और विशेष रूप से लोक कथाओं के लिए एक निर्देशक के रूप में जाने जाते हैं।

'हलगी' बजाने के तरीके :-

यदि आप अपने दाहिने हाथ से छड़ी पकड़ते हैं और उस छड़ी को 'हलगी' के नीचे की ओर से ऊपर की ओर धकेलते हैं, उसी प्रकार बाएँ हाथ में रहने वाली छड़ी को ऊपर की ओर से नीचे धकेल सकते हैं। यही 'हलगी' बजाने की एक विशेषता होती है। निचले हाथ से 'हलगी' पर आराम से बजाया जा सकता है।

'हलगी' बजाने से पहले हर बार सेंकना जरूरी होता है क्योंकि जब तक हम चमड़ी को नहीं सेकेंगें तब तक उसमें से आकर्षित करने वाली ध्वनि नहीं आती है।

'हलगी' बजाने के प्रसंग :-

'हलगी' बजाने के कई प्रसंग होते हैं। प्रारंभ में- ढिंडोरा पीटना, शव यात्रा, जत्रा और धार्मिक कार्यों में 'हलगी' बजायी जाती थी लेकिन अब मनुष्य अपने व्यक्तिगत प्रसंगों में जैसे हल्दि, शादियों, सामाजिक समारोहों, धार्मिक समारोहों, राजनीतिक पार्टी की गतिविधियों, फिल्मों आदि संदर्भों के अलावा कई लोक कलाओं में भी 'हलगी' बजायी जाती है।

3.4. 'हलगी' का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में लोककला और लोक कलाकारों को महत्त्व दिया गया है । संगीत, नृत्य, गोंधळ, भंडारा, वाघ्यामुरळी (मातंग समाज में मनाएँ जाने वाले उत्सव हैं) आदि उत्सवों का समावेश ग्रमीण संस्कृति में होता है । यहाँ के लोक समुदायों ने ही इन लोक कलाओं को जन्म दिया है । उसे विशेष रूप से महत्त्व देने का काम यहाँ की लोक संस्कृति ने किया है ।

आधुनिक युग में डी.जे. जैसे वाद्ययंत्रों के कारण यहाँ के मूल लोक वाद्य 'हलगी' (ढ़पली) जैसे वाद्य यंत्र नामशेष होते दिखाई दे रहे हैं । ढोल, संदल, धुमाल, बँड आदि नामधारण कर के अनेक वाद्य यंत्र तथा इसे बजाने वाले कलाकार मार्केट में दिखाई पड़ते हैं । इन्होंने अपने व्यवसाय में इल्जाफा जरूर पाया है । लेकिन वह पारंपारिक लोकप्रियता हासिल करने में नाकाम रहें हैं । हाँ इतना जरूर कहा जा सकता है कि उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है । परंतु वे अपनी ही लोक संस्कृति में अपनी जगह बनाने में नाकाम रहें हैं । वही दूसरी ओर 'हलगी' है जो इस लोक संस्कृति में उसने अपनी छाप छोड़ी है । वह एक तरह से लोक मानस में आज भी कायम है । इसने संपत्ति कमाई नहीं है । क्योंकि इन्हें तो सिर्फ बक्षिसे दी जाती थी और श्रोताओं का प्यार आदि पर वह आज भी टीकी हुई है । वास्तव में 'हलगी' की यह कला लोक में लोककला के रूप में मानी जाती है । इसे किसी भी प्रकार का शात्रीय प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है फिर भी लय, ताल, तथा सुर प्राप्त हुए हैं जिसके आधार पर यहाँ की संस्कृति में सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन

किया जाता है । इस तरह के सांस्कृतिक उत्सवों का प्रतीक 'हलगी' को ही माना जाता है । इसमें अक्षय ऊर्जा ही होनी चाहिए । हाँ यह अक्षय ऊर्जा का प्रतीक है । क्योंकि इनकी यह ऊर्जा इस संस्कृति में प्राचीन काल से चली आ रही है । इस परंपरा में नागरी संस्कृति से लेकर आज तक के सारे सांस्कृतिक गुणों का बोल बाला है । इसके सांस्कृतिक गुणों में धर्म है, कर्म है, सत्य है, नीति है, आस्था तथा भक्ति आदि पर इसके अधिकार दिखाई देते हैं । जिससे लोकसंस्कृति में अपनी पहचान बनाने में सफल रही है । विश्व स्तर पर यहाँ की लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य प्रसिध्द रहा है । लोक संस्कृति की यह प्रसिध्दी दुनिया के किसी भी देश को प्राप्त नहीं हुई है ।

इस संस्कृति का एक चौथाई भाग देवी-देवताओं की उपासना करता है । वह यह मानता है कि देवी-देवताओं के आशिर्वाद से हमारा लौकिक बना रहें । इसलिए इस संस्कृति में लोक उत्सवों, ग्रामीण देवताओं की उपासना आदि को महत्त्व दिया गया है । इन्हीं लोक उत्सवों और ग्रामीण देवीओं की उपासनाओं के कारण 'हलगी' जैसी लोक कला को तथा लोक कलाकरों को उभरने का मौका मिला है । इन ग्रामीण उत्सवों को इस प्रकार से देखा जा सकता है । जैसे- संगीत, नृत्य, गोंधळ भंडारा, वाघ्या मुरळी (मातंग समाज इन ग्रामीण उत्सवों में 'हलगी' बजाने का काम करता है) आदि ग्रामीण त्यौहार, उत्सव भी इसमें समाविष्ट रहते हैं । इससे यह पता चलता है कि मातंग समाज की इस लोक कला का उद्भव इन ग्रामीण उत्सवों तथा धार्मिक विधियों में से ही हुआ है । इसका कारण यह है कि यहाँ के लोक समुदायों ने इस कला का निर्माण किया है और यह भी सत्य है कि यहाँ कि लोक

परंपराओं ने इसे बढ़ावा भी दिया था। इस लोक कला में जिन वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है उनका भी अपने आप में खास महत्त्व है और अलग-अलग वाद्य यंत्रों की अपनी-अपनी विशेषताएँ भी हैं। विशेषता इस संदर्भ में कि कौनसे भी चर्मकार वाद्य यंत्रों का प्रयोग किसी भी समय, प्रसंग और निमित्य आदि का विचार करनै के बाद ही प्रयोग किया जा सकता है। उदा. किर्तनों में प्रयोग किए जाने वाले वाद्य यंत्रों का प्रयोग जागरण या गोंधळ (एक प्रकार का नाटक है) में नहीं कर सकते हैं। देवी-देवताओं के गीत गाते समय प्रयोग में लाये जानेवाले संबंल को लावणी या पोवाड़े में नहीं बजाया जा सकता है। क्योंकि लावणी में 'हलगी' (ढ़पली) पर पड़ने वाली थाप ही हृदय तक पहुँचती है। साथ ही रंगीन माहौल भी बन जाता है, नई धून का निर्माण होता है। इस संस्कृति में लोक देवताओं के लिए तरह-तरह के वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है उसमें प्रमुख रूप में 'हलगी' ही होती है। इसलिए 'हलगी' को एक तरह से बहु उपयोगी या बहुगुणी वाद्ययंत्र माना जाता है।

'हलगी' को ग्रामीण संस्कृति में डफरी (डपली) भी कहा जाता है। जो गाँवों, देहातों में तथा शहरों में होनो वाले उत्सवों में बजाई जाती है। यह डपली जब भी बजती है तब सुनने वाला हर्षित हो जाता है। डपली में चर्मकार के वाद्ययंत्र अलग-अलग है जैसे- ढ़परी (ढ़पली), ढ़परा (ढ़पला), ढ़प, दिमड़ी, और दिमकी आदि। यह सभी चर्मकार वाद्ययंत्र आकार से गोल जरूर होते हैं लेकिन सभी की विशेषताएँ अलग-अलग हैं। हाँ इसे ऐसा जरूर कहा जा सकता है कि यह सारे एक ही कुल के वंशज हैं। इसे बनाने की खूबी भी विशिष्ट है। इसे बजाने के लिए इस्तमाल की जाने वाली छोटी-छोटी

लकड़ियों का आकार और चौड़ाई, 'हलगी' के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली चमड़ी, तथा उसे तानने या खींचने तथा बनाने में इनके कौशल्य का परिचय मिलता है। 'ढ़पली' (हलगी) की कड़ियाँ तीन-चार इंच चौड़ी रहती है और 'ढ़प' की चौड़ाई उससे थोड़ी कम होती है। ढ़प तथा ढ़पली दिखने में गोलाकार के ही होते हैं। परंतु उसके लिए इस्तमाल की जाने वाली चमड़ी में अंतर होता है। ढ़प के लिए पतले चमड़ी का इस्तमाल किया जाता है। दोनों को गरम करने की जरूरत होती है। गरम करने के बाद उसमें से निकलने वाली आवाज भी एक जैसी नहीं रहती है। 'ढ़प' की आवाज धून नखरेली तथा भावनाविष्कार से भरी होती है। वहीं 'ढ़पली' की आवाज पोरूषत्त्व का आभास कराती है तथा जोशयुक्त होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें से निकलने वाली आवाज को उपमा दी गयी है एक को पोरूषत्त्व की तथा दूसरें को नखरेली नायका की। 'ढ़प' बजाने के लिए एक विशिष्ठ प्रकार की छड़ी का प्रयोग किया जाता है। वही 'ढ़पली' के लिए अंगूठे के आकर की एक लकड़ी का तुकड़ा तथा छोटी छड़ी का इस्तमाल किया जाता है। 'ढ़प' बजाने वाला बड़ी चतुराई से अपनी ऊँगलियों का प्रयोग करता है। 'ढ़पली' बजाने वाला ऐसा नहीं कर सकता है। इसकी स्वतंत्रता उसे नहीं होती है। 'ढ़पली' वाले की स्वतंत्रता यह होती है कि वह बजाते-बजाते नाँच सकता है। वही ढ़प बजाने वालों को इसकी स्वतंत्रता नहीं होती है। ढ़पली या 'हलगी' का इस्तमाल अनेक जगहों पर या अनेक

उत्सवों में किया जाता है । लेकिन ढ़प सिर्फ नियोजित जगहों पर ही बजाते हैं जैसे- तमाशों, वाघ्यनाट्य तथा शायरी आदि कलाओं को सादर करते हुए इसका इस्तमाल किया जाता है । इसी कड़ी में लावणी, पोवाड़ा तथा काव्य गायन याने तमाशों आदि प्राण ढ़प ही होता है ।

समाज अपनी लोक संस्कृतिक परंपराओं में पूजा विधि को महत्त्व देता है । इस पारंपारिक संकल्पनाओं में जितने भी संगीत के साधनों का निर्माण हुआ है उसमें अधिकतर 'चर्मकार' के साधन हैं जैसे- मृदंग, पखवाज, संबंल, ढोल, ढ़प, ढ़परी, 'हलगी', दिमकी, डमरू, नगाड़ा, खंजिरी आदि चर्मवाद्यों के अंतर्गत ही आते हैं । इनमें महाराष्ट्र की लोक संस्कृति में 'हलगी' को विशेष रूप से महत्त्व दिया जाता है और इसे विशेष स्थान भी प्राप्त है । उसे यह महत्त्व इसलिए प्राप्त हुआ है कि इसे बहुविधि प्रसंगों में प्रयोग में लाया जाता है । 'हलगी' का इस्तमाल कुस्ती के अखाड़ों में भी किया जाता है । यहाँ प्रति स्पर्धियों को एक दूसरों को मात देने के लिए उन्हें जोश में लाने के लिए 'हलगी' बजाई जाती है । उसी प्रकार शंकर पट्टों में जितने वाले खिल्लारी बैल जोड़ी के जीत के जश्न में भी बजाई जाती है । साथ ही दोनों प्राणियों के बीच लगाई जाने वाली स्पर्धाओं में भी बजाई जाती है । उसी प्रकार ग्रामीण देवी-देवताओं के कुछ विशिष्ठ पूजाओं में भी बजाई जाती है । लेझीम के खेल में संपूर्ण संघ एकरूप होकर खेलें इसलिए भी 'हलगी' का इस्तमाल किया जाता है । उसी प्राकर लाटी के खेल में, मर्दानी दंडपट्टों के खेलों में जो भी विजयी होता है उन विजयी वीरों के स्वागत में भी 'हलगी' बजाई जाती थी

। मरीआई का उत्सव तो 'हलगी' के बिना अधुरा ही रहता है ऐसा बताया जाता है । 'हलगी' बजाने के पहले इस उत्सव में कुछ भी नहीं किया जा सकता है ।

'हलगी' एक तरह से जोश बड़ाने का काम करती है । चाहे वह कुस्ती के अखाड़े में हो चाहे शंकरपट में या फिर लाठी के खेल में या लेझीम आदि के खेलों में यह उन लोगों का उत्साह वर्धन करने का काम करती है । यदि कुस्ती के लिए सज्ज होने वाले पहलवानों के सामने 'हलगी' की जगह यदि डमरू बजाएँ जाएँगे तब उन पहलवानों का जोश कैसे बड़ सकता है, उसका खून कैसे खौल सकता है, वह 'हलगी' के बिना जगाए हुए शेर की भाँति सामने वाले को कैसे ढ़ेर कर सकता है । इसलिए यहाँ की लोक संस्कृति में 'हलगी' लोकमानस का आईना बनी हुई है । जिसमें लोक मानस के सुख-दुःख समायें हुए हैं । जिसमें शिशु जन्म से मुंडन तक, मुंडन से विवाह तक, विवाह से लेकर मृत्यु तक 'हलगी' के सुर और ध्वनियाँ एकरूप हो जाती हैं ।

'हलगी' लोक वाद्य जरूर है लेकिन इसे बजाना किसी भी ऐरे-गैरे का काम नहीं है । ग्रामीण क्षेत्र में यह वाद्य याने 'हलगी' विशिष्ठ लोग ही बजाते हैं । इसे सिर्फ मातंग या मादिगा जाति के लोग ही बजाते हैं । इसे बजाने की कला में वे लोग निपूर्ण होते हैं । इस जाति के कुछ लोग या कुछ परिवार इसे बजाने की कला जानते हैं । वैसे बजाते तो बहुत हैं लेकिन उसकी कलाकारी में फर्क होता है । अनुभव हीन कलाकार जोश में या सीखने के लिए बजाया

करते हैं। दूसरी तरफ अनुभव वाले होते हैं जो सारी कलाकारी जानते हैं। क्योंकि उनकी परंपराओं ने उनकी इस वाद्ययंत्रों को बजाने की कला में कौशल्य भर दिए हैं।

गाँवों या देहातों में लगातार दो-तीन घंटों तक ही नहीं बल्कि रात-रात भर, दिन भर, प्रवासों में भी बिना रूके 'हलगी' बजाने वाले, बजाते-बजाते नाँचने वालों को हम देखते हैं और ऐसा करते समय वे थकते भी नहीं हैं। ऐसे कलाकारों को हमने खूद अपनी आँखों से देखा भी है। हम हमारे मित्रों या रिश्तेदारों के शादियों में इन कलाकारों को देखते हैं। हालाँकी अब इसके स्वरूप बदले जरूर हैं। हमें उनके इस तरह के प्रदर्शन करते हुए नाँचते हुए बजाने आदि से उनकी क्षमता और कौशल्य का अंदाजा यूँही लग जाता है। उनके ऐसे प्रदर्शन को देखकर हर कोई हैरान रह जाता है। इतनी क्षमता इन कलाकरों में होती है।

इस प्रकार 'हलगी' यह लोकवाद्य यहाँ की लोक संस्कृति का अभिन्न अंग बना हुआ है। 'हलगी' के ध्वनियों की गूँज तथा उसकी पारंपारिक लय, ताल और धून आदि आज भी लोक संगीत की चाह में मंत्रमुग्ध कर देती हैं। 'हलगी' समाज का हौसला और मनोबल बढ़ाने का काम करती है। किसी दुर्बल व्यक्ति के सामने जिसकी जीवन जीने की इच्छा खत्म हो चुकी हो ऐसे व्यक्ति के सामने ये गुणी कलाकार जी जान लगाकर कुछ देर बजाएँगे तो वह व्यक्ति झुमने लगता है, इतना सामर्थ्य इस समाज की लोक संस्कृति में उनकी

परंपरा से प्राप्त हुआ है । लेकिन आज के दौर में या आधुनिकीकरण के इस दौर में 'हलगी' को महत्त्वहीन बनाने का काम किया जा रहा है ।

3.5. बाजारीकरण में 'हलगी' का स्थान

आरंभ में 'हलगी' बजाने का अधिकार केवल मातंग समाज को ही था। परंतु आज यह बाजार बन गया है। बाजारों में शैंकड़ों ऐसे बँड के दुकान देखने को मिलते हैं जहाँ पर 'हलगी' आदि अलग अलग प्रकार दिखाकर बाजार में अपना नाम बनाने वाले व्यापारी बैठे हुए मिलते हैं। इनका काम है पैसा कमाना यह लोग पैसा कमाने के लिए अपने आप को किसी जाति विशेष का बताने में भी कतराते नहीं है। उस समाज के भोले भाले लोगों को अपनी जाल में फँसाकर उनसे अपना काम करवाने में साथ ही नाम कमाने में प्रयोग करते हैं। वह सिर्फ दुकान का मालिक होता है न की उस जाति का जो उस कला से संपन्न है। उसे जाति की चिंता नहीं होती और न ही उस कला की जिसके बल पर वह धनवान बन रहा है। वह तो सिर्फ पैसों से मतबल रखता है। आरंभ में 'हलगी' केवल गाय या बैल के चमड़े से बनाई जाती थी। जो चमड़े से बनती थी या बनाया जाती थी उसका अपना एक अलग महत्त्व था। परंतु आज के इस दौर में चमड़े की जगह प्लॉस्टिक ने ले ली है और उसका इल्जाफा भी बहुत हो रहा है। चमड़े की 'हलगी' बनाने में समय भी लगता था साथ ही दो चार लोगों की मेहनत। अब बाजार में सिर्फ प्लॉस्टिक के वाद्ययंत्र मिलते हैं जिससे व्यापारी अपने जेब भरने में सफल हो रहे हैं।

मातंग समाज की आर्थिक परिस्थिति कमजोर होने के कारण यह समाज इस तरह की सामग्री लेने में पीछे रहा है। अपनी दिनचर्या पूरी करने

में ही लगा रहता है तब इतनी महंगी सामग्री वह कैसे ले सकता है । अपने परिवार को पालने में ही उसकी पूरी जिंदगी चली जाती है । ऐसे में बाजार में बड़ती कीमंत को देखकर वह एक कलाकार होने के बावजूद भी एक नौकर की तरह काम करता नजर आ रहा है । उसकी अपनी पारंपारीक कला का महत्त्व तो बढ़ता रहा है परंतु उसका श्रेय कोई ओर ले रहा है । इस बाजारीकरण में 'हलगी' की जगह प्लॉस्टिक की 'हलगी' आ गयी, लकड़ी की शहनाई ने पितल की जगह ले ली, ढोल आदि की जगह ड्रम आ गए है जिसे व्यक्ति बनाया करता था आज वह मशीन के माध्यम से बन रहा है । ऐसे में संगीत कलाओं के वाद्ययंत्रों का महत्त्व बड़ तो रहा है परंतु उन लोगों को बेरोजगार बना दिया जा रहा है जो परंपरा से बनाते आ रहे हैं । यह बात सिर्फ 'हलगी' की नहीं है हर चीज को लेकर बाजारवाद ने अपने फायदे के लिए सामान्य लोगों को बेरोजगार बना दिया है । इसके चलते सांस्कृतिक कलाएँ तो बनी हुई है परंतु उसका रूप बदला हुआ नजर आ रहा है । इस देश के अधिकांश लोग ऐसी कलाओं पर निर्भर रहते थे और आज भी है लेकिन बाजारवाद के चलते उनकी योग्यता पर सवाल उठाए जा रहे है । बाजारवाद ने सर्वसामान्य व्यक्ति को निराश किया है । उसकी रोजी-रोटी पर किचड़ उछालने का काम किया है । मातंग समाज भी इसका शिकार हुआ है । उनकी अति प्राचीन 'हलगी' की परंपरा आज बाजारवाद के कारण डुबने के कगार पर है । दूसरी ओर मातंग समाज का वह युवा वर्ग है जो इस प्रथा को नकारता चला आ रहा है । युवा वर्ग मानता है कि जिस काम का मूल्य ही ठीक से नहीं मिल रहा हो ऐसा काम करने से क्या फायदा । उसका मूल्य हमें

कुछ पैसों के रूप में मिलता है, उसी प्रकार जो कला हमारे पास है उसी कला का हम प्रदर्शन करते हैं जिसका लाभ कोई ओर उठाता है। बाजार में उसे ही महत्व दिया जाता है। मातंग समाज का युवा वर्ग अब 'हलगी' आदि जैसी पारंपारिक रीति-रिवाजों को त्यागना चाहता है और मूख्यधारा में आना चाहता है।

चतुर्थ अध्याय

4. डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज

वर्तमान युग में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के मौलिक विचारों का अभ्यास किया जा रहा है। साथ ही उन विचारों पर चलने का प्रयास भी किया जा रहा है। केवल दलित समाज ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतीय अस्पृश्य समाज ही डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलने की इच्छा रखता है। उनके विचारों में मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने की समझ और उनके संघर्षमयी जीवन से सम्मानिय जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है जिसके लिए जनता हर वक्त उनके आगे नतमस्तक रहती हैं। जिस प्रकार संपूर्ण भारत में एक तबका डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलने की इच्छा रखता है उसी प्रकार मातंग समाज को भी अपने विकास की दशा और दिशा निर्देशित करने के लिए डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष को जान लेना आवश्यक है।

'डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज' इस विषय पर बात करने से पहले डॉ. अम्बेडकर के संघर्षमयी जीवन का संक्षिप्त परिचय देना अनिवार्य है। केवल परिचय मात्र ही नहीं बल्कि उन्होंने जिन आंदोलनो का नेतृत्त्व कर अस्पृश्य समाज को जागृत करने का ऐतिहासिक कार्य किया है। उनके इन सामाजिक कार्यों से अस्पृश्य समाज में चेतना जागृत हुई है। वहीं से परिवर्तन की मशाल जली थी, जो आज भी जनता अपने अधिकार माँगते हुए लड़ रही है। डॉ. अम्बेडकर का जीवन, उनके सामाजिक कार्य, सामाजिक आंदोलन तथा उनकी लिखी किताबें आदि को पढ़कर जानकारी प्राप्त करना जरूरी है। यह अपेक्षा मातंग समाज के युवा पीढ़ी से की जा सकती है, अपने समाज को विकास की ओर अग्रसर करने के लिए युवाओं को अम्बेडकरवाद समझ लेना जरूरी है। डॉ.

अम्बेडकर द्वारा लिखी किताबें, लेख आदि का अध्ययन तथा उनके सामाजिक आंदोलनों को निस्वार्थ रूप से देखने की कोशिश करने से पूर्ण अम्बेडकर दिखाई देंगे जो किसी जाति के नहीं बल्कि संपूर्ण अस्पृश्य समाज का नेतृत्त्व कर रहे थे। लेकिन मातंग समाज में यह भ्रम फैलाया गया है कि डॉ. अम्बेडकर केवल महारों के ही हितैषी है। इस तरह का भ्रम दूर करने के लिए हमें डॉ. अम्बेडकर को समझना बहुत जरूरी हो जाता है। जो आंबेडकर को पढ़ने से संभव हो सकता है।

डॉ. अम्बेडकर के आरंभिक जीवन का परिचय जरूरी नहीं है क्योंकि हम सब जानते ही हैं कि उनका जीवन संघर्षमयी रहा है। परंतु जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं को जानना अति आवश्यक है। 1913 में जब डॉ. अम्बेडकर ग्रॉज्युवेट हुए थे तब उन्हें बडौदा में 'सैन्य लेफ्टनंट' की नौकरी मिली थी। नौकरी तो मिल चुकी थी परंतु रहने के लिए कमरा नहीं मिला था, जिसके लिए उन्हें अपनी जाति छुपानी पड़ी थी जो उनके लिए संकट बन गयी थी। इसी दौरान उनके पिता रामजी सकपाल का देहांत हो जाता है और वे बडौदा की नौकरी छोड़कर चले जाते हैं। तदपश्चात उनकी मुलाकात बडौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड से होती है। बडौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड डॉ. अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर उनकी आगे की पढ़ाई के लिए शिष्यवृत्ति प्रदान करते हैं जिससे डॉ. अम्बेडकर अपनी आगे की पढाई के लिए कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमेरिका चले जाते हैं, यह समय 1913 का था जब वे अमेरिका गए थे। वे अपने शैक्षणिक क्षेत्र में अनुसंधान करने का आरंभ करते है। 1915 में वे कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम. ए. की उपाधि प्राप्त करते है।

इसी विश्वविद्यालय से उन्हें 1917 में पीएच. डी. की उपाधि प्रदान की जाती है ।

डॉ. अम्बेडकर यहीं पर नहीं रुकते हैं बल्कि वे 1917 में इंग्लंड चले जाते हैं । इंग्लंड जाकर उन्होंने स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स में दाखिला लिया और 1918 में 'रूपयों की समस्या' नामक शोध प्रबंध लिखकर डी. एस. सी. की उपाधि प्राप्त कर ली थी । 'रूपयों की समस्या' नामक शोध प्रबंध को लण्डन में पी. एस. प्रिंग अँड कंपनी की ओर से सर्वप्रथम प्रसिध्दि मिली थी उसके बाद यही प्रबंध अमेरिका में भी प्रसिद्ध हो गया था । लंडन से भारत लैटने के बाद 1918 में डॉ अम्बेडकर मुंबई के सिडनहँम नामक कॉलेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए थे । एक वर्ष के पश्चात अर्थात् 1919 में 'एव्हँल्यूशन ऑफ प्रोव्हीएशन फायनांस इन ब्रिटिश इंडिया' इस विषय पर शोधात्मक प्रबंध लिखकर उसकी सौ प्रतियाँ कोलंबिया विश्वविद्यालय को भेज दी थी, यह प्रतियाँ भेजने के बाद उन्हें कोलंबिया विश्वविद्यालय की ओर से पीएच. डी. का प्रमाण पत्र प्रदान किया गया था । इसी साल से डॉ. अम्बेडकर के राजनीतिक जीवन का आरंभ हुआ था । वे भारतीय राजनीति में बदलाव चाहते थे ।

डॉ. अम्बेडकर के सामाज सुधार कार्यों का आरंभ 20 मार्च 1927 से हुआ था यह घटना थी 'महाड के चवदार तालाब' के आंदोलन की जो विश्व की ऐतिहासिक घटनाओं में से एक है । इसकी घोषणा के बाद डॉ. अम्बेडकर की मुलाकात कोल्हापुर नरेश शाहू जी महाराज से हुई थी । इस दौरान डॉ. अम्बेडकर की यह कोशिश रही कि अस्पृश्यों के घर-घर तक सामाजिक प्रबोधन किया जाना चाहिए जिसके लिए उन्होंने 31 जनवरी 1920 को 'मुकनायक'

नामक पत्रिका शुरु की थी । हालाँकि इसके बंद होने का कारण यह बताया जाता है कि 'मुकनायक' प्रकाशन के लिए कोई भी प्रकाशक छापने के लिए तैयार नहीं थे जिसके चलते उन्हें यह बंद करना पड़ा था । 1922 में डॉ. अम्बेडकर को लंडंन विश्वविद्यालय की ओर से 'डॉक्टर ऑफ सायंन्स' की उपाधि प्रदान की गयी । उसके बाद वे पूनः उच्च शिक्षा ग्रहन करने के लिए लंडंन चले गए, वहाँ जाकर उन्होंने कानून की पढ़ाई की और 1923 में बॉरिस्टर बनकर भारत लौटे थे । भारत लौटने के पश्चात डॉ. अम्बेडकर भारतीय राजनीति में सक्रीय हो गये थे और इसी दौरान वे मुंबई विधिमंडल के सदस्य बने । सदस्य बनने के बाद पूनः उन्होंने अपनी पत्रकारिता शुरु की थी जो 'बहिष्कृत भारत' के नाम से प्रसिद्ध है । 'बहिष्कृत भारत' के अग्रलेखों के माध्यम से वे अस्पृश्य समाज में चेतना जागृत कर रहे थे ।

डॉ. अम्बेडकर अपनी शिक्षा ग्रहण करते हुए भारतीय अस्पृश्य समाज के उद्धा र का भार भी संभाल रहे थे । इसका उदा. महाड की ऐतिहासिक क्रांति है जो 'बहिष्कृत हितकरनी सभा' के माध्यम से घोषणा कर 20 मार्च 1927 में इस ऐतिहासिक क्रांति को अंजाम दिया था । संपूर्ण भारत में इसका परिणाम दिखाई देने लगा था जगह-जगह सार्वजनिक अधिकार के रूप में पीने के पानी के लिए यह आंदोलन चल रहे थे । 1928 में वे मुंबई के शासकीय लॉ कॉलेज में अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए थे, इसी वर्ष सायमन कमिशन समिती, मुंबई के सदस्य बने थे । 1930 में उन्होंने 'जनता' नामक पत्रिका की शुरुआत की साथ ही वे 'टाईम्स ऑफ इंडिया', 'सर्व्हंट ऑफ इंडिया' आदि वर्तमान पत्रों के माध्यम से अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विचारों पर लेख लिख रहे थे ।

1930 में उन्होंने नाशिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए आंदोलन किया था जिससे देश के सभी मंदिर अस्पृश्यों के लिए खुले किए जाने चाहिए यह संकेत दिया गया था । कालाराम मंदिर का आंदोलन काफी लंबे समय तक चला लगभग दो वर्ष तक यह चलता रहा । इन दो सालों के कार्यों को ध्यान में रखते हुए डॉ. अम्बेडकर को अस्पृश्यों के प्रतिननीधि के रूप में गोलमेज परिषद का बुलावा आया था । उसके बाद वे राउंड टेबल काँफरंस, लंडंन गए थे, इस काँन्फरंस में मुख्य रूप से उन्होंने अस्पृश्यों को उनके अधिकार, सरकारी सुविधा आदि का आग्रह करते हुए गोलमेज परिषद के सामने अपना मत रखा था ।

डॉ. अम्बेडकर ने 1931 में 'पाकिस्तान के विचार' नामक प्रबंध लिखा था । 1932 में वे संविधान दुरुस्ती के संयुक्त समिती के सदस्य बने थे । 1935 में वे मुंबई लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल बन थे । 1936 में उन्होंने अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्र राजनीति के लिए मजदूर पक्ष की स्थापना की थी, इसी समय येवले नामक गाँव में महार परिषद का आयोजन कर धर्मांतरन की पहिली घोषणा की थी । 1939 में वे मुंबई विधि मंडल के सदस्य बने । 1940 में उन्होंने 'कांग्रेस-गाँधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया' नामब प्रबंध लिखा । इसी दौरान डॉ. अम्बेडकर की अनेक किताबें प्रकाशित हो चुकी थी जो इस प्रकार थे भारत में जाति, भारतीय जातियता का विच्छेदन, संघराज्य आदि । 1941 में ही उन्होंने महार जाति पंचायत की स्थापना की थी 1942 में इसी स्थापना का नामकरण 'ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट' नाम से हुआ था । 1942-1946 तक डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर भारत के मजूर मंत्री थे साथ ही व्हाईसरॉय एक्झिक्युटीव्ह कौंसिल के सदस्य भी रहे । 1945 में उन्होंने पिपल्स एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना

की थी। 1946 में मुंबई में सिद्धार्थ कॉलेज की स्थापना की। 9 दिसंबर 1946 में डॉ. अम्बेडकर की अध्यक्षता में संविधान समिती की पहिली बैठक हुई थी। इसी साल उन्होंने गव्हर्नर जनरल एक्झिक्युटीव्ह कौंसिल का राजीनामा भी दिया था। उसके बाद उन्हें लंडन की बैठक में बुलाया गया था। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तब वे भारत की प्रथम संसद में नेहरू के मंत्री मंडल में वे भारत के पहले कानून मंत्री बने और साथ ही मसूदा समिती के अध्यक्ष भी रहे। 1950 में डॉ. अम्बेडकर ने संविधान लिखने का कार्य पूर्ण कर भारत का संविधान सांसद में सादर किया। इसी दरम्यान वे कोलंबो में आयोजित 'जागतिक बौद्ध परिषद' में भारत के प्रतिनीधि के रूप में गए थे। 1952 में डॉ अम्बेडकर को कोलंबिया विश्वविद्यालय की ओर से एल. एल. डी. कानून की सर्वोच्च उपाधि दी गयी। 1953 में उन्होंने औरंगाबाद में 'सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ कॉमर्स अँड इकॉनॉमिक्स' की स्थापना की। 1954 में रंगून की 'जागतिक बौद्ध परिषद' में भारत के प्रतिनीधि के रूप में शामिल थे। इसके परिणाम स्वरूप डॉ. अम्बेडकर ने भारत में 'भारतीय बौद्ध महासभा' की स्थापना की। 1956 में मुंबई में 'सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ लॉ' की स्थापना की। इसी वर्ष मुंबई से आरक्षित उमेदवार के रूप में लोकसभा चुनाव लड़ा था। 14 अक्तुबर 1956 में उन्होंने नागपूर में सामुदायिक रूप में बौद्ध धम्म की दीक्षा ली थी, इस प्रकार धर्मपरिवर्तन कर उन्होंने हिन्दू धर्म को त्याग दिया था। 1956 में 'काटमांडु' की 'जागतिक बौद्ध परिषद' में भी शामिल थे और अंत में 6 दिसंबर 1956 को उनका महापरिनिर्वाण हुआ।

4.2. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक कार्य

डॉ. अम्बेडकर के जीवन की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर विचार किया जाना चाहिए । इन घटनाओं की विस्तृत जानकारी पाने के लिए उनके लेखन का अध्ययन जरूरी है । परंतु उनके सामाजिक कार्यों को मोटे तौर पर देखा जा सकता है जो इस प्रकार है-

4.2.1. महाड की ऐतिहासिक क्रांति

महाड की ऐतिहासिक क्रांति डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक कार्यों में से प्रथम तथा बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है । यह क्रांति अस्पृश्यों में चेतना जागृत करने में प्रथम कदम था जो सफल भी रहा । अस्पृश्यों की समस्याँ उठाने वाली सभा 'बहिष्कृत हितकरणी सभा' को निर्माण किया गया था जो डॉ. अम्बेडकर की कार्यकारी अध्यक्षता में मुंबई में 20 जुलाई 1924 में स्थापिथ हुई थी । सर चिमनलाल सेटवाड इस संस्था के अध्यक्ष थे । इस सभा की एक मिटिंग में रावसाहेब सिताराम बोले ने डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार मुंबई विधिमंडल में पानी की समस्या जैसे सार्वजनिक तालाब, सार्वजनिक कुएँ आदि स्थानों पर अस्पृश्यों को पानी लेने से रोका न जाए, मुंबई विधि मंडल में यह प्रस्ताव पास किया गया था । उसके बाद 20 मार्च 1927 को यह निर्णय लिया गया कि महाड के चवदार तालाब पर जाकर पानी पिना चाहिए । 20 मार्च 1927 को महाड में हजारों की संख्या में लोग मौजूद थे जिनमें स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चें सभी थे । एक प्रकार से अस्पृश्यों की बहुत बड़ी सभा थी । इस सभा में डॉ. अम्बेडकर अस्पृश्यों के अधिकारों को समझाते हुए, शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की सीख दे रहे थे । वे अपने भाषण के माध्यम से अस्पृश्यों में चेतना जागृत कर रहे

थे जिसमें वे सफल भी रहे । इस घटना के बाद संपूर्ण देश में सामाजिक न्याय के लिए आंदोलन किए जा रहे थे । महाड क्रांति के बाद डॉ. अम्बेडकर के मन में मनुस्मृति दहन की कल्पना जगी और उन्होंने यह निर्णय लिया की इसे जलाकर धार्मिक आंदोलन किया जाना चाहिए ।

4.2.2. मनुस्मृति दहन

महाड चवदार तालाब के आंदोलन के बाद अस्पृश्यों तथा हिन्दुओं के बीच दंगे हुए थे और जेल भरो आंदोलन का उदय हो चुका था, जिसके फलस्वरुप 25 दिसंबर 1927 को पूनः भारी संख्या में अस्पृश्य समाज महाड में एकत्रित हुआ था । महाड का पानी सार्वजनिक होना चाहिए इस लिए कलम 144 के नियमों का उलघन करने का निर्णय तक लिया गया था । इस प्रकार से सारा अस्पृश्य समाज क्रोध में एकत्रित हुआ था और इसी दिन 25 दिसंबर 1927 की रात 9 बजे 'मनुस्मृति दहन' का प्रस्ताव रखा गया । पानी भरने का अधिकार, मंदिरों में अस्पृश्यों का प्रवेश, समान अधिकार आदि के प्रस्ताव पास किए गए थे ।

मनुस्मृति दहन के लिए खुली जगह निश्चित की गयी, एक गड्ढा बनाकर उसमें लकडियाँ भर दी गयी और अस्पृश्यों के हाथों मनुस्मृति की प्रति जलाई गयी । इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था "हमने जिस मनुस्मृति का अध्ययन किया है उससे हमें यह ज्ञात हुआ कि इसमें शूद्रों की निंदा, शूद्रों पर कलंक, शूद्रों के प्रति समाज में अनादर श्लोक है । साथ ही उसमें मानवता के प्रति सम्मान नहीं है बल्कि असमानता फैलाई गयी है, यह दिखाने के लिए ही हम आज मनुस्मृति को होली की तरह जला रहे हैं ।"[1]

4.2.3. कालाराम मंदिर प्रवेश

नाशिक के कालाराम मंदिर में अस्पृश्य जातियों को प्रवेश दिया जाना चाहिए इसलिए दि. 2 मार्च 1930 को दोपहर के समय अस्पृश्यों की एक सभा आयोजित की गयी थी । लोगों की भीड़ उमड़ रही थी । परंतु मदिंर का द्वार बंद था और पुलिस का पहरा लगा हुआ था । कालाराम मंदिर प्रवेश का यह प्रसंग 2 मार्च 1930 को आरंभ हुआ था जिसके बाद वहाँ पर अनेक सभाएँ ली गयी, परिषद, चर्चाएँ, साथ ही हिन्दू और अस्पृश्यों के बीच समझौते हुए और झगड़े भी परंतु अस्पृश्यों को मंदिर में प्रवेश नहीं मिला । आदि पर विचार रखे गए । इसके विपरित यह विषय 31 अक्तुबर 1935 के दिर्घकाल तक चलता रहा लेकिन कांग्रेस वालों ने और हिन्दूओं ने इस मंदिर में प्रवेश करने ही नहीं दिया ।

4.2.4. पुणे करार

अस्पृश्यों का एक स्वतंत्र मतदार संघ होना चाहिए और अस्पृश्यों द्वारा ही एक प्रतिनीधि का चुनाव होना चाहिए इस तरह की माँग डॉ. अम्बेडकर ने ब्रिटिश सरकार से की थी जिस पर कांग्रेसियों का विरोध होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने विलंब किया था लेकिन डॉ. अम्बेडकर भी पीछे नहीं हटे वे भी जिद्द पर उतर आएँ थे । तत्कालीन ब्रिटिश पंतप्रधान रँम्से मँकडोनल्ड ने 'कॉम्यूम अवार्ड' की घोषणा कर अस्पृश्यों को स्वतंत्र चुनाव की मान्यता दे दी थी जिसके विरुद्ध महात्मा गाँधी जी येरवडा जेल में उपोषण पर बैठ गए थे और डॉ. अम्बेडकर भी अपनी जिद्द पर डटे रहें । यह वैचारिक संघर्ष चरम सीमा तक पहँच रहा था । गाँधी जी के प्राण बचाने के लिए डॉ. अम्बेडकर पर पूरा देश दबाव डालने लगा था । एक तरह से सारे देश में ही चिंता का विषय बन

गया था । अंततः डॉ. अम्बेडकर को आरक्षित चुनाव का पर्याय ही स्वीकारना पड़ा । इस तरह से पुणे करार कर गाँधी जी ने बाजी मार ली ।

4.2.5. स्वातंत्र मजदूर पार्टी

1935 के राज्य सुधारणा अधिनियम के अनुसार भारत में चुनाव होनेवाले थे । इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने 1 अगस्त 1936 को एक राजकीय पार्टि का स्थापना की थी जिसका नाम था 'स्वतंत्र मजदूर पार्टी' । यह पार्टी सिर्फ भारत के श्रमिक अस्पृश्य समाज की ही होगी इस तरह की घोषणा की गयी थी । इस पार्टी की भूमिका यही थी कि जिसमें लोकतंत्र, नागरिक अधिकार, मजदूरों को योग्य मूल्य, भूमिहीन गरीब किसानों को जमीन मिलें । इस तरह से इसका घोषणा पत्र तैयार किया गया था । तत्कालीन चुनाव में आरक्षित 15 सिटों में से 13 सिटें इस पार्टी की जीत कर आई थी । 1941 में इस पार्टी ने बिना किसी घोषना के विजय प्राप्त किया था । उस समय डॉ. अम्बेडकर ब्रिटिश गव्हर्नमेंट में मजदूर मंत्री थे ।

4.2.6. शेड्यूल्ड कॉस्ट फेडरेशन

23 मार्च 1942 में डॉ. अम्बेडकर ने नागपूर में भारतीय अस्पृश्यों की आखिल भारतीय स्तर पर एक परिषद ली थी । इस परिषद में भारत के सभी प्रांतों से अस्पृश्य समाज एकत्रित रूप से हजर हो गया था, इस परिषद में यह तय किया गया था कि अखिल भारतीय स्तर पर अस्पृश्यों को अपने लिए एक पार्टी का निर्माण किया जाना चाहिए । तदनुसार 18 जुलाई 1942 में 'शेडूल्ड कॉस्ट फेडरेशन' नामक एक नए पार्टी की स्थापना हुई थी । आगे चलकर यह पार्टी अस्पृश्यों तक ही सीमित रही ।

4.2.7. रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया

शेड्यूल्ड कॉस्ट फेडरेशन पार्टी के कार्य राजनीतिक दृष्टि से सिर्फ अस्पृश्यों तक ही मर्यादित है ऐसी चर्चा होने लगी थी । जिसके कारण 1952 के चुनाव में ‘शेड्यूल्ड कॉस्ट फेडरेशन’ को बूरी तरह से हार झेलनी पड़ी थी साथ ही ‘संयुक्त मतदार संघ’ की भी हार हुई थी । उसके बाद शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन को हिन्दू मतदार स्वीकारेंगे नहीं इस बात के संकेत मिल चुके थे, तब समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्ता के सिध्दांतों के अनुसार रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना का विचार किया गया था । परंतु धर्मांतरण की व्यस्तता के चलते डॉ. अम्बेडकर का ध्यान विशेष रूप से ‘रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया’ की तरफ़ नहीं रहा था जिसके कारण उसका परिणाम कुछ अलग ही रहा ।

4.2.8. धर्मांतरण

धर्मांतरण डॉ. अम्बेडकर के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना रही है, डॉ. अम्बेडकर ने अपने लाखों अस्पृश्य अनुयायियों के साथ बौद्ध धम्म की दीक्षा लेकर धर्मातरण करके एक ऐतिहासिक क्रांति को जन्म दिया था । येवले नामक गाँव की सभा में उन्होंने यह घोषण की थी कि मैं हिन्दू धर्म में पैदा जरूर हुआ हूँ, लेकिन हिन्दू के रूप में मरूँगा नहीं । उन्होंने अपना यह वचन 14 अक्तुबर 1956 में नागपूर की दीक्षाभूमि से बौद्ध धम्म की दीक्षा लेकर पूर्ण किया था । येवले की घोषणा के 21 साल बाद डॉ. अम्बेडकर को यह सार्थकता मिली थी । इस प्रकार से उन्होंने हिन्दू धर्म का त्याग कर बौद्ध धम्म की दीक्षा ग्रहण की थी ।

इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य रहे है जैसे सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन रहे हैं। इन आंदोलनों से मातंग समाज अलिप्त रहा है। जिसके चलते उसके विकास की दिशा भी दिशाहीन हो गयी थी। इसलिए इस समाज को आज भी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि का वैचारिक प्रबोधन नहीं मिला है यह खेद की बात है। जबकि इनके विकास की दशा और दिशा केवल अम्बेडकरवाद ही है।

4.2. डॉ. अम्बेडकर कालीन मातंग समाज

परंपरा के अनुसार हीन समझे जाने वाले काम महार समाज किया करता था। लेकिन डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्त्व से महार समाज जागृत हो गया। जिन हीन कामों को महार ने त्याग दिया था वह सारे काम मातंग समाज करने लगा था। डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण अस्पृश्य समाज के नेता थे, परंतु महार जाति के अलावा मातंग, चमार, भंगी तथा अन्य बहिष्कृत जातियों के लोग डॉ. अम्बेडकर के आंदोलनों में सक्रीय नहीं थे। महारोत्तर जातियों में यह भावना फैल चुकी थी कि डॉ. अम्बेडकर महारों के ही नेता है। वास्तव में डॉ. अम्बेडकर ने उस समाज को जागृत करने का बीड़ा उठाया था जो भारतीय समाज व्यवस्था में शोषित था उसमें कोई एक जाति नहीं थी वे संपूर्ण बहिष्कृत समाज में चेतना जागृत करने का कार्य कर रहे थे। उनका संपूर्ण जीवन अस्पृश्य समाज को अधिकार दिलाने में चला गया। इधर उनके अपने लोग ही उन्हें साथ देने से मना कर रहे थे। डॉ. अम्बेडकर को बार बार इस बात की जानकारी दी जाती रही कि महार लोग मातंग समाज को हीन मानते है। इसका एक उदाहरण डॉ. माधव बसवंते देते हैं - "डॉ. अम्बेडकर का नेतृत्त्व केवल महार जाति तक ही सीमित नहीं था। भारतीय अस्पृश्य जातियों का

सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक रूप से शोषण होता था । इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय समाज व्यवस्था में फैली जाति व्यवस्था दूर करना, अस्पृश्य समाज का जीवन पशु से बत्तर था, उन्हें मनुष्य की तरह जीने के अधिकार दिलाकर, सम्मान जनक जीवन जीने के मार्गदर्शन देना ही डॉ. अम्बेडकर के जीवित कार्य रहे हैं । लेकिन इस सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में डॉ. अम्बेडकर का अनेक जगहों पर विरोध होता रहा और वे अकेले ही इसका सामना करते रहें । डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्त्व को लेकर मातंग समाज के मन में अपने पन की भावना कभी नहीं जन्मी ना ही उन्हें डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्त्व पर विश्वास था । डॉ. अम्बेडकर हर हाल में यह चाहते थे कि महार और मातंग समाज में वैर की भावना ना रहे, उन्नमें जो मतभेद है वे दूर होने चाहिए । यही डॉ. अम्बेडकर की चिंता रहती थी कि यह दोनों जातियाँ एक हो जाए । लेकिन इन दोनों जातियों ने डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक कार्यों के मर्म को जानने की कोशिश ही नहीं की और ना ही समाज में एकता लाने की कोशिश की । महार कार्यकर्ताओं ने मातंग समाज के लोगों को संधी नहीं दी ऐसा मत मातंग समाज के लोगों का रहा है । साथ ही मातंग समाज ने भी महारों से अपना संपर्क रखने की कोशिश नहीं की । इसी कारण इन दोनों जातियों में एकता की बजाय दुरियाँ बढ़ती गयी । सभाओं, परिषदों में सहभागी होने के लिए महार जाति के लोग मातंग समाज को आमंत्रित करते थे, परंतु मातंग समाज उनके आमंत्रण को स्वीकार नहीं करता था । इसी कारण मातंग समाज डॉ. अम्बेडकर के आंदोलनों से दूर ही रहा है ।"[2]

डॉ. माधव बसवंते अपनी किताब 'मातंग समाज इतिहास आणि वस्तव' में लिखते हैं कि 'मातंग समाज भले डॉ. अम्बेडकर के आंदोलनों में शामिल न

हुआ हो फिर भी डॉ. अम्बेडकर के मन में उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रहता था। मातंग समाज के प्रति उनकी व्यापक दृष्टि रही है। इसीलिए डॉ. अम्बेडकर उन्हें बार बार मार्गदर्शन देते रहें। उनका कहना था कि मातंग समाज को आंदोलन में शामिल करो, आगे वे कहते है कि महार, मातंग, चमार तथा भंगी आदि जातियों का सहभोज करने की बात वे करते थे। डॉ. अम्बेडकर कहते है महर्षि वि. रा. शिंदे, श्री. म. माटे और कांग्रेस के बहकावे में आकर मातंग समाज के कार्यकर्ता मेरा विरोध करते हैं साथ ही मेरे नेतृत्त्व को अस्वीकार करते हैं।'

डॉ. अम्बेडकर महार और मातंग जाति के लोगों को समझाते रहें इन दोनों में एकता बनी रहें इसलिए हर वक्त महार समाज के लोगों को समझाने का कार्य करते थे लेकिन उन्होंने कभी भी मातंग समाज को महार समाज से अलग रूप में देखने की कोशिश ही नहीं की "सन् 1927 में पुणे में एक अस्पृश्य सभा का आयोजन किया गया था। इस जाहीर सभा में डॉ. अम्बेडकर ने भाऊक होकर भाषण दिया था। साथ ही उन लोगों की भी खिंचाई की थी जो आंदोलनों में समस्या उत्पन्न कर रहे थे उनमें महार जाति के वे लोग थे जो मातंग समाज को आदोंलनों में सहभागी होने से रोक रहे थें। इसी सभा में वे यह भी कहते है कि 'मैं खूद रोटि-बेटी के व्यवहार के लिए तैयार हूँ। फिर महार और मातंग इन दोनों के बीच ऐसी स्थितियाँ क्यों उत्पन्न हो रही है ?' डॉ. अम्बेडकर ने दोनों जातियों से यह सवाल किया था। साथ ही यह भी बताया था कि किस प्रकार उन्होंने मातंग समाज के एक बच्चें का अपने पुत्र की तरह पालन-पोषण किया था। इसी प्रकार मुंबई के मातंग परिषद का भाषण भी महत्त्वपूर्ण है। इस सभा में भी डॉ. अम्बेडकर ने महार और मातंग दोनों में

एकता का आवाहन किया था । डॉ. अम्बेडकर इस सभा में कहते है कि अगर महार लोग तुम्हारे हाथ का खाना नहीं खाते हैं तो तुम लोग भी उनके हाथ का खाना न खाएँ । क्योंकि स्वाभिमान सभी को रहता है और होना भी चाहिए । इसलिए मैं किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानता हूँ । महार जाति ने भी भेदभाव करना छोड़ दिया है ।"[3]

डॉ. अम्बेडकर के उत्कृष्ट मार्गदर्शन के बावजूद भी महार और मातंग समाज की दुरियाँ बनी ही रही है । मातंग समाज के कुछ लोगों ने डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्त्व को स्वीकार कर लिया था तो कुछ लोगों ने यह कहकर अस्वीकार किया था कि वे सिर्फ महारों का नेतृत्त्व करते है । ऐसे में मातंग समाज का युवा वर्ग अपने समाज की चिंता व्यक्त कर रहा था । जिनमें देविदास कांबळे प्रमुख रहे है । उन्होंने 30 मई 1941 में एक पत्र लिखकर मातंग समाज की वास्तविकता बताने की कोशिश की था । वह ऐतिहासिक पत्र इस प्रकार है-

डॉ. अम्बेडकर को दे. ना. कांबळे का ऐतिहासिक पत्रः-

पाथ्रीः 30/05/1941

आदरनीय डॉ. अम्बेडकर को देविदास पाथ्रीकर का सादर प्रणाम ।

वि. वि. पत्र लिखने का कारण यह है कि मैं कई दिनों से आपको पत्र लिखना चाह रहा था । कुछ बातें आपको बता दूँ तथा ऐसे कुछ मतभेद हैं जिसे आपके सामने रखूँ । इस बार हिम्मत करके लिख रहा हूँ । बहुत चिंताएँ मन में घर कर बैठी है उनें दूर करने की कोशिश में पत्र लिख रहा हूँ । इस आशा के साथ लिख रहा हूँ कि आप इसे पढ़कर पत्र का जवाब देंगे । अगर जवाब नहीं मिला तो मैं उसी प्रकार विचार करूँगा जिस प्रकार आप को गाँधी जी ने पत्र

का जवाब न देने पर किया था। आप ने गाँधी जी को 17 पन्नों का पत्र भेजा था जिसका जवाब गाँधी जी नहीं दे सके।

मैं निजाम शासन के मराठवाड़ा क्षेत्र का पहला ऐसा विद्यार्थी हूँ जो मातंग समाज में शिक्षा ग्रहण कर चुका हूँ। शिक्षित होने के कारण मेरे समाज की जिम्मेदारी मेरे कंधों पर है। मैं आपको यह पत्र सामान्य विद्यार्थी के रूप में नहीं लिख रहा हूँ बल्कि निजाम शासन के अंतर्गत आने वाले मातंग समाज के भावी नेता के रूप में लिख रहा हूँ। इसलिए यह आशा करता हूँ कि आप मेरे पत्र का जवाब लिखने में संकोच नहीं करेंगे।

मातंग और महार के बीच वैर, तिरस्कार, द्वेष की भावना के कारण इस प्रकार है-

1. महार समाज मातंग समाज को हीन दृष्टि से देखता है।

2. मातंग समाज जंगली शूअर को पवित्र मानता है और उसकी शिकार करता है, परंतु महार समाज मुसलमानों की तुलना में अधिक घृणा करते हुए शुअरों को अपवित्र मानता है। जिसके कारण द्विजातियों में झगड़े की भावना उत्पन्न होती है।

3. मातंग समाज में हिन्दू परंपराएँ प्रचलित है जिसमें बारात निकालने की प्रथा है महार समाज इसका विरोध करता है तथा पंचतंत्रों की थाली में थुकता है, जिसके कारण हाता-पाई होती है।

4. अगर मातंग लोग समाज में सुधार लाने के लिए सामाजिक कार्य करना चाहते हैं तो महार समाज उसका विरोध करता है।

5. लोक संख्या की दृष्टि से भी महारों की आबादी अधिक है और मातंग समाज की कम है । यदि लोग उनकी इच्छा के नुसार रहते है तो वे उन्हें बेवजह तकलीफ देते हैं । वे हिन्दुओं का अनुकरण करते हुए मातंगों को गुलाम बनाने की कोशिश करते हैं ।

6. अस्पृश्य समाज में शिक्षा की दृष्टि से महारों की संख्या अधिक है । वे अन्य जातियों को जागृत होने से रोकने का प्रयास करते हैं । इसका प्रमाण यह है कि देश में जितने भी बोर्डिंग स्कूल है उनमें महार समाज के विद्यार्थियों की संख्या अधिक है । राजनीति में भी महारों की संख्या अधिक है नाम मात्र के मातंग समाज के लोग सदस्य बने हुए है जो किसी काम के नहीं है ।

7. आपके प्रति महार समाज में इस प्रकार का गैर समज निर्माण हुआ है कि आप सिर्फ महार समाज के ही नेता है और आप भी महार होने के नाते महार समाज के कल्याण की चिंता करते हैं ऐसा भी गैर समज लोगों में है । इसीलिए मध्यप्रांत की परिषद में यह निश्चित किया गया है कि अम्बेडकर सिर्फ महारों के नेता है, मातंग समाज के नहीं । आपके समक्ष जो प्रथमतः आता है आप उसे न्याय दिलाते है । जिसमें महार समाज ज्यादातर आपके पास आता है और आप उनका पक्ष लेते है जिससे अन्य जातियों को लगता है कि आप पक्षपाति है ।

आप अस्पृश्य समाज के चिंतक है इसलिए आपका यह कर्तव्य बनता है कि इन दोनों जातियों में जो वैरभाव पनप रहा है उसे दूर करने का प्रयास करें । यह करने के लिए निम्नलिखित कार्य आवश्यक है –

1. महार समाज मातंग समाज को समान रूप से देखने का प्रयास कर आपस में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्ता बनाए रखें ।

2. मातंग समाज के प्रतिनीधि को संधी मिलनी चाहिए।
3. मातंग समाज के किसी भी व्यक्ति के विवाह की बारात नहीं रोकी जानी चाहिए।
4. महार समाज को मातंगों की वतनदारी में से कुछ भी नहीं लेना चाहिए।
5. आप जिस प्रकार महारों के प्रति चिंता व्यक्त करते है उसी प्रकार या उससे भी अधिक मातंगों के प्रति चिंता बनाए रखेंगे।
6. शुअरों को लेकर मातंग समाज के प्रति जो तिरस्कार की भावना बनी हुई है वह नष्ट होनी चाहिए।
7. महार समाज के लोग अज्ञान के कारण आपके प्रति श्रद्धा रखते हैं, आपके प्रतिमा की पूजा करने का प्रयास करते हैं यह नहीं होना चाहिए। यह भी कहते हैं कि आप जैसा कोई विद्वान नहीं है और ना ही होगा।

इस प्रकार की हमारी शर्ते मानकर यदि आप आखिल भारतीय अस्पृश्यों का नेतृत्त्व करना चाहते हैं तो मैं आप का शिष्य बनने के लिए तैयार हूँ। मैं आप का अनुकरण करता रहूँगा। आप के जाने के बाद भी आप के आंदोलनों का नेतृत्त्व करता रहूँगा।

इन सारी बातों पर विचार कर आप अपने हस्ताक्षर के साथ मेरे पत्र का उत्तर दें। मैं 15 दिनों तक इंतजार करूँगा। एक महीने बाद हैदराबाद दलित वर्ग की परिषद हैदराबादी अम्बेडकर बी. एस. व्यंकटराव की अध्यक्षता में होने वाली है। इस परिषद में मैं मातंग समाज के प्रतिनीधि के रूप में भाग लेने वाला हूँ। इस परिषद से या मेरे भाग लेने से अस्पृश्य समाज में विभाजन हो सकता है। आप भी इस बात पर विचार करें।[4]

धन्यवाद...

-आपका कृपाभिलाषी

देविदास नामदेवराव कांबळे

ता. पाथ्री, मैहलामाळी जि. परभणी (निजामस्टेट)

डॉ. अम्बेडकर ने देविदास कांबळे के पत्र का विस्तार से उत्तर दिया था जो इस प्रकार है –

‘रा. रा. देविदास नामदेवराव कांबळे...’

आपको पत्र लिखते समय मैं संकोच में पड़ गया था कि पत्र की शुरूआत कहाँ से करूँ। नमस्कार लिखूँ तो हम दोनों भी ब्राह्मण नहीं हैं, जोहार कहूँ तो आप मातंग, फरमान कहूँगा तो मैं महार यदि आशिर्वाद कहूँगा तो मातंगों को आशिर्वाद कहने वाला महार कबसे श्रेष्ट बन गया है। इस तरह के सवाल उठाएँ जाएँगे इसलिए जगह छोड़कर आप के पत्र का उत्तर दे रहा हूँ।

महार समाज तथा महार नेता मातंग जाति पर अन्याय कर रहे हैं ऐसा आप का मत है और आपने आपके मन की व्यथा व्यक्त की है। इसे दूर करने के लिए मैंने पत्र का उत्तर देने का निर्णय लिया। आप ने मुझे ‘परमपूज्य’ कहा है इसके लिए मैं आपका ऋणी रहूँगा। महार जाति के लोग तो हर वक्त कहते रहते हैं परंतु आपने परमपूज्य बाबासाहब मेरे प्रति आपका प्रेम कितना है यह कहा नहीं जा सकता।

मेरे पत्र का जवाब गांधी जी ने नहीं दिया इसलिए मैं गाँधी जी का तिरस्कार करता हूँ ऐसा आपको किसने कहा है यह मैं नहीं जानता। यदि मैं

गाँधी जी का तिरस्कार करता हूँ तो उसके अनेक कारण हैं ना कि उस पत्र का जवाब न देने से । आपकी तरह ही मुझे अनेक लोग पत्र भेजते हैं परंतु यह जरूरी नहीं कि मैं हर एक को जवाब दूँ । इस बात का लोगों को खेद हैं । मैं अपने कामों में व्यस्त रहता हूँ । जिसके लिए मुझे पत्र लिखने वाले मेरे मित्र तिरस्कार करने की बजाय मुझे क्षमा कर देते हैं । यह स्वभाविक है कि यदि मैं आपको पत्र का जवाब ना दूँ तो आप मेरा तिरस्कार करेंगे । आपकी योग्यता मैं सिद्ध नहीं कर सकता लेकिन आपने कहा कि आप निजाम शासन के मराठवाडा प्रांत के मातंग समाज में एकमात्र शिक्षित विद्यार्थी है । आप ने यह भी कहा है कि मातंग समाज के कल्याण की जिम्मेदारी आपके सर पर है । इसलिए मैं आपको केवल विद्यार्थी समझकर पत्र नहीं लिख रहा हूँ बल्कि निजाम स्टेट के मातंग समाज के भावी नेता को पत्र लिख रहा हूँ । जिस प्रकार ज्यू लोगों के लिए मोझेस था उसी प्रकार मातंग समाज के लिए आप है । जिसका प्रमाण आपकी भाषा है ऐसे में आपके पत्र का उत्तर कौन नहीं दे सकता है ? यदि मेरे प्रति आपके मन में तिरस्कार की भावना उत्पन्न हो जाती है तो संपूर्ण मातंग समाज मेरा तिरस्कार करने लगेगा ।

प्रथमतः दो बातों के लिए आपका आभारी हूँ । पहली बात यह है कि महार लोग मुझे इश्वर का अवतार मानकर मुझे पुजते हैं । दूसरी बात कि मेरे अलावा दूसरा कोई ज्ञानी नहीं हो सकता । इसका आपने विरोध किया मुझे अच्छा लगा । इस तरह की अंदश्रद्धा और सादगी का अनुकरण मातंग समाज नहीं करेगा ऐसा आपने कहा है । आशा करता हूँ कि आप इसे पूर्ण रूप से निभाएँगे । विभूति पूजा मनुष्य की महत्ता को नष्ट कर देती है । मैं समता को मानने वाला व्यक्ति हूँ, भगवान नहीं, महात्मा नहीं हूँ यह समझाते समझाते

थक चुका हूँ फिर भी उन लोगों पर इस बात का कोई असर नहीं होता है। आप मातंग समाज को ही नहीं बल्कि महार समाज को भी इससे दूर रखेंगे ऐसी आशा करता हूँ।

दूसरी बात यह है कि मेरे जाने के बाद क्या होगा यह चिंता कोई नहीं जताता है लेकिन आप ने कहा कि मेरे जान के बाद आप अस्पृश्य समाज का नेतृत्त्व करेंगे। अब तक महार समाज के युवाओं ने भी इस तरह की इच्छा व्यक्त नहीं की है। इसके लिए भी मैं आपका आभार व्यक्त करता हूँ। अब मैं आपके आरोपों के उत्तर देने का प्रयत्न करता हूँ। दो प्रकार के आरोप आपने लगाए हैं एक मुझ पर व्यक्तिगत आरोप है तो दूसरा महार जाति पर लागु होने वाले आरोप है।

मुझ पर प्रत्यक्ष रूप से कौन सा आरोप है यह मेरी समझ में नहीं आता है। मैं सिर्फ महारों का ही नेता हूँ ऐसा आरोप मध्यप्रांत के मातंग लोगों ने लगाया है जिसकी जानकारी मुझे वर्तमान पत्रों के जरिए मिली है। इसे मैंने विस्तार से समझाने की कोशिश की है जो 4 जनवरी 1941 के 'जनता' के अंक में लिखा है उसे आप जरूर पढ़े। मैं महारों का ही नेता हूँ ऐसा कहना कांग्रेस का है जिसका अनुकरण मातंग समाज कर रहा है। ऐसे अनेक स्वार्थी लोग महार और मातंग समाज में देखने को मिलते हैं जो पैसों के लिए कुछ भी करते हैं। जब 'पुणे करार' हुआ था तब कांग्रेस ने यह मान्य किया था कि मैं भारत के अस्पृश्यों का नेता हूँ। उसके बाद मुझे सिर्फ मुंबई के अस्पृश्यों का ही नेता समझने लगे। उसके बाद सिर्फ माहरों का ही नेता है ऐसा कहा जाने लगा और मुझे यह विश्वास है कि कुछ दिनों बाद मैं सिर्फ कोकण के ही महारों का नेता बन जाऊँगा, उसके बाद दापोली तालुके के महारों का। इस तरह का प्रचार कांग्रेस

करेगी वह भी स्वार्थी महार लोगों को अपने जाल में फँसाकर ही करेगी ऐसा कहना उचित होगा । अगर कोई भी कांग्रेस का विरोध करके देखे तब वह कांग्रेस का असली चेहरा जान जाएगा । 'चमार' जाति का कोई व्यक्ति कांग्रेस का विरोध करता है तब समझ में आएगा कि कांग्रेस इसे लेकर किस प्रकार की राजनीति करती है । वह 'चमार' को भी अन्य जाति का है ऐसा कहकर उसके प्रति तिरस्कार की भावना लोगों में भर देंगे । ऐसा वे हर जाति को लेकर करते आएँ हैं । मेरी जानकारी में मातंगों की 12 उपजातियाँ हैं । यदि मातंग समाज का कोई व्यक्ति कांग्रेस का विरोध करता है तो उसका भी यह हाल होगा । वह किसी भी जाति का क्यों ना हो कांग्रेस उसे उसी जाति का नेता कहकर पक्षपात कराती रहेगी । इस वास्तविकता को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ इसलिए मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि मैं सिर्फ महारों का नेता हूँ ऐसा समझकर कोई मेरा साथ ना दे इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है । वैसे भी महारों की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनिय है ऐसी रिपोर्ट हरिजन सेवक संघ ने दी है । उनकी स्थिति में सुधार लाने की संधी भी अगर मुझे मिलती है यही मेरे लिए काफी है । वे आगे कहते है कि 'नाम के वास्ते और काम के वास्ते' ऐसे दो प्रकार के नेता लोग देखने को मिलते हैं । मैं नाम के वास्ते वालों में से नहीं हूँ काम के वास्ते वालों में से हूँ ।

मैं नेता हूँ समाजसुधारक नहीं । जिसमें मार्ग दिखाना, लोकमत तैयार करना ही मेरा काम है । ऐसा करते हुए मैंने जातिगत भेदभाव किया है ऐसा तो मेरे दुश्मन भी नहीं कहेंगे । मैं अस्पृश्य जाति के हर घर पर खाना खा चुका हूँ । अस्पृश्य जातियों में सार्वजनिक भोज होने चाहिए, अंतर्जातीय विवाह होने चाहिए ऐसा संदेश मैंने ही दिया था । भले ही विवाह नहीं होते होंगे परंतु

सहभोज होते हैं जिसमें केवल चमार लोग ही नहीं मानते हैं बाकी अस्पृश्य जातियाँ सहभोज के लिए तैयार रहती है । जिनमें महार, मातंग, भंगी आदि जातिया आती है । यह मेरे ही मार्गदर्शन का परिणाम है ऐसा मैं निडर होकर कह सकता हूँ । मेरी ओर से सिर्फ महारों को ही लाभ हुआ हो ऐसा हो ही नहीं सकता । मैंने जिनके लिए संघर्ष किया है उसमें महारोत्तर जातियों को लाभ हुआ है यह मैं सिद्ध कर सकता हूँ । रही बोर्डिगों की बात तो मैंने जिन बोर्डिगो या वस्तीगृहों की स्थापना की है उसमें जाति-प्रथा को जगह नहीं है । मेरे अलावा जिन महार लोगों ने बोर्डिंग की स्थापना की उसमें भी जाति-प्रथा को जगह नहीं है ।

'स्वतंत्र मजदूर पार्टि' को भी महारों की ही पार्टी कहा जाता है लेकिन यह आरोप झुटा है । इसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है । इल पार्टी में जाति को नहीं गुण को देखकर पार्टी का सदस्य बनाया जाता है । राजनीति कोई सार्वजनिक भोज नहीं है । इसमें यह कदापि नहीं होता है कि मातंग समाज का कोई नहीं है इसलिए मातंग समाज के व्यक्ति को लिया जाए, या भंगी नहीं है कहकर भंगी को ले लिया जाए । इस तरह के नियमों को यह पार्टी नहीं मानती है यही नहीं कोई भी राजनीतिक पार्टी इन नियमों को नहीं मानती है । स्वतंत्र मजदूर पार्टी जाति, शिक्षा तथा शील को देखकर सदस्य नियुक्त करती है । अस्पृश्यों की समस्याओं का दूर करने के लिए इस पार्टी की स्थापना हुई है । स्वतंत्र पार्टी भले ही महारों की क्यों न हो परंतु वह महारों के लिए ही नहीं लड़ती बल्कि संपूर्ण अस्पृश्य समाज के लिए न्याय माँगती है । यदि कोई पार्टी भेदभाव करती है तो वह कांग्रेस है, महार जाति के लोग नहीं । आपने लिखा कि महार लोग मातंगों पर जूल्म करते है, ऐसा है नहीं हमारे यहाँ उसके

विपरित होता है । चमार, मातंग जातियाँ यदि कुछ झगड़े करने की कोशिश करते हैं तो फिर भी महार खामोश रहते हैं । क्योंकि उन्हें यह पता है कि मैं उनका पक्ष कभी नहीं लुँगा । वे यह भी जानते हैं कि अपनी संख्या अधिक है तब हमें ही सहना होगा । आपके वहाँ इसके विपरित स्थिति है इसका मुझे खेद है । आप इसके लिए न्याय भी मांग सकते है और इसके लिए मैं भी आपको पूर्ण रूप से मदद करूँगा ।

अंततः विभाजन पर बात करूँगा आपने कहा कि यदि आपको अच्छा ना लगे या मैं पत्र का उत्तर ना दूँ तो आप किसी अन्य के साथ चले जाएँगे । यदि आप चाहते है तो जा सकते हो मेरा कोई विरोध नहीं है । लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि जिस रास्ते पर आप लोग जाना चाहते हो वह किस वाचारधारा का है यह जानकर ही उसे स्वीकार करना चाहिए । यदि मातंग समाज की उन्नति या विकास होता है और उनका स्वाभिमान बढ़ाना उस पार्टी का उद्देश्य है तो वह पार्टी सही होगी । लेकिन महारों का साथ छोड़कर किसी सनातनी हिन्दू या कांग्रेस की गुलामी करना ही इस पार्टी का उद्देश्य रहेगा तो उसमें मातंग समाज के चुने हुए लोगों का ही विकास हो सकता है परंतु संपूर्ण मातंग जाति का नुकसान है । इसमें कोई दोहराई नहीं है । आगे आपकी मर्जी जो मार्ग आपको सही लगे उसे आप चुन सकते हैं ।[5]

दि. 13-06-1941 आपका कृपाभिलाषी,

भीमराव रामजी अम्बेडकर (हस्ताक्षर)

डॉ. अम्बेडकर ने अपने पत्र में उन सारी बातों का जिक्र किया गया है जो मातंग समाज में उऩके प्रति या महारों के प्रति एक प्रकार का भ्रम था । महारों से नाता तोड़कर कांग्रेस या सनातनी हिन्दू धर्म के साथ जाने से मातंग समाज

को गुलामी करनी पड़ेगी या मातंग समाज के कुछ लोगों का फायदा जरूर होगा परंतु संपूर्ण मातंग जाति का स्वाभिमान नष्ट हो जाएगा। इस प्रकार की दूरदृष्टि डॉ. अम्बेडकर के पत्र में दिखाई देती है।

इस पत्र के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर ने मातंग समाज में जो तिरस्कार की भावना पनप रही थी उसे दूर करने के तर्क भी दिए है। वे लिखते हैं कि यदि आपके क्षेत्र की समाजिक स्थितियाँ हमारे स्थितियों से भिन्न है तो आप जरूर न्याय के हकदार है और इसके लिए मैं पूर्ण रूप से आपको मदद करने के लिए तैयार हूँ। परंतु हमारे यहाँ पर स्थितियाँ कुछ अलग है। यदि यहाँ पर मातंग, महार और चमारों के बीच झगड़े की भावना उत्पन्न होती है तो महार लोग खामोश रहते हैं। डॉ. अम्बेडकर इसका कारण यह बताते है कि यदि महार लोग झगड़ा करते भी है तो उन्हें यह पता है कि मैं उनका पक्ष कभी नहीं ले सकता। इससे यह पता चलता है कि मातंग समाज ने डॉ. अम्बेडकर पर जो आरोप लगाए है वे बेबुनियाद है। डॉ. अम्बेडकर समता, स्वतंत्रता तथा बंधुत्ता के पथ पर ले चलने वाले एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो स्वाभिमानी जीवन जीने का मार्गदर्शन करते है। चाहे वह किसी भी जाति का क्यों ना हो अगर वह अस्पृश्यों में गीनी जाती है तो उसके स्वाभिमान के लिए वे जीवनभर संघर्ष करते रहें हैं।

डॉ. अम्बेडकर महार और मातंग जाति की एकता के लिए परिषद लिया करते थे, उन्होंने अस्पृश्य समाज की एकता, समानता और बंधुत्ता के लिए राजनीतिक पार्टिओं का गठन भी किया परंतु उन्हें यश प्राप्त नहीं हुआ। क्योंकि महारोत्तर जातियों में उनके प्रति अविश्वास फैलाने में कांग्रेस तथा सनातनी हिन्दू धर्म का बहुत बड़ योगदान रहा है। मातंग समाज भी इन लोगों के

विचारों पर चलकर डॉ. अम्बेडकर के प्रति तिरस्कार की भावना बनाए बैठा था । डॉ. अम्बेडकर के अनेक प्रयासों के बावजूद इन दो जातियों में वैर, द्वेष, तिरस्कार की भावना नष्ट नहीं हुई है । आगे चलकर महारों ने डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार बौद्ध धर्म अपनाया और मातंगों का मानना यह था कि हम किसी भी परिस्थिति में बौद्ध धर्म नहीं अपनाएँगे ऐसा कहकर डॉ. अम्बेडकर के साथ धर्मांतरण करने से मना कर दिया था । इसीलिए इस ऐतिहासिक क्रांति में मातंग समाज अल्प रूप में इसका भागीदारी बना था ।

मातंग समाज को अम्बेडकरवाद का अर्थ ही समझ में नहीं आया । स्वाभिमान से जीना कैसे होता है यह भी उनके समझ के परे था । डॉ. अम्बेडकर का नेतृत्त्व न स्वीकारने के कारण यही रहें होंगे कि महार लोग हमें हीन समझते हैं, हमें समान रूप का दर्जा नहीं देते हैं आदि । लेकिन वे यह भूल रहे हैं कि मातंग समाज में परिवर्तन मात्र अंबेडकरवाद से ही संभव है । वे अम्बेडकरवाद का अर्थ ही गलत निकालते हैं । उनका मानना यह भी हो सकता है कि अम्बेडकरवाद में जाने का मतलब बौद्ध धर्म को अपनाना है । लेकिन ऐसा है नहीं डॉ. अम्बेडकर का नेतृत्त्व स्वीकारने से ही बौद्ध धर्म को स्वीकारना है ऐसा नहीं है । क्योंकि धर्म प्रत्येक व्यक्ति या समाज की व्यक्तिगत समस्या है । मातंग समाज पर लिखी गयी किताबों में यह बातें लिखी हुई है कि यदि मानवीय अधिकार और स्वाभिमान से जीवन जीना है तो विश्व में अम्बेडकरवाद के अलावा दूसरा पर्याय ही नहीं है । ऐसा भी नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर का विरोध केवल मातंग समाज ने ही किया है बल्कि महार जाति के कुछ पढ़े-लिखे लोगों ने भी उनका विरोध किया है । डॉ. अम्बेडकर तो कहा ही करते थे कि 'मुझे मेरे पढ़े-लिखे लोगों ने ही धोका दिया है ।' वही मातंग समाज

के अनेक लोगों ने डॉ. अम्बेडकर को साथ दिया है । मराठी लेखक चंद्रकांत वानखेडे अपनी किताब 'मातंग समाजाचे भवितव्यः वास्तव व संकल्पना' में लिखते हैं कि "जब महात्मा गाँधी जी ने सायमन कमिशन से यह शिकायत की थी कि डॉ. अम्बेडकर अस्पृश्यों के नेता नहीं है जबकि यह बात गाँधी जी को और किसी ने नहीं बल्कि महार जाति के ही गवाई नामक व्यक्ति ने कहीं थी । तब सबसे पहले सायमन कमिशन को टेलिग्राम द्वारा सूचित करने वाला व्यक्ति इथकूर मांडवे जो उस्मानाबाद के थे उन्होंने यह कहा था कि डॉ. अम्बेडकर हमारे ही नेता है ।"[6]

डॉ. अम्बेडकर केवल महारों का नेतृत्त्व करते है ऐसा कहना अस्पृश्य समाज का ही अपमान है जबकि अम्बेडकरवाद एक वैचारिक क्रांति है । मानवीय अस्मिता को उजागर करने वाली ऊर्जा है । इसलिए मातंग और महार जातियों के बीच की बनी दूरियों को नष्ट करके समता मूलक समाज की स्थापना करनी होगी जिसमें अम्बेडकरवाद बसता है ।

4.3. मातंग समाज के आंदोलनों के बदलते स्वरूप

किसी भी सामाजिक आंदोलन का आधार उस समाज की विचारधार पर निर्भर करता है जिसमें चिंतन, मनन आदि पर जोर दिया जाता है । सामाजिक अध्ययन की जरूरत होती है । यह तब संभव हो पाता है जब समाज शिक्षित होने के मार्ग पर अग्रसर रहता है । मातंग समाज में यह स्थिति उपस्थित करने के लिये अभ्यासू या पाठक वर्ग निर्माण करना जरूरी है । क्योंकि साहित्य को सामाजिक क्रांति का जनक कहा जाता है । मातंग समाज पर लिखी गयी पुस्तकों का अध्ययन होना भी जरूरी है । क्योंकि इस समाज को साहित्य की

प्रेरणा फुले, डॉ. अम्बेडकर, अण्णा भाऊ साठे तथा क्रंतिवीर लहुजी साळवे के ओजस्वी विचारों से मिलती है । इनकी प्रेरणा से उभरा हुआ मतंग समाज का साहित्य समाज में सांस्कृतिक बदलाव लाने का कार्य कर सकता है जो मातंग समाज के सामाजिक आंदोलनों की दृष्टि से पता चलता है । क्योंकि वैचारिक क्रांति से समाज में कला तथा सांस्कृतिक बदलाव लाने की मौलिक शक्ति होती है । जिसके लिए मातंग समाज में भी विचारवंत, कलावंत तथा साहित्यकार उभर कर आने से इस समाज के आंदोलनों को नई ताकत मिल जाती है जिससे समाज में सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से परिवर्तन लाया जा सकता है ।

सामाजिक, वैचारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक आंदोलनों का लाभ आज के लोकतांत्रिक राजनीति में लिया जा सकता है । क्योंकि हर पार्टी जातिगत राजनीति करने पर उतर आयी है । आज भारत के लोकतांत्रिक राजनीति में अधिपत्य देखने को मिलता है । क्योंकि सामाजिक आंदोलनों को राजनीतिक दृष्टि से ही देखा जाता है । समाज की आर्थिक स्थिति मजबूत करने का कार्य राजकारनी लोगों के हाथों में ही होता है । शैक्षणिक संस्थाएँ भी उनकी ही होती है । सरकारी क्षेत्रों में भी उनका ही बोलबाला होता है और वर्तमान में वे सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप करने लगे हैं । इसका मतलब यही हुआ कि समाज के सभी क्षेत्रों में वे अपनी छाप बना रहे हैं और तो और यह भी है कि ये राजकारनी लोग सामाजिक संगठनों को राजनीति का अड्डा समझने लगे हैं । भारत की वर्तमान स्थिति ऐसी बन गयी है कि राजनीतिक सहयता के बगैर किसी भी सामाजिक संगठन को चलाया नहीं जा सकता है ।

वर्तमान में मातंग समाज के कार्यकर्ता राजनीति में सक्रीय हो रहे हैं और यह भी जानने लगे हैं कि समाज में किस प्रकार से भ्रष्टाचार, स्वार्थ, चमचेगीरी, समाजघात, विश्वासघात तथा ढोंगी लोगों को चतुरता से अवगत होने की कोशिश कर रहा है । इससे पहले यह समाज किसी एक पार्टी का साथ बिना कुछ सोचे समझे दिया करता था जिससे उनकी अस्मिता को ढूँढने का अवसर ही उन्हें नहीं मिलता था । वे सिर्फ दो-चार विधायकों से ही धन्य हो जाते थे । लेकिन यह कोशिश कभी नहीं करते थे कि उन पर दबाव बना सकें । जिसके कारण यह समाज सक्रीय राजनीति में निष्क्रीय रहा । वे सिर्फ राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियों को साथ देता रहा जिसमें पूर्ण समाज अविकास की ओर झुकता गया । इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थिति के चलते मातंग समाज का कोई भी सामाजिक संगठन नहीं बन पाया । इस विषय पर मातंग समाज के चिंतक चंद्रकांत वानखेडे लिखते हैं कि "संपूर्ण महारष्ट्र में अस्पृश्यों की संख्या कुल मिलाकर 53 लाख है । जिसमें बौद्ध -महार समाज की जनसंख्या 35% है याने कि उनका प्रमाण 19 लाख का है । उसी प्रकार मातंगों की लोकसंख्या 32% है याने 17 लाख । बाकी बौध्दोत्तर समाज 37 % है जिनकी संख्या 21 लाख है । जिनमें 35% बौद्ध समाज संगठीत है और उनके भारतीय राजनीतिक पक्ष भी है जो (रि. पा. इ.) के नाम से प्रसिद्ध है । जो स्वतंत्र रूप से राजनीति में भाग ले सकता है । इसके साथ-साथ उन्हें डॉ. अम्बेडकर के ओजस्वी विचारों का वारसा मिला हुआ है । साथ ही उस पार्टी में धुरंदर नायक देखने को मिलते हैं । उनकी अपनी संस्थाएँ है, बैंक है, साथ ही सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाएँ भी है । धार्मिक स्थानों के रूप में बड़े-बड़े बौद्ध विहार भी है । शिक्षित लोगों का प्रमाण

भी ज्यादा है जिससे सरकारी नौकरियों का प्रमाण भी बढ़ गया है जिसके कारण उनमें अपने समाज के प्रति अधिक रूप में स्वभिमान बना हुआ है ।”[7]

वे मातंग समाज की वर्तमान परिस्थिति को उजागर करते हुए लिखते हैं कि मातंग समाज लोकसंख्या की दृष्टि से 32% है । परंतु असंगठीत होने के कारण समाज में परिवर्तन की दिशा निर्देशित नहीं हो पायी है । 32% प्रमाण होने से यह समाज अपना एक अलग से संगठन बना सकता है जिसके भरोसे राजनीति में भागीदारी दिखा सकता है । इस तरह का राजनीतिक संगठन महाराष्ट्र में निर्माण किया जा सकता है । जैसे रिपब्लिकन पार्टी दलितों का संगठन समझ कर एक होने की संभावना हो सकती है । उसके बाद इन दोनों की एकता का प्रमाण कुल मिलाकर 65% हो सकता है । इसका परिणाम यह होगा कि अस्पृश्यों का संगठन एक अपना स्थान बनाकर भारतीय राजनीति में अपनी छाप बना सकता है और भारतीय राजनीतिक पार्टियों को टक्कर दे सकता है । ऐसा होने से भारतीय राजनीति में अस्पृश्यों का राजनीतिक अस्तित्त्व निर्माण हो सकता है । समाज में होने वाले अन्याय और अत्याचारों का प्रमाण भी कम होता रहेगा । राजनीतिक संगठन का नेतृत्त्व मिल जाने से सांसद में भी यह समाज अपनी समस्याओं को दिखा सकता है साथ ही साथ अपने समाज के अधिकारों के लिए लड़ने वाले राजनीतिक संगठन से इस समाज के विकास की दिशा निर्देशित हो जाती है ।

अस्पृश्योंत्तर लोग इन्हें एक न होने देने के षड़यंत्र जरूर रचते रहेंगे । उनमें भेदभाव निर्माण करने की कुटील राजनीति करने का कार्य जरूर करेंगे जिसके लिए मातंग समाज में ऐसे नेता की जरूरत है जो हिन्दू राजनीति को नकार देकर, उनकी कुटील राजनीति का पर्दापाश कर अपना अस्तित्त्व बनाने

में सक्षम रहें । लेकिन तत्कालीन मातंग समाज की स्थिति कुछ भिन्न थी आज कुछ अलग है । वर्तमान में मातंग समाज में शिक्षा का प्रमाण बढ़ गया है । इस समाज में यह शक्ति है कि वह अपना एक राजनीकि संगठन बना सकता है । इसके अलावा यह समाज राजनीतिक पार्टियों में सहभागी है । वह कांग्रेस के अलावा बहुजन समाज की राजनीति में शामिल हो रहा है । आज मातंग समाज का दृष्टिकोण अलग स्तर पर दिखाई देने लगा है । वह अपने समाज में विकास चाहता है । अपने अस्मिता की तलाश करता दिखाई दे रहा है । लेकिन मातंग समाज में कुछ ऐसे भी नेता हैं जो अपने फायदे के लिए राजनीति करते हैं और अपने समाज को पीछे छोड़ कर चले जाते हैं । वे खुद स्वाभिमान का जीवन तो जी लेते है, परंतु समाज को स्वाभिमान से जीना नहीं सीखाते हैं बल्कि उनके नाम पर अपना घर भरने का काम करते हैं । यदि मातंग समाज वैचारिक दृष्टि से राजनीति में कदम रखता है तो यह सारी स्थितियाँ विपरित दिशा में चली जा सकती है । डॉ. अम्बेडकर का भी कहना है कि 'सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निर्माण तथा परिवर्तनवादी कार्यक्रम के बिना अस्पृश्य समाज कभी भी अपनी दशा में सुधार नहीं ला सकता है ।'

मातंग समाज की युवा पीढ़ी का यह कर्तव्य बनता है कि वे अपने अधिकारों के लिए लड़ने का कार्य करे । स्वार्थ तथा लोभ छोड़कर समता का रास्ता अपनाना चाहिए जिसमें एकत्रित होकर भारतीय अस्पृश्य समाज की समस्याओं का हल निकाला जा सकता है । संपूर्ण महाराष्ट्र का मातंग समाज अगर एक हो जाता है तो कभी भी राजनीतिक तक्ता पलट सकता है । लेकिन ऐसा हो नहीं रहा है क्योंकि हर कोई नेतृत्त्व चाहता है जिसके कारण दलित राजनीति अपना स्थान स्थापित करने में सक्षम नहीं रही है । ऐसे में मातंग

समाज के युवाओं को अपने समाज की परिक्षा हेतु एक बार यह करके ही देखना होगा और उसके बाद क्या परिणाम निकलते हैं यह भी देखना होगा । ऐसा करने के लिए मातंग समाज को एकत्रित करने का कार्य करना होगा । जिससे एकता संभव हो सकती है । हमारे सामने किस प्रकार के ध्यैय होने चाहिए जैसे- मातंग समाज के संगठन की जरूरत क्यों है ? मातंग समाज के बदलते स्वरूप कैसे होने चाहिए ? वह कैसे बदले जा सकते है ? संगठन बनाने के लिए क्या करना चाहिए ? संगठन के कार्य किस प्रकार के होने चाहिए ? संगठन की विचारधारा कौनसी होगी ? यह तब हो सकता है जब मातंग समाज की युवा पीढ़ी आगे आकर नेतृत्त्व करेगी, अपने समाज को योग्य दिशा में ले जाने का कार्य करेगी । जिसका निर्णय युवा पीढ़ी को लेना होगा और अपने समाज को स्वाभिमान से जीना सिखाना होगा । उन्हें उनके अस्मिता की पहचान करानी होगी । उनमें अपने अस्तित्त्व को तलाश ने की शक्ति प्रदान करनी होगी तब जाकर इस समाज का स्वाभिमान वापस आ सकता है । मातंग समाज के युवा पीढ़ी को डॉ. अम्बेडकर के उन अनमोल विचारों को याद करना होगा जो समाज परिवर्तन की चाह रखने वालों के लिए बताए गए थे जैसे “वे धन्य है जो अनुभव करते हैं कि जिन लोगों में हमारा जन्म हुआ है, उनका उद्धा र करना हमारा कर्तव्य है । धन्य हैं वे, जो गुलामी का खात्मा करने के लिए सब-कुछ न्यौछावर करते हैं, और धन्य हैं वे, जो सुख और दुःख, मान और सम्मान, कष्ट और कठिनाईयों, आँधी और तूफान की परवाह किए बिना तब तक संघर्ष करते रहेंगे, जब तक कि आस्पृश्यों को उनके मानवीय जन्मसिद्ध अधिकार न मिल जाएँ ।”[8]

4.4. मातंग समाज का वर्तमान स्वरूप

महाराष्ट्र में मातंग समाज के अनेक सामाजिक संगठन हैं जिसके माध्यम से सामाजिक कार्य किए जा रहे हैं । लेकिन समाज इन संगठनों से समाधान नहीं है । यह संगठन किस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन कर रहे हैं इसका विचार अगर किया जाएगा तो एकमात्र योजना दिखाई दे रही है, इस तरह के संगठन मातंग समाज को स्वतंत्र रूप से आरक्षण माँगने की योजना बना रहे हैं, उनका मानना है कि मातंग समाज को अलग से 5% से 3% आरक्षण सरकारी नौकरियों में मिलना चाहिए । इसके पीछे यह तर्क दिए जाते है कि अनुसूचित जीति के लिए 13% आरक्षण संविधान के अनुसार मिला चुका है जिसका लाभ केवल बौद्ध , महार जातियों को ही मिल रहा है । महारोत्तर अन्य जातियों को इस आरक्षण का लाभ नहीं मिल रहा है । ऐसा मातंग संगठनों का मानना है । एक तरह से यह सच भी है कि इस समाज की शैक्षणिक क्षमता का प्रमाण कम होने के नाते वे सरकारी नौकरी पाने में नाकाम रहें हैं । सरकारी नौकरी ही नहीं बल्कि हर क्षेत्र में महार समाज के लोगों के प्रमाण अधिक है । चाहे वह सरकारी नौकरी में हो, भारतीय राजनीति में, व्यवसाय में हो उनका प्रमाण अधिक है । इसलिए मातंग समाज अपना अधिकार माँगते हुए 5% स्वतंत्र आरक्षण की माँग कर रहा है । इसके लिए जगह-जगह पर आंदोलन किए जा रहे हैं । लेकिन यह उतनी सरलता से पूर्ण होने वाली माँग नहीं है ।

मातंग समाज के सामाजिक कार्यों में अण्णा भाऊ साठे की जंयती तथा पुन्यतिथि का आयोजन किया जाता है । जिसमें सिर्फ भाषण बाजी होती है । जो सांस्कृतिक कार्यों का भी भाग है । इस तरह के कार्यक्रमों का आयोजन मातंग समाज द्वारा संपूर्ण माहराष्ट्र में किया जाता है । जहाँ पर मातंग समाज

के विद्वानों द्वारा अपने समाज को जागृत करने वाले भाषण दिए जाते हैं जो अण्णा भाऊ साठे के विचारों को उत्कृष्ठ रूप से समझाने का प्रयास करते हैं। यह जरूरी भी है कि मातंग समाज में अण्णा भाऊ जैसे विचारवंतों को जान लेना चाहिए। कार्यक्रमों के दौरान समाज शांतता बनाए रखते हुए ग्रहण तो कर लेता है परंतु उसके बाद वे सब कुछ भूल जाते हैं उसे अमल में लाने का प्रयास तक नहीं करते हैं। यह संपूर्ण अस्पृश्य समाज के लोगों में दिखाई देता है। केवल मातंग समाज ही इसके लिए अपवाद नहीं है। मातंगोंत्तर अनेक जातियों में इस प्रकार की वृत्ति झलकती है। अगस्त महीना आते ही ऐसा लगता है कि मातंग समाज में चेतना जागृत हो चुकी है। लेकिन अगस्त महीने के पश्चात ही ऐसा लगने लगता है जैसे मातंग समाज हमेशा के लिए सो गया है। मातंग समाज में चेतना जागृत करने के लिए केवल एक महीने का कार्यकाल योग्य नहीं है इस समाज में परिवर्तन लाने के लिए अण्णा भाऊ साठे के ओजस्वी विचारों का प्रचार-प्रसार साल के बारह महीने करना चाहिए जिससे समाज उनको जानने की कोशिश कर सकता है और यह जान सकता है कि अण्णा भाऊ साठे के विचारों में अस्पृश्य समाज के लिए क्या संदेश है। जैसे अण्णा भाऊ साठे ने 2 मार्च 1958 के पहले दलित साहित्य सम्मेलन में अध्यक्षपर भाषण में विश्वविख्यात लेखक मैक्सिम गौर्की के शब्दों को दोहराते हुए कहा था कि “मनुष्य को अपने बाह्य जीवन की परिस्थितियों में निकल कर सोचना चाहिए हीन समझने वाली वास्तविक दुनिया के बंधनों से मुक्त होना चाहिए और यह भी एहसास होना चाहिए कि तुम गुलाम नहीं हो बल्कि राजा हो, तुम दुनिया को जीना सिखाने वाले हो इस प्रकार का एहसास दिलाना ही वाङ्मय का सही उद्देश्य होता है। इसका मतलब वाङ्मय हमेशा क्रांतिकारी

होता है । इसलिए उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर साहित्य निर्माण करेंगे और अपनी कलम अस्पृश्यों को समर्पित करेंगे ।”९

मातंग समाज अण्णा भाऊ साठे तथा लहुजी साळवे के अन्मोल विचारों से प्रेरित हो कर संगठीत हो रहा है । साथ ही उन्हें महात्मा फुले, शाहु, अम्बेडकर आदि का भी वारसा मिला हुआ है । जिसके कारण समाज में एकता के अंश देखने को मिल रहे हैं । यह समाज एकत्रित हो तो रहा है परंतु अपने समाज के हित चिंतकों के विचारों को आचरण में लाने का प्रयास मात्र नहीं कर रहा है । अण्णा भाऊ साठे एक उत्कृष्ठ रचनाकार के रूप में जाने जाते है उनके साहित्य में मातंग समाज के लड़ाकु व्यक्तियों का चित्रण देखने को मिलता है । परंतु समाज उनके साहित्य से अवगत होने का प्रयास ही नहीं कर पाता है । यदि मातंस समाज उनका पाठक भी बन जाता है तो समाज में क्रांति की लहर आ जाएगी ।

मातंग समाज के सामाजिक कार्यों का केंद्र और एक योजना है जो महाराष्ट्र शासन की ओर से लागु की गयी है । इसमें मातंग समाज के आर्थिक विकास के लिए महाराष्ट्र सरकार की ओर से ‘अण्णा भाऊ साठे विकास संस्था’ की स्थापना की गयी है । इस संस्था के माध्यम से मातंग समाज को आर्थिक मदद मिलती है, साथ ही व्यवसाय करने के लिए सरकार की ओर से सहयता की जाती है । लेकिन होता यह है कि जब से यह संस्था स्थापित हुई है तब से मातंग समाज के कार्यकर्ताओं ने तथा नेताओं ने अपनी जबे भरने का काम किया है । हर घर में नेता पैदा होने लगे हैं । अगूँठा छाप व्यक्ति भी नेता बनकर वहाँ जाता है और मातंग समाज के कल्याण की बात कर अपना फायदा देखने की होड़ में लग जाता है । वहाँ जाकर उन अधिकारियों की चापलुसी कर वे 50-60

अवेदन लेकर आते है और भोले भाले लोगों से पैसे वसुल कर उन्हें देने का कार्य करते हैं । फिर वही अवेदन खूद लेकर जात हैं और सरकारी अधिकारियों पर अपना रोब दिखाने का प्रयत्न करते हैं ताकि समाज को यह लगे कि वह हमारे लिए कितना कुछ करते हैं । ऐसा करने से उन अधिकारियों को यह लगता है कि इसके पीछे उसका अपना समाज है जो कुछ भी कर सकता है इस तरह की परिस्थितियों में दोनों ओर से वह अपनी बाजी मार लेता है । इसमें ज्यादातर अपने समाज को ठगने का कार्य करते हैं । एक तरह से समाज का शोषण करते हैं । ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं से समाज परिवर्तन की कल्पना कैसे की जा सकती है ।

4.4. डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय को लेकर किए गए प्रश्न तथा उनके उत्तर

'डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज' इस विषय को लेकर मैंने अपने क्षेत्रकार्य के दौरान मातंग समाज के सुशिक्षित वर्ग में से एक अध्यापक व्यंकटी विश्वनाथ कोटंबे डॉ. अम्बेडकर माध्यमिक विद्यालय येल्लापूर ता. जिवती जि. चंद्रपूर । इनसे मैने साक्षात्कार लेने की कोशिश की परंतु उनकी व्यस्तता के कारण संभव नहीं था और उन्होंने ना भी नहीं कहा बल्की मुझे प्रश्न लिखकर देने को कहा तभी मैंने अपनी ओर से उन्हें इस प्रकार प्रश्न दिए थे उसके जवाब उन्होंने मुझे लिखित रूप में दिए है जो इस प्रकार है । मैं अपने प्रश्नों के साथ उनके द्वारा दिए गए जवाबों का भी हिन्दी अनुवाद यहाँ कर रहा हूँ ।

प्र. 1. डॉ. अम्बेडकर आणि मातंग समाज या विषयांवर आपले स्पष्ट मत व्यक्त करावे ? (डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय पर अपना मत व्यक्त करें)

उत्तरः डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय पर बात करने से यह ज्ञात होता है कि डॉ. अम्बेडकर ने प्रथमतः विशेष कर मातंग समाज पर अपना लक्ष केंद्रीत किया था । वर्ण व्यवस्था में जीवन जीने वाला अस्पृश्य समाज जो था उसमें से अत्यंत दैयनिय अवस्था मातंग समाज की थी । क्योंकि मातंग समाज बहिष्कृत होते हुए भी गाँव के बहार रहकर 'मांगकी' याने गाँवकी के काम किया करता था इसी से उनके परिवार का उदारनिर्वाह होता था । मातंग जाति पर डॉ. अम्बेडकर ने स्नेहभाव रखा परंतु 'मांग' जाति ने उन्हें समझने का प्रयास ही नहीं किया । क्योंकि डॉ. अम्बेडकर या फिर उनके विचारों को महार

जाति ने बहुत जल्द आत्मसात करने का प्रयास किया वहीं मातंग समाज ने डॉ. अम्बेडकर को समझ लेने में बहुत देर कर दी । ऐसा उनका मानना है और वह इसका कारण यह बताते है कि यदि मातंग समाज ने डॉ. अम्बेडकर को समझने में देर की है इसके पीछे का कारण मातंग समाज में अशिक्षा है । क्योंकि शिक्षा को मातंग समाज ने समझने में देर कर दी उनके दिलों दिमाग पर अंधश्रद्धा ने कब्जा कर लिया था जो आज भी वह उनके दिलों दिमाग में विराजमान है । परंतु जैसे ही मातंग समाज को इस बात का एहसास हुआ है कि डॉ. अमबेडकर के विचारों को आत्मसात करने से समाज में विकास की दिशा ही बदल गयी है तब से ही मातंग समाज में बंधुत्ता बढ़ने लगी है, इसके साथ-साथ यह समाज अपनी अस्मिता को पहचानने लगा है । वह अपने इतिहास को जानने की कोशिश कर रहा है । यह समाज उस परंपरा को नकार रहा है जिसने इसे सदियों से गुलाम बनाकर रखने की कोशिश की थी । यह समाज अब जानने लगा है कि समाज में चेतना जागृत करनी है तो डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलना होगा । डॉ. अम्बेडकर ने मातंग समाज के विद्यार्थियों के लिए अलग से वस्तिगृह की स्थापना की थी साथ ही शिक्षा का महत्त्व भी उन्हें समझा दिया था और उन परंपरा को त्यागने की सलाह भी दी थी जिसने उन्हें अस्पृश्य बनाया था । इस तरह के संदेश के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर मातंग समाज को गुलामी की संस्कृति का त्याग कर वैज्ञानिक जीवन पद्धती को अपनाने का मार्ग दिखाते हैं । इसी कारण मातंग समाज में शिक्षा का प्रमाण बढ़ गया और समाज में बुध्दीजीवि वर्ग का निर्माण हुआ । आज मातंग समाज में अनेक ऐसे लेखक है जो अपने समाज के साथ-साथ संपूर्ण अस्पृश्य समाज को जागृत करने का कार्य कर रेहें हैं । मातंग समाज आज विकास के क्षेत्र में जो भी उचाँईयाँ हासिल कर रहा है उसका श्रेय डॉ. अम्बेडकर को ही जाता है ।

प्र. 2. मातंग समाजांच्या विकासा मागे अम्बेडकरवादांचे योगदान ?

(मातंग समाज के विकास की दिशा में अम्बेडकरवाद का क्या योगदान है)

उत्तर. मातंग समाज के विकास की दिशा में अम्बेडकरवाद के योगदान को निम्न प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है-

1. मातंग समाज भ्रम में जीवन जीने वाला समुदाय है। वे कहते हैं कि मातंग समाज हिन्दू संस्कृति, परंपरा, आदि को छोड़ने में असमर्थ रहा है। इसका कारण यह रहा है कि यह समाज बहुत दिनों तक शिक्षा से वंचित रहा है और इनके शिक्षा का प्रश्न तब जाकर मिटा जब डॉ. अम्बेडकर ने भारत के लिए संविधान का निर्माण किया जिसके चलते अस्पृश्य समाज में शिक्षा का प्रमाण बढ़ गया।

2. डॉ. अम्बेडकर ने संवैधानिक रूप से मातंग समाज को ही नहीं बल्कि संपूर्ण बहिष्कृत समाज को विशेष रूप से 13% आरक्षण दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि 'Education is a all round development' इसमें से जिन लोगों को यह व्याख्या समज में आ जाएगी तब मातंग समाज के हर व्यक्ति को एक नई दिशा मिल जाएगी।

3. मातंग समाज की विकास की दिशा में अम्बेडकरवाद का योगदान है इसमें कोई दोहराई नहीं है। क्योंकि संवैधानिक रूप से महार और मातंग इन दोनों जातियों को कहीं भी अलग से आरक्षण नहीं दिया गया था। परंतु जो लोग आरक्षण के सैंध्दांतिक रूप को समझ पाए उनका व्यक्तिगत, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विकास हुआ है।

4. डॉ. अम्बेडकर ने आरंभ से ही मातंग समाज में रूढ़ परंपरा को नष्ट कर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझाने का हमेशा प्रयास किया था । उसके बाद ही मातंग समाज में विकास की दिशा मिल गयी जिसमें पूर्णतः अम्बेडकरवाद का ही योगदान है ।

प्र. 3. संवैधानिक आरक्षणांच्या अतिरिक्त वेगळे आरक्षण का? यावर आपले विचाक व्यक्त करावे . (संवैधानिक आरक्षण के अतिरिक्त आरक्षण क्यों ? इस विषय पर अपने विचार स्पष्ट करें ।)

उत्तरः डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखित भारत का संविधान 26 नवंबर 1949 को लागु किया गया था । लेकिन 26 जनवरी 1950 से भारत में संवैधानिक रूप से राज्य कारोभारा किस प्रकार चलाना है इन सारी बातों पर संविधान में तत्त्व दिए गए हैं । इन सारें प्रावधानों का पालन होने लगा शिवाय राजनीति और सत्ता को छोड़कर । क्योंकि राजनीति को नेताओं ने अपनी सुविधा हेतु सत्ता के लिए प्रयोग में लाने का प्रयास किया और आज भी कर रहें है ।

14 अक्तुबर 1956 में डॉ. अम्बेडकर ने महार जाति को एकत्रित कर नागपूर शहर में बौद्ध के धम्म की दीक्षा ली थी इसमें सिर्फ महार समाज ही था ऐसा नहीं है, उसमें अनेक अस्पृश्य जाति के लोग शामिल थे । विशेष कर मातंग समाज के दस हजार से भी अधिक लोग उसमें शामिल थे । उसके बाद 6 डिसंबर 1956 को डॉ. अम्बेडकर के निधन के बाद महार समाज का जीवन मानो बदल ही गया ऐसा कहना गलत नहीं होगा क्योंकि उस समाज ने अम्बेडकरवाद स्वीकार कर हिन्दू संस्कृति तथा धर्म को त्याग दिया था । जिसके कारण उनके रहन-सहन में बदल हो गया वहीं उनके साथ में ही रहने वाले

मातंग समाज ने स्वीकार न कर कर्मकांड तथा रूढ़ि परंपरा में विश्वास कर पीछे रहने का काम किया है जिससे इन दोनों में यह फर्क देखने को मिला है कि महार समाज ने अम्बेडकर के विचारों को अपना कर उसे आचरण में लाने का कार्य भी किया । महार समाज को शिक्षा का महत्त्व समझ में आने लगा और समाज में शिक्षा का प्रमाण बड़ने लगा । शिक्षा का प्रमाण बड़ने के कारण संपूर्ण अस्पृश्य समाज के आरक्षण का लाभ मात्र महार जाति ने ही उठाया । मातंग समाज को अलग से आरक्षण क्यों ? इस पर वे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है कि यह मेरा अपना मत है कि भागदौड में एक साथी आगे जा चुका है उसके साथ बने रहने के लिए पीछे जो रह गया है वह भी उसके साथ रह सकता है ।

उदा. दो व्यक्ति बोट में सवार होकर सागर में चले जाते हैं, वे दोनों एक साथ मिलकर मछलियाँ पकडने का काम करते हैं । उन दोनों में एक बुध्दीवान है तो दूसरा ताकतवर । अचानक तुफान आ जाता है तब ताकतवर को अपनी शक्ति पर घमंड रहता है वह मानता है कि मैं अपनी ताकत से सागर युँही पार कर लुँगा । ऐसे में तुफान और भी बड़ने लगता है और उनकी बोट जो है वह पलट जाती है जिससे वे दोनों भी पानी में गीर जाते हैं । शक्तिवान उन लहरों में से निकलने का बहुत प्रयास करता है परंतु वह थक जाता है और उसकी शक्ति भी काम नहीं करती है एक तरह से वह शक्तिहीन बन जाता है । वही दूसरा व्यक्ति जो बुध्दीवान रहता है वह पानी के बहाव में बहते हुए आने वाली लकड़ी के सहारे किनारे निकल जाता है । वही ताकतवर अपनी जान गवाँ बैठता है ।

ठीक ऐसा ही मातंग समाज के साथ भी हुआ है। इसलिए उनका मानना है कि इन्हें अलग से आरक्षण मिलने पर महार समाज की तरह विकसित हो सकता है। मूल रूप से वे यह मानते हैं कि मातंग समाज को अलग रूप से आरक्षण दिया जाना चाहिए ऐसा उनका व्यक्तिगत विचार है।

प्र. 4. मातंग समाज डॉ. अम्बेडकरांना आपले आदर्श मानतो का ? (क्या मातंग समाज डॉ. अम्बेडकर को अपना आदर्श मानता है ?)

उत्तरः सर्व प्रथम मैं प्राचीन इतिहास के उदाहरण देना चाहुँगा। बौद्ध कालीन राजाओं में राजा बिंबीसार से लेकर सम्राट अशोक, राजा प्रेसेनजित आदि ने बुद्ध के तत्वों का आचरण किया है। उनमें से राजा प्रसेनजित का संबंध मातंग समाज से है और यह ऐतिहासिक सत्य भी है कि यह राजा मातंग जाति से थे। उसके बाद मध्यकाल में मोघल साम्राज्य का पतन हुआ और पेशवा का शासन लागु हुआ। इस व्यवस्था में एक अलग प्रकार की वर्ण व्यवस्था का जन्म हुआ। इसी काल में समाज क्रांतिकारकों का जन्म भी हुआ। इनमें प्रमुख रूप से महात्मा फुले का नाम लिया जाना चाहिए। साथ ही उनके गुरू लहुजी साळवे का भी नाम लिया जाता है। महात्मा फुले के सामाजिक कार्यों से हम सभी परिचित है कि उन्होंने संपूर्ण अस्पृश्य समाज को न्याय दिलाने के लिए जीवन के अंतिम पड़ाव तक कार्य किया है।

इतना ही नहीं बल्कि उन्हे इस बात का अहसास हुआ कि अस्पृश्य समाज अनपढ़ है, इस समाज को शिक्षा की अत्यधिक अवश्यकता है इसीलिए उन्होंने संपूर्ण अस्पृश्य समाज के लिए ही स्कूल खोले। शिक्षा का महत्त्व बता कर उन्होंने यह भी समझाया कि न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य आदि को किस तरह से

समझना है और उसका सामना किस तरह से करना है आदि का ज्ञान देकर विद्यार्जन करने का कार्य फुले दांपत्यों ने किया है । आगे चलकर महात्मा फुले के विचारों का वारसा डॉ. अम्बेडकर ने ले लिया तथा संपूर्ण अस्पृश्य समाज के उन्नती की चाबी का निर्माण किया और संविधान के माध्यम से सभी को मुलभूत अधिकार दिलाएँ । साथ ही अनेक सामाजिक क्रांति का आगाज भी किया जो भारत जैसे देस में तत्कालीन समाज व्यवस्था में संभव नहीं था । डॉ. अम्बेडकर के बाद उनके विचारों का वारसा मातंग समाज के साहित्यकार लोकशायर अण्णा भाऊ साठे ने संभाला उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से संपूर्ण बहुजन समाज की व्यथा और कथा को शब्दबद्ध करके इस समाज व्यवस्था को कटघरें में खड़ा किया और साथ ही अपने मातंग समाज को यह बताने का प्रयास भी किया है कि हमें बड़े पैमाने पर एकत्रित होकर अम्बेडकरवाद को अपना बनाना होगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि मातंग समाज अपने आपको डॉ. अम्बेडकर का वंशज मानते हुए आदर्श के रूप में स्वीकार करता है यही सत्य है । आर. एस. एस. जैसे संगठनों में काम करने वाले इसी समाज के लोग समाज में कर्मकांड करने पर जोर दे रहे हैं । इसमें बुध्दीजीवि वर्ग को छोड़ दिया जाए तो फिर भी ऐसा भी वर्ग है जो कहता है कि मातंग समाज डॉ. अम्बेडकर को मानता ही नहीं है यह सत्य भी है । इसका कारण ऐसा है कि महार समाज में उनकी अपनी एक आत्मीय भावना बनी हुई है कि डॉ. अम्बेडकर सिर्फ हमारे ही है ।

प्र. 5. मातंग समाज किती प्रमाणात वेगळया आरक्षणाची मागणी करत आहे ? संभव आहे का ? (मातंग समाज अलग आरक्षण की मांग कर रहा है क्या यह संभव है ?)

उत्तरः मातंग समाज जो है वह विभिन्न संगठनों में काम कर रहा है और अलग-अलग विचारधाराओं के साथ संबंध रखता है, इससे यह कहना मुश्किल है कि मातंग समाज चाहता क्या है । इस समाज में भी बुध्दीजीवि वर्ग निर्माण होने लगा है परंतु उनमें भी मतभेद बने हुए है । शिक्षित वर्ग कहता है कि अपने कर्तृत्त्व के आधार पर ही पद हासिल करने चाहिए, वही दूसरा वर्ग कहता है कि नहीं हमें हमारे जाति की आधार पर आरक्षण दिया जाना चाहिए । इस तरह के मतभेद इस समाज में निर्माण हुए है ।

मातंग समाज के अधिकांश स्वार्थी विद्यार्थी चाहते हैं कि अलग से आरक्षण मिलना चाहिए । लेकिन अनुसूचित जातियों में महार, मांग, चमार, ढोर आदि इसमें शामिल होने के बावजूद अलग आरक्षण माँगना कुछ ठीक नहीं है । इस वर्ग का कोई भी छात्र अपनी मेहनत से गुण प्राप्त करने वालों को ही न्याय मिलना चाहिए यही सत्य है । परंतु 90% विद्यार्थी चाहते हैं कि अलग से आरक्षण चाहिए । लेकिन आरक्षण कोई खाने की चीज थोड़ी है ? 2002 में आंध्र प्रदेश की सरकार ने SC-A, SC-B अनुसार आरक्षण लागु किया था जिसमें अधिक रूप से ‘SC-B’ के विद्यार्थियों को मौका मिला था । उन्हें देखकर उनकी आने वाली पीढ़ी भी आरक्षण की ही माँग करने लगी है । मेरा अपना विचार यह है कि अपने ही वर्ग के लोगों से अलग आरक्षण माँगना याने मेहनत न करना है ऐसा मेरा अपना व्यक्तिगत मत है ।

डॉ. अम्बेडकर के आरक्षण की व्याख्या ही अलग स्वरूप की है। शिक्षा, समाज, राजनीति आदि को छोड़कर हम सिर्फ नौकरी पाने पर ही जोर देते रहेंगे तो हम बाकी क्षेत्र में शून्य ही रहेंगे। क्योंकि मातंग समाज सिर्फ अपने बंधुओं का आधा हिस्सा माँगने पर जोर दे रहा है, जो संभव नहीं है। यदि आरक्षण पाना ही है तो संवैधानिक रूप से ही मिलना चाहिए क्योंकि यही सत्य है। मातंग समाज हो चाहे अनुसूचित जाति के दूसरे वर्ग हो इन सभी को सिर्फ 13% आरक्षण ही दिया जा सकता है, इसके अलावा कुछ भी नहीं मिल सकता, और दिया भी जाए तो संविधान में इसका प्रावधान नहीं है। यही सत्य है जिसे मातंग समाज के युवा पीढ़ि को मानना होगा क्योंकि राजनैतिक लोगों की बातों में न आकर हमें हमारे विकास की दिशा निर्माण करनी होगी। यही मेरा अपना व्यक्तिगत मानना है।

क्योंकि संवैधानिक रूप से भी यह संभव नहीं है। यदि मिल भी जाए तो मातंग समाज का विकास कुछ हद तक हो सकता है परंतु ऐसे युग में इस तरह की अपेक्षा करना ठीक नहीं है।

प्र. 6. सुशिक्षित मातंग समाज आणि अशिक्षित मातंग समाजामध्ये अम्बेडकरी विचारांचे प्रमाण किती आहे ? (सुशिक्षित मातंग समाज और अशिक्षित मातंग समाज में अम्बेडकरवादी विचारों का प्रमाण कितना है ?)

उत्तरः इस देश में डॉ. अम्बेडकर के कार्यों की तुलना नहीं की जा सकती और ऐसे में उस समाज को जागृत करना जिसके साथ यहाँ की समाज व्यवस्था जानवरों से भी बत्तर बर्ताव करती थी । ऐसे समाज की मानसिकता को बदलना यह एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति थी । इन लोगों के लिए डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के माध्यम से अनेक समान अधिकार दिए जो उनके सुरक्षा कवच बन गए हैं । यदि मातंग समाज की बात की जाए तो मातंग समाज में शिक्षा का प्रमाण 20% से ज्यादा का नहीं है और जिन लोगों ने शिक्षा ग्रहण की है उनमें भी बहुत कम लोग हैं जिन्होंने डॉ. अम्बेडकर को समझने का प्रयास किया है । बाकी जो बचा हुआ वर्ग है वह आज भी अंधश्रद्धा से ग्रस्त है । मातंग समाज की तुलना में महार समाज की बात की जाए तो महार समाज ने 1956 से ही बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों को आत्मसात कर लिया है इसीलिए उनमें उन्नती बहुत तेजी से हो गयी है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा ।

मातंग समाज का बुद्धीजीवि वर्ग डॉ. अम्बेडकर के विचारों को थोड़ा बहुत अपना रहा है । लेकिन आज भी वे पूरी तरह से अंद्ध श्रधा से मुक्त नहीं हुए हैं । उनके घरों में आज भी पूजा-आर्चना आदि होती ही है । मातंग समाज में पूरानी परंपराएँ आज भी रूढ़ है । अण्णा भाऊ साठे ने अंम्बेडकरवाद अपना कर कहा था 'जग बदल घालुनि घाव, सांगुन गेले मला भिमराव' उनका यह कहना भी मातंग समाज ने अपनाया होता तो आज मातंग समाज के बदलते

चित्र दिखाई देते थे, जिससे समाज की संरचना भी बदल जाती और समाज में बदलते स्वरूप दिखाई देते थे । यही कारण है कि मातंग समाज में जो प्रगति होनी चाहिए थी वह नहीं हो पायी है । ‘Ambedkar think is broud thinking so there is a no challenge in the world’. यदि मातंग समाज ने अम्बेडकरवाद को अपना लिया होता तो समाज में बहुत से बदल देखने को मिलते थे । इस समाज ने पूरी तरह से अंबेडकरवाद को समझने की कोशिश ही नहीं की इसीलिए यह समाज आज भी विचारों से पिछड़ा हुआ ही है ।

हम अगर मातंग समाज की महिलाओं का विचार करेंगे तब यह पाएँगे कि आज भी मातंग समाज की अधिकतर महिलाएँ ‘देवकरीन’[10] आदि के रूप में दिखाई देती है । इनमें किस प्रकार की सुधारना लानी है यह समझ में नहीं आता है । समाज की अजीब विड़ंबना है इतने प्रगतिशिल युग में भी हमारे समाज की अंधश्रद्धा जाने का नाम नहीं ले रही है ।

मातंग समाज का युवा वर्ग यदि अम्बेडकरवाद को स्वीकार भी लेगा फिर भी उसमें एक दिक्कत सामने आती है, वह यह है कि मातंग समाज अम्बेडकर के विचारों को ग्रहण कर आना चाहे तो महार समाज बीच में आता है ऐसा हमारा मानना है । क्योंकि महार समाज यह समझता है कि अम्बेडकर हमारे समाज के है, हमारे जाति के है इस तरह की भावना महार जाति के लोग रखते हैं ।

प्र. 7. आंबेडकरवाद मातंग समाजला आंधश्रद्धे पासुन वाचवू शकतो का ? (क्या अम्बेडकरवाद मातंग समाज को अंधश्रद्धा से मुक्त करा सकता है ?)

उत्तरः आरंभ से ही मातंग समाज का रहन-सहन, रूढि-परंपरा आदि पर नजर डाली जाए तो यह जाहीर होता है कि इस समाज पर हिन्दू संस्कृति हावी हो चुकी है। इसका एक मात्र कारण यह है कि समाज में आज भी शिक्षा का प्रमाण बहुत कम है, अशिक्षा के कारण व्यक्ति अंधश्रद्धा का शिकार हो जाता है। इससे यह जाहीर होता है कि आज भी मातंग समाज ने पूरी तरह से अंबेडकरवाद नहीं स्वीकारा है।

हमने पहले ही इस बात का जिक्र किया था कि मातंग समाज में हिन्दू संस्कृति का बोलबाला है, इस समाज में आज भी हिन्दू धर्म के सभी त्यौहार बड़े ही जोश में मनाए जाते हैं। उनके जहन में से आज भी वह संस्कृति निकलने का नाम नहीं लेती है जिसने इन्हें सदियों तक समाज से बहिष्कृत किया था। इस समाज में सुधार लाने के लिए अनेक परिवर्तनवादी व्यक्तियों ने जीवनभर प्रयास किए थे जिनमें महात्मा फुले से लेकर डॉ. अम्बेडकर, अण्णा भाऊ साठे, डॉ. गोपले आदि। डॉ. गोपले ने तो 1996 मध्ये चंद्रपूर के महाकाली मंदीर में 300 पोतराजों का मुंडन करने का कार्य कर एक नई प्रेरणा को जन्म दिया था। उनके इस कार्य को मातंग समाज की दूसरी सामाजिक क्रांति माना जाना चाहिए क्योंकि प्रथम क्रांति ॲड. एकनाथ आवाड ने की थी उन्होंने तो जहाँ पर पोतराज नजर आएँगे उनका मुंडन करने की शपथ ही ली थी। इस बात का जिक्र उन्होंने अपनी आत्मकथा 'जग बदल घालुनि घाव' नामक किताब में किया है।

कालांतर में समाज में कुछ हद तक सामाजिक क्रांति हुई है साथ में लोगों को यह अहसास भी होने लगा है कि यह धर्म, संस्कृति अपनी नहीं है क्योंकि ब्रिटिश शासन में लहुजी साळवे की भतिजी मुक्ता साळवे ने एक लेख लिखकर यह साबित किया था कि मातंग समाज का कोई धर्म नहीं है । मुक्ता साळवे के लेख का शीर्षक ही था 'मांगा महारांच्या दुःखा विषयी कथा ।' यह तो बहुत पहले की क्रांति है अभी इस समाज को जागृत करने का एकमात्र औजार है 'अम्बेडकरवाद' और मातंग समाज के जहन में सिर्फ और सिर्फ अम्बेडकरवाद ही होना चाहिए । अंबेडकरोत्तर विचारों की कल्पना न कर सिर्फ फुले, शाहु और अंबेडकर के विचारों का वारसा इन्हें चलाना होगा, क्योंकि इसकी तुलना में दूसरा पर्याय ही नहीं है । हमें अण्णा भाऊ को याद करना होगा क्योंकि उन्होंने 1956 में कार्ल मार्क्स की प्रगतिशिल विचारधारा को छोडकर अंबेडकरवाद का स्वीकार किया था ये सत्य मातंग समाज को जान लेना बहुत जरूरी है । यदि यह जान लेने में मातंग समाज देर करता है तब फिर से पेशवाई शासन निर्माण होने में देर नहीं लगेगी । इस बात पर संपूर्ण मातंग समाज की नई पीढ़ि को विचार-विमर्श करना होगा ।

संदर्भ

1. आम्बेडकरी चळवळी कालीन मातंग समाज- चंद्रकांत वानखेडे पृ. सं. 13
2. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, प्रा. माधव बसवंते, पृ सं. 87.
3. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, डॉ. माधव बसवंते, पृ सं. 88.
4. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, पृ. सं. 90,91.93. देविदास कांबळे के मराठी पत्र का हिन्दी अनुवाद...
5. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव पृ. सं. 97-100. डॉ. आम्बेडकर के मराठी पत्र का हिन्दी अनुवाद..
6. मातंग समाजाचे भवितव्य वास्तव व संकल्पना, चंद्रकांत वानखेडे, की किताब से मराठी से हिन्दी अनुवाद.
7. मातंग समाजाच्या चळवळी स्वरूप व दिशा, चंद्रकांत वानखेड़े, पृ. सं. 56
8. अछूत कौन थे वे अछूत कैसे बने, डॉ. बी. आर. आम्बेडकर. पृ. स. 82.
9. अण्णा भाऊ साठे गौरव ग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे संपादकीय से...
10. पोतराजों का स्त्री रूप जो महाकाली की भक्त रहते हुए पोतराजों के साथ धुपात्री भी गाती है जो एक तरह की पुजारन है जिसे मराठी में देवकरीन कहा जाता है।

पंचम अध्याय

अण्णा भाऊ साठे और मातंग समाज

5.1. अण्णा भाऊ साठे: व्यक्ति एवं रचनाकार

'अण्णा भाऊ साठे' ऊर्फ तुकाराम भाऊराव साठे का जन्म 1 अगस्त 1920 में वाटेगाँव में हुवा था जो सांगली जिले के अंतर्गत आता है । अण्णा भाऊ का जन्म अनुसूचित जाति में (मातंग समाज) हुआ था । उनकी माता का नाम वालूबाई साठे और पिता का नाम भाऊराव साठे था । अण्णा का नाम 'तुकाराम' रखा गया था लेकिन सब लोग उन्हें प्यार से अण्णा ही कहते थे । अण्णा भाऊ की दो शादियाँ हुई थी । उनकी पहली पत्नी कोंडूबाई और उनका बेटा मधुकर गाँव में ही रहते थे । अण्णा अपनी दूसरी पत्नी जयवंताबाई के साथ मुंबई में रहते थे । वह अण्णा की तरह ही साम्यवादी कार्यकर्ता रही । शांताबाई और शकुंतलाबाई यह अण्णा की दो बेटियाँ थी ।

अण्णा भाऊ का शैक्षणिक जीवन सिर्फ डेढ़ दिन का रहा है । मास्टर की द्रोनाचार्य नीति से अण्णा को वंचित रहना पड़ा । स्कूल जाने के बजाय अण्णा दूसरी ही शिक्षा ग्रहन कर रहे थे । वे शिकार करने जाते थे, रात में किसी के खेत से कुछ चुराकर लाते थे । अण्णा की इन हरक़तों को देखकर उनके पिताजी उन्हें अपने साथ काम पर ले जाते थे । अण्णा अपने परिवार के साथ कुछ दिन 'पुणा' में काम करते रहे हैं यहाँ का काम और जगह ठीक न होने के कारण अण्णा के पिताजी यहाँ से निकल जाने की योजना बनाते हैं और मुंबई जाकर अपना परिवार बसाते हैं । जब अण्णा मुंबई में काम कर रहे

थे तब वह अपने चचेरे भाई से मिलते है जिससे उन्हें किताबे पड़ने का मौका मिला और ज्ञानार्जन भी हुआ ।

साहित्य जगत में कई ऐसे रचनाकार हुए हैं जिन्होंने बहिष्कृत समाज की चिंता को व्यक्त करते हुए भारतीय समाज-व्यवस्था पर व्यंग्य किया है । उनकी शैली, रचनात्मक सौन्दर्य एवं विषय विशिष्ट होते हुए भी समीक्षिकों ने उन्हें तथा उनकी रचनाओं को साहित्यिक जगत से दरकिनार ही रखा । यह भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विड़ंबना रही है, जहाँ रचनाकार की रचना को छोड़ उसकी जाति को केन्द्र में रखकर, उनकी रचनाओं का अवलोकन किया जाता रहा है । भारतीय साहित्य की समीक्षा विधा का इतिहास इस बात का गवाह है ।

बहिष्कृत समाज की व्यथा, कथा को रचनात्मक रूप देनेवाले मराठी साहित्य के विख्यात लेखक, लोकशायर अण्णा भाऊ साठे इसका शिकार रहे हैं । उनकी अपनी विशिष्ट रचनात्मक शैली होने के बावजूद भी, विषमतावादी साहित्य जगत ने ऐसे व्यक्तित्व को नजर अंदाज कर दिया । 'अण्णा' की विशिष्ट शैली की प्रशंसा करते हुए मराठी के प्रसिध्द कवि कविवर नारायण सुर्वे लिखते हैं कि- "कंपनी में काम करते हुए अपनी कलम के माध्यम से स्वाधीनता के जनसैलाब में लड़ने वाले संघर्षशील व्यक्तियों का चित्रण करना अण्णा भाऊ के साहित्य का प्रमुख उद्देश्य रहा है । इसके साथ-साथ वे लोग भी इनके साहित्य का प्रमुख विषय रहे हैं, जो ग्रामीन, बहिष्कृत तथा लाचार जीवन जीते हैं । इसलीए बहिष्कृत भारत की चिंता करते हुए उसे रचनात्मक रूप देनेवाले एकमात्र लेखक अण्णा भाऊ हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में विशिष्ट शैली का प्रयोग कर तत्कालीन ग्रामीन जीवन को दर्शाने

का प्रयास किया है । उनकी भाषा उनके ही अपने परिवेश की रही है जिसमें प्राचीन मराठी भाषा का संदर्भ तो मिलता ही है परंतु उसमें लोक भाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है, जिससे वह एक नवीनतम शैली प्रतित होती है । अण्णा की किसी भी रचना विधा को देखें जैसे - कविता, कहानी, उपन्यास और शायरी आदि, जिसमें उनकी अपनी शैली झलकती है । उनकी रचनाओं में प्रकृति चित्रण, व्यक्ति चित्रण प्रभावी रूप में देखने को मिलते हैं । इसके साथ-साथ उन्होंने अपनी निष्ठा का दायित्व भी निभाया है, जिसमें उनके राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनैतिक संघर्षों को देखा जा सकता है । वे लिखते हैं कि अण्णा किसी कुंडी का पौंधा नहीं थे, बल्कि वह एक पहाड़ पर बढने वाला छायादार वृक्ष थे ।"[1]

अण्णा भाऊ साठे के लेखन का प्रमुख प्रयोजन अस्पृश्य समाज के साथ-साथ निर्धन एवं पीछड़े वर्ग को एकजूट करने की प्रेरणा देता है, ताकि वे शोषण का विरोध कर सकें । उनकी रचनाओं में क्रांति की गूंज स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । लेकिन फिर भी तत्कालीन साहित्य जगत ने अण्णा के साहित्य को साहित्य का दर्जा नहीं दिया था । इसके बावजूद भी अण्णा का साहित्य-सृजन निरंतर चलता रहा । उनके साहित्य की चर्चा तत्कालीन समय में विदेशों में हो रही थी, परंतु इस विषमतावादी देश में उन्हें नजर अंदाज किया जा रहा था । अण्णा का जन्म किसी अन्य देश में हुआ होता तो वे उस देश के साहित्यिक क्षेत्र में सर्वोपरी रहते थे लेकिन दुर्भाग्य की बात यह रही कि इस क्रांतिकारी लेखक का जन्म विषमतावादी देश में हुआ ।

अण्णा भाऊ साठे ने अपने साहित्य में उन लोगों की जीवन गाथा प्रस्तुत की है जो सदियों से ठोकरें खाते आ रहें थे । जिसमें संपूर्ण अस्पृश्य समाज का समावेश है । वह किसी जाति विशेष का चित्रण नहीं करते थे बल्कि एक बड़े सामाजिक समूह के प्रति अपनी वेदना प्रस्तुत करते थे । भारत देश जब आजादी का जश्न मना रहा था, तब एक तरफ ऐसा समाज भी जी रहा था जिन्हें एक वक्त की रोटी बहुत मुश्किल नसीब होती थी । ऐसे लोगों के पक्ष में अण्णा ने एक क्रांतिकारी नारा दिया था । उन्होंने कहा था- 'ये आजादी झूटी है, मेरे देश की जनता भूखी है ।' उनके द्वारा लिखित 'माकडीचा माळ' उपन्यास घुमंतू समाज पर केंद्रित भारतीय साहित्य के पहले उपन्यास से गौरांवित हुआ है । जो भूखे, नंगे, बच्चों तथा आर्थिक रूप से लाचार लोगों की दास्तान बयां करता है ।

5.2. क्रांतिकारी लेखक एवं कवि :

लोकशायर अण्णा भाऊ साठे मराठी दलित लेखक, कवि एवं समाज सुधारक, वर्गभेद का ज्ञान सर्व सामान्य लोगों तक पहुँचाने वाले, महाराष्ट्र की ग्रामीन बोली और कला का संस्कार लेकर आए हुए सिध्दहस्त उपन्यासकार, कथाकार, लोकनाट्यकार, शायर, कलावंत और पहले दलित साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष । ग्रामीन जीवन के 'रांगाड़े तमासों' को 'लोकनाट्य' यह नाम अण्णा ने ही दिया था ।

अण्णा ने संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलनों में लोकनाट्यों द्वारा जनजागृति के लिए अनेक प्रयास किए थे । संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलनों में से निर्माण हुए

मराठी भाषी व्यक्तियों में महाराष्ट्र नवनिर्माण में 'लोकशायर अण्णा भाऊ साठे', 'शायर अमर शेख' और शायर 'कॉ. द. ना. गव्हाणकर' इन तीनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । बंगाल का अकाल, तेलंगना का संग्राम, पंजाब दिल्ली का पोवाड़ा, काले बाजार का पोवाड़ा, संयुक्त महाराष्ट्र के आंदोलन पर आधारित मुंबई की लावणी 'माझी मैना' (मेरी मैना), कामगार आंदोलन पर आधारित 'एक जूटी का नेता', हिटलर के उस फॅसिजम के विरोध में स्टालिनग्राड का पोवाड़ा, बर्लिन का पोवाड़ा और चीन क्रांति पर आधारित 'चिनी जनांची मुक्तिसेना' (चीनी जनों की मुक्तिसेना) आदि से सन्मानित । डॉ. बी. आर. अम्बेडकर पर आधारित प्रसिध्द गीत एवं वैचरिकी- 'जग बदल घालुनी घाव, सांगुनी गेले मला भीमराव' (जग बदल कर के घाव, कह गए मुझे भीमराव) इस प्रकार के गीतों, पोवाड़ों आदि की रचना अण्णा ने की हैं । उन्होंने अपने गीतों-पोवाड़ों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक प्रश्नों के साथ-साथ राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय समस्यायों से भी लोगों को जागृत करने का कार्य किया है ।

अण्णा भाऊ साठे मैक्सिम गोर्की को अपना गूरू मानते थे । अण्णा को लिखने की प्रेरणा भी इन्हीं से मिली थी । अण्णा ने मुंबई के 'माटुंगा लेबर कैम्प' में कंमुनिस्ट आंदोलन चलाया था । अण्णा ने अपने साथीयों की मदत से 1944 में 'लाल बावटा' नामक कला मंच का निर्माण किया था । जिससे क्रांतिकारी शायरी की आवाज बुलंद हुई थी । ज़ारशाही की जुल्मी सत्ता नष्ट

कर कामगार, मजदूर और किसानों का राज्य निर्माण करने वाले रूस के नेता 'लेनिन' पर अण्णा ने एक कविता लिखी थी जो 'सोवियत देश' नामक मासिक में अप्रैल 1970 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

"लेनिन शुभ नाम का गाये गान
कामगार पिता के नेता का
गीत जगत के क्रांति नेता के
रशिया मेरी छोड़ गया
ध्वजा मुक्ति की लाल।"[2]

अण्णा भाऊ जैसे लेखक आरंभ में कम्युनिस्ट पक्ष के मुख्यपत्रों में पत्रकार, कहानिकार, गीतकार आदि विधायों में लेखन कर रहे थे। कम्युनिस्ट विचारधारा से संबधित स. ह. मोडके, लोकसाहित्य प्रकाशन और वा. वी. भट के अभिनव प्रकाशन ने पहली बार अण्णाभाऊ की रचनाओं को प्रकाशित कर जन सामान्यों तक पहुँचाने का कार्य किया। अण्णाभाऊ के 'शायर' नामक किताब की भूमिका वरिष्ट कम्युनिस्ट नेता एस. ए. डांगे ने लिखी थी और अण्णा की प्रशंसा भी की थी। लोकशायर अण्णा के 'इनामदार' नाटक का हिंदी में प्रयोग करने के लिए भी कम्युनिस्ट विचारधारा से संबधित 'इंडियन पीपल्स थियटर असोशियसन' (EPTA) के सुप्रसिध्द सिने अभिनेता कॉ. बलराज सहानी ने कार्यभार संभाला था। इस नाटक में अभिनेता ए. के. हंगल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। जिसके चलते अण्णा को (EPTA) संस्था का अखिल भारतीय अध्यक्ष पद भी मिला

था जिसमें पूरे देश के प्रसिध्द लेखक, कलावंत और विचारक अण्णा के साथ काम कर रहे थे । अण्णाभाऊ के ‘फकिरा’ उपन्यास पर आधारित फिल्म निर्मिती के लिए भी (EPTA) संस्था का सहयोग मिला था । अण्णा भाऊ साठे लिखित प्रसिध्द लावणी- ‘माझी मैना गावाकडं राहीली’ (मेरी मैना गाँव में ही रह गई) इस काव्यकृति के लिए अण्णा भाऊ साठे का नाम मराठी साहित्य में अविस्मरनीय है ।

उनके लेखन का प्रमुख प्रयोजन दलित समाज के साथ-साथ निर्धन एवं पीछड़े वर्ग को एकजूट करने की प्रेरणा देता है, ताकि वे शोषण का विरोध कर सके । उनकी रचनाओं में क्रांति की गूंज स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।

अण्णा भाऊ साठे के जीवन का अंत एकदम दुखद रहा । अण्णा अपने जीवन के अंतिम समय में परिवार को छोड़कर अकेले ही जीवन जी रहे थे । उन्होंने साम्यवादी पक्ष में काम करना भी छोड़ दिया था । अण्णा इस संघटन में काम नहीं कर रहे थे, तो संगठन के कुछ कार्यकर्ताओं ने अण्णा की पत्नी को पार्टी के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कहा और उनकी बेटी को पार्टी में काम करने के लिए ले गए । अण्णा इस बात को बरदास्त नहीं कर सके इसके बाद अण्णा ने अपनी पत्नी और बेटी को भी छोड़ दिया और नसीली चीजों का सेवन करना शूरू किया ।

महाराष्ट्र राज्य ने अण्णा के साहित्य को जो स्थान मिलना चाहिए था वह कभी मिलने ही नहीं दिया । इस विख्यात साहित्यकार की चर्चा विदेशों में हो रही थी । लेकिन इस विषमतावादी महाराष्ट्र ने अपने ही देश में उन्हें नजर अंदाज कर दिया । यही अण्णा अगर विदेश में पैदा हुए होते तो उस देश के साहित्यिक क्षेत्र में सर्वोपरी रहते थे । मगर दुर्भाग्य की बात यह है कि

इस साहित्यकार का जन्म विषमतावादी भारत देश में हुआ था। यही कारण रहा कि जब तक अण्णा लिख रहे थे तो प्रकाशकों ने उनकी कटु आलोचना कर उनके साहित्य को नजर अंदाज करने का काम किया। एक रचनाकार को जो अपेक्षाएँ लगी रहती हैं और जब वही अपेक्षाएँ भंग हो जाती हैं तो वह रचनाकार सह नहीं पाता है, अण्णा के साथ भी यही हुआ और 18 जुलाई 1969 में इस साहित्यकार का देहांत हो गया।

अण्णा भाऊ साठे का नाम मराठी साहित्य में इसलिए भी लिया जाता है कि उन्होंने बहुजन समाज के लोगों को केंद्र में रखकर शायरी, कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक आदि लिखकर उनके दुःख दर्द की कथा और व्यथा को समाज व्यवस्था तक पहुँचाने का कार्य किया। इससे समाज के दौलतमंद, सत्ताधारी तथा विषमतावादी समाज व्यवस्था के विरूध्द वैचारिक वाद निर्माण हुआ। जिसे वैचारिक क्रांति का आरंभ ही माना जाना चाहिए। उन्होंने अनेक आंदोलनों को अंजाम दिया, क्रांतिकारी शायरी की आवाज बुलंद की, साथ ही साहित्य सृजन भी किया। उनका साहित्य एक तरह से सामाजिक क्रांति की पहल है जो उस क्रांति से जुड़ जाती है जिसमें मार्क्स, लेनिन, फुले और अम्बेडकर आते हैं। यही उनके साहित्य की वैचारिकी भी है।

अण्णा ने अस्पृश्य समाज की व्यथा और कथा को अपना समझकर साहित्य की रचना की। अन्याय के विरूद्ध उन्होंने एक विशिष्ट शायरी को जन्म दिया। वे मानवतावादी विचारवंत थे इसलिए उनके साहित्य में अन्याय, अत्याचार, दरिद्रयता, गरीबी, भूखमरी आदि को विशेष रूप में देखा जा सकता है। इसके साथ-साथ जातियता, नाचगाने वाले (कोल्हाठी) तथा

घुमंतू समाज का भी चित्रण देखने को मिलता है। उनकी रचनात्मक शैली पाठक को आकर्षित करती है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से अपने पात्रों का भी स्वाभिमान दिखाने का प्रयास किया है। उनके साहित्य में सामाजिक परिवर्तन, चेतना और नई उमंग दिखाई देती है। जो मराठी साहित्य में नामी रचनाकार तो बहुत मिलेंगे लेकिन अण्णा की शैली उनमें विशिष्ठ रही है। क्योंकि उन्होंने जो लिखा वह उनका अपना था, जीवन के जो अनुभव थे उसे वह शद्बबद्ध करने का प्रयास करते रहें। ऐसा कहा जाता है कि 'अनुभव ही सर्वश्रेष्ठ गुरू कहलाता है' ये कहावत यहाँ पर पूर्ण रूप से लागु होती है। अण्णा जिनके बारें में लिखते हैं वे उनके अपने है, उनके जीवन को अण्णा ने बहुत करीब से देखा है इसलिए उनके साहित्य ने उपलब्धियाँ हासिल की हैं।

उनकी रचनाओं को देखकर समाज व्यवस्था लड़खड़ा जाती है और उनकी यह शैली उन्हें क्रांतिकारी लेखक की पहचान दिलाती है। उन्होंने अपने साहित्य में ऐसे समाज के नायक तैयार किए हैं जो मराठी साहित्य जगत में संभव ही नहीं था। उनकी रचनाओं में अस्पृश्य समाज की हर जाति का नायक देखने को मिलता है जैसे महार, मांग (मातंग), चमार, ढोर, कोल्हाठी, भटके (घुमंतू), मुस्लिम आदि प्रमुख पात्र के रूप में देखने को मिलते हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज व्यवस्था को इस बात का प्रमाण देने का कार्य किया है कि इन लोगों की भी अपनी भावनाएँ है, उनके अपने दुःख-दर्द हैं जिन्हें साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। दलित साहित्य पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि इस साहित्य में प्रेम का चित्रण नहीं है लेकिन ऐसा नहीं है अण्णा की अनेक कहानियों, उपन्यासों में

प्रेम का चित्रण देखने को मिलता है और उन उपन्यासों में अंतरजातीय विवाह को भी मान्यता मिलती है जो फुले, शाहु, अम्बेडकर के विचारधार से जुड़ जाती है।

अण्णा भाऊ साठे कष्टकरी, दलित, मजदूर आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन इस रूप में करते हैं- 'ये पृथ्वी शेषनाग के मस्तिष्क पर टिकी हुई नहीं बल्कि कष्टकरी दलितों के हथेली पर टिकी हुई है।' इस तरह के क्रांतिकारी और परिवर्तनवादी विचार व्यक्त करने वाले मराठी साहित्य में अण्णा ही पहले लेखक रहें हैं।

अण्णा भाऊ ने पहले दलित साहित्य सम्मेलन में अपने भाषण में भी यह बात कही थी। "तुम गलाम नहीं हो बल्कि तुम इस विश्व के मालिक हो, ये दुनिया ही तुम्हारे हथेली पर टिकी हुई है, तुम इस जहाँ के राजा हो, इसे बदलने वाले क्रांतिकारक हो, इसे जागृत करने में तुम ही सज्ज हो, मानो यहाँ पर निवास करनेवालों को जिंदा रखने की डोर तुम्हारे ही हाथों में है, तुम ही इसके वाली है, निर्माता हो, पालन कर्ता हो और तुम्हारी पहचान यह है कि तुम दलित शोषित हो जो क्रांति का निर्माता है, इसलिए तुम महत्वपूर्ण हो।"[3]

अण्णा भाऊ साठे ने व्यक्ति की प्रतिष्ठा को ही महान समझा है। साथ ही दलित साहित्य के निर्माण का महत्व स्पष्ट करते हुए कहते हैं। जिसका उदाहरण इस रूप में देते है- "अस्पृश्यता कायदे से नष्ट हो चुकी है तब दलित यह नाम अस्तित्व में ही नहीं है ऐसा कहना मात्र एक भ्रम है। एक गाँव में सार्वजनिक कुआँ है जिसमें पानी भरते समय उच्च वर्णीय लोगों की धड़कने

बड़ जाती हैं। महार और मातंग लोगों की बकेट जब तक पानी में रहती है तब तक वे लोग अपनी बकेट कुएँ में छोड़ते ही नहीं हैं और दूसरी बात यह है कि अनेक हॉटेलों में अस्पृश्यों के लिए अलग रूप से ग्लास रखे हुए मिलते है। कहने का तात्पर्य यही है कि युगों से चली आ रही मानसिकता एक ही क्षण में नष्ट नहीं होती है। इसीलिए हमें दलित साहित्य का निर्माण करना होगा।"[4]

इससे अण्णा भाऊ साठे यह कहने का प्रयास कर रहें हैं कि अस्पृश्यता निवारण नहीं हुआ है। भारत में दलितों का कहीं ना कहीं शोषण जरूर होता है। अस्पृश्यता निवारण के नाम पर कुछ चीजें दिखाई जाती है परंतु शोषण आज भी होता दिखाई देता है। ऐसा वह स्पष्ट करते हैं। तत्कालीन समाज में अस्पृश्यों के लिए अलग से चाय के कप वगैराह रखें होते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि अण्णा भाऊ साठे यह मानते है कि भारत जैसे देश में जाति व्यवस्था नष्ट नहीं हो सकती है जो किसी ना किसी रूप में दिखाई देती है।

5.3. अण्णा भाऊ साठे का मातंग समाज को संदेश

अण्णा भाऊ साठे ने अपने अनेक भाषणों तथा कवनों में मातंग समाज के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की है । वे मातंग समाज में फैली अंधश्रद्धा को मिटाने तथा समाज में भाईचारा बढ़ाने पर जोर देते दिखाई देते हैं । उनके साहित्य में भी यह देखने को मिलता है कि किस प्रकार से अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज में चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं । वे ज्यादा तर अम्बेडकरवाद से जुड़े रहने का संदेश देते दुए दिखाई देते हैं और वर्तमान में समाज को यह कहने का प्रयास करते हैं कि अतीत में उन्होंने जो गलती की थी मतलब अम्बेडकरवाद से जुड़े हुए नहीं थे ऐसी गलती मातंग समाज ना करें यहीं उनकी सबसे बड़ी चिंता बनी हुई है । इस हम बिन्दुओं के माध्यम से देख सकते हैं ।

5.3.1. डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलने का संदेश

मातंग भाईयों आप लोगों से बात करते हुए मुझे बहुत खूशी हो रही है और मुझे इस बात का स्वाभिमान भी है कि आप लोग मेरे विचारों के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने में सफल हो रहे हों । साथ ही मेरे लेखन के माध्यम से वैचारिक मंच का निर्माण करने की कोशिश कर रहे हों । अपनी वास्तविकता तो यह है कि हमें सामाजिक क्रांति के महानायक डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलनों में जुड़ जाना चाहिए था । परंतु ऐसा हुआ नहीं इसका कारण क्या था ये तो हम नहीं जानते हैं । लेकिन हम जैसे शूर वीरों में शूमार मातंग समाज बहुत बड़ी क्रांति का हिस्सा बनने से रह गया । ये हमारी बहुत बड़ी भूल थी । यह भूल मैंने भी की है और आप लोगों ने भी । इसलिए मैं आप लोगों से यह गुजीरीश करता हूँ कि तुमने अपने

अतीत में जो भूल की थी ऐसी भूल ना करें । मेरा मानना है कि डॉ. अम्बेडकर और मैंने जिस सामाजिक परिवर्तन की दिशा आप लोगों को दिखाई है उसे अपनाकर उस भूल को सुधारा जा सकता है जो हमनें अपने अतीत में की थी जिसके लिए हम सभी को अपने समाज में नई क्रांति लाने के लिए एक प्रतिज्ञा लेनी होगी ।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक आंदोलन संपूर्ण भारत में हो रहे थे और लोग बहुत बड़ी मात्रा में आंदोलन का हिस्सा बन रहे थे । इस बात से हम सभी वाकिफ थे । क्योंकि हमने अपनी आँखों से देखा है समाज किस तरह से डॉ. अम्बेडकर को साथ दे रहा था । दुःख की बात यह है कि मैं उसका हिस्सा नहीं बन सका । मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं अपनी क्रांतिकारी शायरी के माध्यम से संपूर्ण अस्पृश्य समाज को जागृत करके एक नए विद्रोह का निर्माण करूँ जिसमें क्रांति की नई ज्वाला दिखाई दे । मुझे ऐसा लग रहा था जो काम डॉ. अम्बेडकर अकेले कर रहे थे वहीं काम मुझे भी करना चाहिए था । ऐसा लग रहा था कि दलित तथा उपेक्षितों के हाथों में जलती मशालें देकर आंदोलन में शामिल कर दूँ जिससे इस देश स्थापित जातियता, वंशवाद. वर्गवाद तथा शोषण आधारित समाज व्यवस्था को जला कर राख कर दूँ । लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सका क्योंकि मैंने अपनी निष्ठा से रहने का प्रण लिया था । मैं जिस संगठन में काम करता था उसी संगठन में जीवन भर काम करता रहूँगा और मैंने ऐसा ही किया क्योंकि मैं अपने कर्तव्यों से बंधा हुआ था । यह बात अलग है कि मैं अपने संगठन की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर रहा था परंतु मुझे इस बात का अफ़सोस भी हो रहा था कि मैं डॉ. अम्बेडकर के साथ में नहीं हूँ । लेकिन अब मुझे ऐसा लग रहा है कि सारी बातें और

कर्तव्यों को भूलकर डॉ. अम्बेडकर का साथ देना चाहिए था। यदि मैं उनके साथ उनके सामाजिक आंदोलनों में शामिल हुआ होता तो शायद आप लोग भी मेरे साथ उस आंदोलन में जुड़ जाते थे। अगर ऐसा हुआ होता तो आज इस देश के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र के संदर्भ ही बदल चुके होते। हम सभी मिलकर सामाजिक क्रांति के महायुध्य में शामिल हुए होते। भारतीय समाज का बहुत बड़ा तबका इस सामाजिक क्रांति के महायुध्द में डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में शामिल हो चुका था। यदि हम याने मातंग समाज भी इसका हिस्सा रहते थे तो उससे डॉ. अम्बेडकर को एक नई उर्जा मिल जाति थी। लेकिन ऐसा हुआ नहीं क्योंकि हम लोग डॉ. अम्बेडकर के उस जन सैलाब का हिस्सा नहीं थे। फिर भी संपूर्ण भारत के अस्पृश्य समाज में परिवर्तन लाने वाले सामाजिक क्रांति का नेतृत्व डॉ. अम्बेडकर ही कर रहे थे और वह सफल भी हो गए। यह सब करते समय उन्हें बहुत कुछ सहना पड़ा। उन्होंने कितने दर्द झेले हैं इसकी कल्पना भी तुम लोग नहीं कर सकतें। इसका कारण यह है कि हमारी जाति में से बहुत कम लोगों ने डॉ. अम्बेडकर का साथ दिया था और जिन लोगों ने उन्हें साथ दिया था वे प्रतिभावान तो थे ही लेकिन उनकी प्रतिभा मातंग समाज को प्रभावित नहीं कर सकीं। यही वह कारण है जो मातंग समाज बड़ी मात्रा में डॉ. अम्बेडकर के समतामूलक आंदोलन का साक्षी नहीं बन सका।

मैंने भी यह भूल की है कि मैं उन्हें साथ नहीं दे सका। यदि मैं उस समय डॉ. अम्बेडकर के साथ उस जनसैलाब में मातंग समाज का नेतृत्व कर रहा होता तो आज जिस प्रकार से मातंग समाज मेरे साथ खड़ा रहता है उसी तरह डॉ. अम्बेडकर के साथ उस वक्त भी खड़ा रहा होता। परंतु हमारे

समाज के कुछ लोग थे जिन्होंने संपूर्ण मातंग समाज को ही इस आंदोलन का हिस्सा बनने से रोका था । वे कोई और नहीं थे बल्कि तत्कालीन मातंग समाज का नेतृत्व कर रहें थे । उनमें प्रमुख थे- मा. श्री. के. के. सकट और श्री. बाबुराव वायदंड । मातंग समाज के इन नेताओं ने कांग्रेस के नेताओं के इशारों पर डॉ. अम्बेडकर का विरोध किया था । वे लोग सिर्फ इन नोताओं के इशारों पर ही इन आंदोलनों का विरोध कर रहे थें । उनका अपना कोई वैचारिक विरोध नहीं था । दूसरों के इशारों पर चलने वाले मातंग समाज के लोग डॉ. अम्बेडकर की दूरदृष्टि को समझ ही नहीं पा रहे थे कि यहाँ की प्रस्थापित विषमतावादी सामाजिक संस्कृति में मानवी जीवन मूल्यों का स्थान नहीं है । इस बात से वे लोग अवगत नहीं थे । साथ ही उनमें इन सारी बातों पर विचार करने की क्षमता नहीं थी । उन लोगों को स्वाभिमानी जीवन जीने की बजाए लाचारी में जीने के आदत सी हो गयी थी । यही कारण है कि आज भी मातंग समाज का बहुत बड़ा तबका डॉ. अम्बेडकर के विचारों को समझने का प्रयास ही नहीं कर रहा है । अण्णा अपनी आशा जताते हुए कहते हैं कि मेरी यही एक आशा है कि संपूर्ण मातंग समाज डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अपना कर एक सम्मान जनक जीवन जीने की राह पर चलने की दिशा में कार्यरत हो । क्योंकि अम्बेडकरवाद ही मातंग समाज के विकास की एक मात्र दिशा है ।

5.3.2. मातंग समाज में प्रचलित अंधश्रद्धा को नष्ट करने का संदेश

लोकशायर अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज में प्रचलित अंधश्रध्दा को नष्ट करने की माँग करते हुए कहते हैं कि आप लोग अपने घरों में जिस प्रकार खुशी-खुशी मेरी प्रतिमा लगाकर अभिवादन करते हो, ठीक उसी प्रकार डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा लगाकर अभिवादन करने में कतराते हो । आप लोग आज भी शरनार्थ या जय मातंग कहकर संबोधन करते हो और हिन्दू संस्कृति को अपनाते हो परंतु 'जयभिम' कहकर विकृत जातिवादी संस्कृति को लथाडने का नाम नहीं लेते हो या उससे बाहर निकलने की कोशिश तक नहीं करते हो । मेरे भाईओं इस बात का ध्यान रहें कि 'जयभिम' संबोधना या उसे स्वीकारने का मतलब यह होता है कि डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक परिवर्तनवाद का स्वीकार करना । यदि ऐसा हुआ तो मैं समझ लुँगा कि तुमने मेरे विचारों को अपना लिया है । अरग ऐसा नहीं हुआ तो फिर मैं यह समझूँगा कि हमारे मातंग समाज ने अपनी अज्ञानता से ही मुझे अपना प्रेरणास्त्रोत चुना है ज्योंकि मैं उसे स्वीकार ही नहीं कर सकता । मैं तो जीवन भर परिवर्तन की दिशा ढूँढंता रहा हूँ । मुझे तो इस बात का आश्चर्य होता है कि मैंने जो राह चुनी है उसमें कहीं भी अंधश्रद्धा या अज्ञान नहीं है फिर आप लोगों में ये कहाँ से आयी, यही मेरी समझ के बाहर है ।

अण्णा भाऊ अपने समाज से पुछते है कि आप लोग मुझे अपनी वैचारिकी में सर्वोपरी रखते हो । सिर्फ इनता ही नहीं बल्कि मुझे अपना प्रेरणास्त्रोत समझते भी हो । लेकिन मेरी कहीं हुई बातें या मेरे विचार आप लोगों के समझ में नहीं आते हैं जिसे मैंने नकारा है उसे तुम लोग अपनाते हो । जैसे मैंने ईश्वर, विषमता, जातिवाद और आध्यात्मिकता आदि को नकारा

है तुम लोगों ने उसे परंपरा समझकर अपना बना लिया है । गुलामगिरी वाली मानसिकता आप लोगों में जैसे पहले थी वैसी ही आज भी है और आगे कहते है कि मैंने किसी धर्म का पालन नहीं किया ना ही मेरा कोई धर्म है शिवाय मानव धर्म के । तब आप लोग काल्पनिक देवी-देवताओं के साथ मुझ जैसे नास्तिक व्यक्ति को अपना प्रेरणास्त्रोत किस आधार पर मानते हो । इसका मतलब यही हुआ कि आप लोग मेरे क्रांतिवाद को हिन्दुत्ववाद के साथ स्वीकारने की बात कर रहे हो । क्या आप लोग मेरे क्रांतिवाद की तुलना हिन्दुत्ववाद से कर रहे हों ? इसका जवाब देना होगा ।

अण्णा भाऊ हिन्दू धर्म को नकारते हुए यह कहते है कि मैं हिन्दू धर्म को स्वीकारने का सवाल ही पैदा नहीं होता । क्योंकि वे हिन्दू संस्कृति को पूरी तरह से नकारते हुए कहते हैं – मैं ईश्वर को नहीं मानता और ना ही उसकी उपासना करूँगा, मैं अंधश्रद्धा का पालन नहीं करूँगा । मैं तो यह चाहता हूँ कि भारत में प्रचलित जातिवाद, वर्गवाद को जड़ से निकालकर फेंक दूँ । इसलिए मैंने कहा भी है कि 'ये पृथ्वी शेषनाग के मस्किष्क पर टिकी हुई नहीं है बल्कि दलित मजदूरों की हथेली पर टिकी हुई है ।' मैंने यह कहकर सारी बातों को पूरी तरह से नकारा है । जब शेषनाग ही अस्तित्व में नहीं है तब उसके फन पर यह पृथ्वी कैसे टिकी रहेगी । जिस प्रकार यह नाग जहरिला होता है ठीक उसी प्रकार हिन्दू संस्कृति को भी विषारी मानते है । विज्ञान का हवाला देते हुए कहते है कि विज्ञान ने यह सिध्द किया है कि शेष नाग वगैराह कुछ भी नहीं है । साँप तो आखिर साँप ही होता है अगर हम उस पर पैर रखेंगे तो वह काँट ही लेता है फिर वह भगवान कैसे बन गया ।

उन्होंने इस प्रकार का वैज्ञानिक उदाहरण देकर शेषनाग की कथा को नकारा है और हिन्दू संस्कृति किस प्रकार लोगों को काल्पनिक कारण बताकर बहलाती है इसे भी उजागर करने की कोशिश की है । वे आगे कहते है कि विषारी साँप को आप कितना भी दूध क्यों ना पिलाओं वो साँप कभी न कभी काँट ही लेता है जिससे इन्सान की जान चली जाती है । ठीक उसी प्रकार यह हिन्दू संस्कृति है जो तुम्हें अपना समझ तो ले लेगी परंतु पहचानेगी तुम्हारे जाति से ही, अंत में तुम्हें 'मांग' ही कहेंगे । इस प्रकार से मातंग समाज में जो अंधश्रध्दा रूढ़ हुई है उसे बहार निकालने के लिए अलग-अलग उदाहरण देने का प्रयास करते दिखाई देते है । वह जानते हैं कि समाज में जो लोग रहते हैं वे अंधश्रध्दा को छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहे हैं । किसी न किसी रूप में वे मानते ही है इसीलिए अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज को यह संदेश दे रहे है कि तुम तुम्हारे अस्मिता को पहचानों और स्वाभिमानी जीवन जीने की कोशिश करो ।

5.3.3. मातंग समाज में चेतना जागृत करने का संदेश

अण्णा अपने समाज में चेतना जागृत करना चाहते थे । उनका अपने समाज को यह कहना था कि मेरे भाईयों अब तुम्हें जागना होगा, तुम्हें तथाकथित धर्म के लक्षणों को त्यागकर सामाजिक परिवर्तन के विचारों को स्वीकारना होगा । धार्मिक परंपराओं को नकारना ही होगा । मैंने कई बार आप लोगों को यह बताने की कोशिश की है कि तुम गुलाम नहीं हो बल्कि तुम इस आजाद देश के नागरिक हो । इसलिए अब स्वतंत्र व्यक्ति की तरह स्वाभिमान से जीना सिखना होगा । हिन्दू धर्म तो तुम्हें पशु से भी हीन समझता है । क्या फिर तुम उस धर्म में रहकर मातंग ही कहलाओगे, उसी

तरह की गुलामी करोगे, क्या तुम लोग इस तरह का जीवन जीने के लिए तैयार हो ? ये सोचने वाली बात है । अब यह निर्णय तुम्हारा होगा कि तुम्हें क्या चाहिए, कौनसा मार्ग अपनाना है । परिवर्तन की योग्य दिशा या फिर वही पशुतुल्य जीवन ? यदि तुम्हें हिन्दू संस्कृति को अपनाना है तो आप बेशक तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं के भक्त बन सकते हों जिसमें तुम्हारी सामाजिक गुलामी तोफें में मिल जाएगी । मैं तो मानव मुक्ति का दाता हूँ यदि तुम लोग मुझे अपना प्रेरणास्त्रोत मानते हों तब तुम्हें मेरे साथ सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में शामिल होना होगा । अपनी गुलामी त्यागकर स्वाभिमानी जीवन जीने का प्रयत्न करों । अण्णा मातंग समाज को बिना धर्म की जाति कहकर महात्म फुले की शिष्या मुक्ता साळवे के शद्बों दोहराते हुए कहते हैं कि 'हमारी जाति किसी भी धर्म की नहीं है, फिर हमें मानवता का धर्म अपनाना ही होगा, जिसमें इन्सान को श्रेष्ठ समझा जाए, एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह हमें भी जीवन जीने का अधिकार मिले ।' मैं भी इसी बात को महत्त्व देता हूँ । अगर हम ऐसा करते हैं तब हमारे समाज में परिवर्तन दिखाई देगा और मानवता की झलक देखने को मिलेगी ।

अण्णा का मानना है कि किसी भी समाज के प्रेरणास्त्रोत यह चाहते हैं कि यदि उनका समाज उनकी राह पर चलना चाहता है तो सबसे पहले पूरे समाज को अपनी प्रेरणा का पूरी तरह से ज्ञान होना जरूरी होता है । उनका लिखा हुआ साहित्य, वाङ्मय, उनके भाषण आदि का पूरी तरह से अभ्यास करना चाहिए । यह करने की बजाए यदि समाज अंध भक्ति में डुबकर उनके स्मारक बनावाएँगे, घर में उनकी प्रतिमाएँ श्रध्दा स्थान पर टँगी हुई मिलेगी

तब उस समाज के प्रेरणास्त्रोतों का अपमान होगा। इसलिए वह अपने समाज को बार-बार कहते हैं कि मेरे भक्त ना बनें बल्कि मेरे पाठक बनें। तब मैं आप लोगों को समझ में सकता हूँ, मेरे साहित्य से समाज को क्या सीखने को मिला आदि जान लेने के बाद मुझे समाज के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश करें। यही मैं आप लोगों से आशा कर सकता हूँ।

हमें अपनी अस्मिता बाचाएँ रखनी होगी और इसे बचाने वाले विचार अपनाने होंगे। हमारी वैचारिक परंपरा यही कहती है। मैंने भी यही किया है फिर आप लोग मेरी कही हुई सारी बातें यदि मानते हैं तो फिर तुम्हारा जमीर क्यों नहीं जागता। तुम अपने अतीत को भूल क्यों नहीं जातें। पहले भी गुलामी कर चुके हों और आज भी कर रहें हों। स्वाभिमानी जीवन जीने की अकांक्षा तुम लोगों में दिखाई नहीं देती है। इन सब का कारण मात्र एक ही है कि हमारा संपूर्ण समाज अंधश्रध्दा से ग्रस्त है। हम परिवर्तन की दिशा छोड कर जा रहे है। जो समाज सदियों से बहिष्कृत रहा है उसे सारी परंपराएँ ठुकरा देनी चाहिए। परंतु ऐसा नहीं होता है क्योंकि हमारे समाज में एकता नहीं है। फिर क्या हमारा समाज मानसिक गुलाम, अज्ञानी बनकर ही रहना चाहता है ? यदि तुम लोगों को मानसिक रूप से गुलाम नहीं रहना है तो सामाजिक परिवर्तन की दिशा पकड़नी होगी। वही दिशा समता मूलक समाज की स्थापना कर सकती है जिससे स्वाभिमानी जीवन जीने का स्वौभाग्य प्राप्त होता है। यह तभी संभव होगा जब हमारा समाज पारंपारिक गुलामी को ठुकराकर एक क्रांतिकारी जीवन जीने का आदि होगा।

अण्णा भाऊ साठे अपने समाज पर क्रोधित होते हुए दिखाई देते हैं। वे कहते हैं कि मेरे प्रति अपनी अंधभक्ति बंद करें और मुझे समझने के लिए मैंने

जो लिखा है उसका अध्ययन करें और जान ले कि मेरा समग्र वाङ्मय क्या समाज में चेतना जागृत करता है ? मैंने अपने साहित्य के माध्यम से वैचारिक आंदोलन की शुरूआत की है उसे यहीं पर खत्म ना करें बल्कि यह वैचारिकता संपूर्ण समाज में बनी रहनी चाहिए यही मेरी आशा है । ऐसा करने के बजाए मुझे अपना प्रेरणास्त्रोत समझकर मेरी जंयती मनाना, स्मारक खड़े करना, पूजा करना आदि मेरे वैचारिक आंदोलन का हिस्सा नहीं है । आप लोग मुझे अपना आदर्श मानकर इस तरह की बक्षिसें देंगे तो यह तुम्हारे आदर्शों का अपमान होगा । मैं आप लोगों से यही अपेक्षा करता हूँ कि मेरे नाम से उत्सव मनाने की बजाएँ घर-घर में मेरे साहित्य का अध्ययन हो और एक नए क्रांति का जन्म हो, यही मेरा स्वप्न है ।

5.3.4. अण्णा भाऊ साठे का मातंग समाज में परिवर्तन लाने का संदेश

अण्णा के साहित्य में समाज परिवर्तन का संदेश दिखाई देता है । उनके पात्र ऐसे समाज से है जिन्हें तत्कालीन साहित्य का हिस्सा कभी नहीं बनाया गया । अण्णा ने सर्व साधारण व्यक्ति को अपने साहित्य में स्थान देने का कार्य किया, साथ ही ऐसे व्यक्तियों को स्वाभिमानी जीवन जीने के प्रेरणा भी दी है । समाज में प्रतिष्ठा निर्माण करने वाला साहित्य उन्होंने इस समाज को दिया है । इनके साहित्य ने तत्कालीन समाज व्यवस्था को कटघरें में खड़ा किया था, साथ ही सर्व साधारण व्यक्ति को संघर्ष करने की शक्ति भी प्रदान की थी । हर व्यक्ति स्वाभिमान के लिए लड़ने के लिए तैयार होने लगा । इसीलिए वह अपने समाज को अग्रह करते हैं कि जो भी उन्होंने लिखा है वे उसका अध्ययन करें । उसके बाद जान लें कि किस प्रकार समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक बदलाव निर्माण होते हैं ।

अण्णा अपने समाज को कहते है कि मुझे तुम्हारे श्रम शक्ति और सामाजिक शक्ति की कल्पना है । तुमने इतिहास में एक लड़ाकु की भूमिका निभा चुके हों । इसलिए मेरा विश्वास है कि तुम लोग समाज में सामाजिक परिवर्तन ला सकते हों । इसके लिए तुम्हें अपना आत्मविश्वास जगाना होगा । और ये संकल्प लेना होगा कि हम समाज में क्रांति लाएँगे और समता मूलक समाज की स्थापना करेंगे । जिससे यह एहसास होगा कि सौ-साल जीवन जीने के बजाएँ एक दिन ही जिओ लेकिन स्वाभिमानी बनकर । इस तरह के संदेश देते हुए अपने पूर्वजों का याद दिलाते हैं – जिसमें फकिरा और लहुजी साळवे जैसे मातंग समाज के आदर्शों पर एक दृष्टि डालने का अग्रह करते हैं । वे अपने अतीत को याद करते हुए कहते हैं कि इस समाज व्यवस्था ने पीढ़ी दर पीढ़ी हमारा शोषण किया है । हमें पशुतुल्य जीवन जीने के लिए बाध्य किया था । हम कभी हिन्दू थे ही नहीं इसलिए हमें बहिष्कृत किया गया । अपने आप को हिन्दू समझने वाले तो आर्य थे जो बाहर से यहाँ आए थे और तुम तो इस देश के मूल निवासी हो । बाहर से आए हुए आर्यों ने इस देश पर आक्रमण करके सिंधु संस्कृति पर आघात किया था । वही लोग आर्य वैदिक संस्कृति के रक्षक है और तुम्हें अपना शत्रू मानते हैं । आर्य याने शोषित वर्ग है जिसमें क्षेत्रिय और वैश्य आते हैं । युध्द जितने वाले तुम्हारे जैसे लोगों को उन्होंने गुलाम बना दिया और उन्हीं लोगों ने तुम्हें शूद्र तथा अत्यंज बना दिया था । यहाँ की सिंधु संस्कृति में सभ्यता, समानता और समता बरकरार थी जो वैदीक संस्कृति से भी सुसभ्य तथा सुसंस्कृत थी । वैदीक संस्कृति सामाजिक विकृतियों पर आधारित थी । जिसका निर्माण आर्य भट्ट ने किया था । उसने इस देश के मूलनिवासियों पर आक्रमण कर उनके राज्य जित

लिए थे। उसके बाद उनका शोषण किया और उन्हें अपना गुलाम बनाया था। यह इतिहास तो सभी जानते ही हैं। उसने यहाँ के लोगों के नगर उध्वस्त किए थे, खून की नदियाँ बहाई थी। उन्हें उनके ही राज्य से बेदखल कर दिया गया और खूद राज करन लगें। यहाँ के सभी मूलनिवासी याने आज का बहुजन वर्ग गुलाम, शूद्र, अंत्यज तथा अस्पृश्य बन गया था यही तुम्हारा इतिहास है।

अण्णा मातंग समाज को अपना इतिहास जानने की सलाह देते है, डॉ. अम्बेडकर की किताबों के संदर्भ भी देते हुए कहते है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपनी किताब 'शूद्र कौन थे', 'अछूत कौन थे और वे अछूत कैसे बने' इन किताबों के माध्यम से अस्पृश्यों के इतिहास को उजागर करने का प्रयास किया है। वह डॉ. अम्बेडकर की बातों को देहराते हैं 'जो लोग अपना इतिहास नहीं जानते हैं वे लोग अपना इतिहास नहीं बना सकते।' वे कहते हैं कि जिस दिन तुम लोग अपना इतिहास जानोगे उस दिन तुम्हारे सामने केवल और केवल डॉ. अम्बेडकर की प्रतिमा ही होगी और कुछ नहीं। तब तुम लोग उनकी प्रतिमा के सामने क्षमा याचना करते हुए दिखाई दोगे। तुम लोग यह कहोगे कि डॉ. अम्बेडकर आप हमें क्षमा करें, क्योंकि आप के विचार हमें बहुत दिनों के बाद समझ में आ गए हैं। लेकिन आज से आप के विचारों पर हम चलेंगे और समाज में नई चेतना जागृत करेंगे। अब हम आप के सामने नतमस्तक रहेंगे। तब मैं समझूँगा कि हमारा मातंग समाज महानायक डॉ. अम्बेडकर को स्वीकार कर रहा है ऐसा करने पर ही आप मुझे अपना

प्रेरणास्त्रोत समझेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो तुम्हें यह अधिकार नहीं है कि तुम मुझे अपना प्रेरणास्त्रोत समझें।

जब तक मातंग समाज में चिंतन, मथंन या वैचारिक रूप से बदलाव दिखाई नहीं देता है तब तक मैं चैन से नहीं बैठूँगा। वे समाज में परिवर्तन चाहते हैं। उन्होंने लिखा है कि 'जग बदल घालुनी घाव, सांगुन गेले मला भिमराव' (दुनिया बदलने के लिए किया प्रहार कह गए मुझे भिमराव) यह उन्होंने बहिष्कृतों की दुनिया बदलने के लिए ही गीत गाया था। उनका मानना है कि यदि समाज में परिवर्तन आ जाता है तो दुनिया बदलने के लिए देर नहीं लगती है। यह कार्य महानायक डॉ. अम्बेडकर ने कर दिखाया है। उन्होंने समाज क्रांति का मूलमंत्र भी दिया है, संघर्ष, विद्रोह इस तरह के तत्वों का आचरण करने का संदेश भी दिया है।

अण्णा अपने समाज को याद दिलाते है कि इतिहास में अपना समाज कितना स्वाभिमानी था। मातंग समाज की दहशत थी। वे लोग किसी गाँव में जाने से अच्छे-अच्छे के पसीने छुट जाते थे। वर्तमान में भी मातंग समाज की वही दहशत देखना चाहते हैं। ऐसा होने से समाज में नई क्रांति आ सकती है ऐसा उनका विश्वास है, विश्वास ही नहीं बल्कि दृढ़ विश्वास है। यह भी विश्वास दिलाते हैं कि मातंग समाज एकजूट होकर सामाजिक क्रांति लाने में सफल हो जाएगा। वे अपना कहीं हुई बातें अमल में लाने की चाह रखतें हैं। मेरी बातें सिर्फ बातें नहीं बल्कि यह तो मेरे विचारों का संग्रह है और तुम्हारे उज्ज्वल भविष्य के विकास की दिशा का निर्देश और सामाजिक क्रांति का बहुमूल्य संदेश है। इसे व्यर्थ ना जाने दे यही आशा है। मेरी कहीं हुई बातों पर विचार मंथन करें, सामुहिक विषय बनाएँ जिससे मातंग समाज में

परिवर्तन की दिशा मिल जाएगी । सामाजिक आंदोलनों का हिस्सा बनोगे । वे अपने समाज में आपस में भेदभाव न करने का संदेश भी देते हैं । साथ ही आलसी न बने, लाचारी, अंधश्रध्दा, पुरानी परंपराएँ आदि को त्यागकर नए जीवन की शुरूआत करें यही मेरी अपेक्षा है । इस तरह का संदेश वह अपने समाज को देते हैं ।

अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज की प्रेरणा होने का हक़ अदा करते हुए कहते हैं कि जिस संस्कृति ने तुम्हें या तुम्हारे अपनों को अज्ञानी, असभ्य तथा समाज से बहिष्कृत किया था वह आज भी उस तरह के मनसुबे अपना रही है । सदियों से हम लोगों पर जुल्म ढाएँ हैं । आज अगर तुम लोगों ने समाज में बदलाव नहीं लाया तो इसका परिणाम हमारी आनेवाली पीढ़ी को भोगना पड़ेगा । क्योंकि यदि आज हम परिवर्तन लाने में नाकाम रहेंगे तो फिर से 'मांग' (मातंग), महार, आदिवासी आदि के गले में मटका और कमर में झाडू बँधा हुआ दिखाई दे सकता है । इस देश में फिर एक बार पेशवाई जन्म लेगी । इसलिए वे अपने समाज के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए दिखाई दे रहे है । पेशवाई शासन लागु होने के बाद की अवस्था क्या हो सकती है इस बात कल्पना करते हुए कहते हैं कि यदि ऐसा हुआ तो फिर से जातिवाद को महत्त्व दिया जाएगा जो अभी तक खत्म ही नहीं हुआ है । यदि जातिवाद आ जायगा तो मनुवाद की शक्तियाँ बढ़ जाएगी, सामंतशाही को जोर मिलेगा जिससे लोकतंत्र लड़खड़ा जाएगा जिसके कारण सत्ता, समृध्दि तथा प्रतिष्ठा फिर से एक विशिष्ठ वर्ग के हाथों में चली जाएगी और संपूर्ण बहुजन समाज को अनादर प्राप्त होगा । बहुजन समाज फिर से अस्पृश्य बन जाएँगा और गुलामी की जंजीरें फिर से उनके गले में डाल दी जाएगी । उन्हें लाचारी भरा जीवन

जीने के लिए बाध्य किया जाएगा । वह इस प्रकार वर्तमान सत्ताधारियों के कालचक्र की कल्पना करते हुए अपने समाज को जगाने की कोशिश करते दिखाई देते हैं । वे डॉ. अम्बेडकर के प्रबुध्द भारत के स्वप्न को याद करते हैं जिस पर उनका मानना है कि डॉ. अम्बेडकर ने बहुजन दलित तथा संपूर्ण अस्पृश्यों के उध्दारों का स्वप्न देखा है उसे यहाँ की सत्ता समाप्त करने में लगी हुई है । साथ ही साथ यहाँ के लोकतंत्र को नेस्तनाबूत करने की कोशिश में लगी हुई है । इसलिए हम सभी को सतर्क रहना होगा । वे यह भी कहते हैं कि मातंग समाज के कारण अपनी वैचारिकी का अपमान हो रहा है इस बात का भी अभास कराते हैं । आगे कहते हैं कि छत्रपती शिवाजी, महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर, पेरियार तथा संत गाडगे बाबा आदि हमारी वैचारिकी हमें लेकर चिंतीत रहेगी कि हमारा समाज किस दिशा में जा रहा है और तुम्हें यह आवाहन कर रही है कि तुम सभी एक होकर इसे दिशा से भटकने से बचाएँ ।

5.3.5. अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते है

अण्णा भाऊ साठे को यह विश्वास है कि मेरा समाज मेरे विचारों को ग्रहण कर सकता है इसलिए वे हर तरह के उदाहरण देकर समाज में चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं । मातंग समाज के लड़ाकू व्यक्तित्व लहुजी साळवे को याद करते हुए समाज में क्रांति लाने की प्रेरणा देते हैं । वे कहते हैं कि मुझे उन्होंने कहा था कि ‘अण्णा तुमने बहुजन समाज को जिना सीखाया है जिसके लिए तुमने बहुत कष्ट उठाएँ हैं । तुम ने अपनी शायरी, कहानी या अपने साहित्य के माध्यम से संपूर्ण बहुजन समाज में चेतना की ज्योत जलाई है । इस समाज में बदलाव लाने का प्रयास तुमने किया है । तुम्हारी लाख

कोशिशों के बावजूद भी अपने मातंग समाज में चेतना जागृत नहीं हो पायी है। इस बात का मुझे आश्चर्य होता है। वे लहुजी के बहाने मातंग समाज के नेताओं की राजनीति का भी पर्दापाश करते है और कहते है कि मातंग समाज ने सिर्फ तुम्हारे नाम के स्मारक खड़े किये है, इसमें भी उनकी अपनी राजनीति है। राजनीति के पीछे लगकर यह समाज बर्बाद होता जा रहा है और समाज में बदलाव लाने में असफल रहा है। इसलिए मुझे ही यह जिम्मेदारी दी गयी है कि मैं इस समाज में बदलाव लाने का काम करूँ। यदि तुम ऐसा करने से रह गए हो तो हमें पहले जैसा ही जीवन जीने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। तुम्हें इस समाज में वैचारिक क्रांति लानी होगी और ऐसा कार्य तुम जैसे लेखक ही कर सकते हैं। तुम तुम्हारे ओजस्वी विचारों से मातंग समाज में एक नई चेतना का निर्माण कर सकते हो। क्योंकि यह समाज तुम्हें अपनी प्रेरणा समझता है और मुझे अपनी अस्मिता।' यह शब्द लहुजी साळवे के रूप में अण्णा ने ही अपने समाज को सिर्फ उनका नाम लेकर एक प्रकार का संदेश समाज तक पहुँचाने का काम किया है। वे अपने समाज को कहते है कि मेरे भाईयों क्रांति पिता लहुजी साळवे के विचार जब भी मेरे ख्याल में आते हैं तब मैं कलम उठाकर लखने लगता हूँ। आज भी मैंने वहीं किया है तुम लोगों का स्वाभिमान जगाने के लिए मेरा लिखना बहुत जरूरी है। हमारे समाज में एकता लाना हम सभी का ध्येय होना चाहिए। हमारे एकता से एक नई क्रांति को जन्म मिल सकता है। यदि हम एक हो जाते है और साथ मिलकर लड़ते है तो बहुत कुछ बदल सकता है। हमारी एकता में कितनी शक्ति है इतिहास इससे परिचित है। इसलिए सामाजिक संघर्ष का हिस्सा बनने का प्रयत्न करों।

संघर्षों से ही परिवर्तन आ सकता है । संघर्षों से ही समाज प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है और समाज में बदलाव भी आ जाते है । क्योंकि संघर्ष ही मानव मुक्ति का शस्त्र है । हम सब इस बात से वाकिफ है समाज में संघर्ष की भूमिका रहेगी तो ना गुलामी रहेगी और ना ही लाचारी । समाज का हर व्यक्ति स्वतंत्र रूप से जीने की आशा व्यक्त कर सकता है । हाँ यह बात तो सही है कि संघर्ष करना बड़ा कठीन होता है मगर अंततः संघर्ष में यश प्राप्त होता ही है । जिससे समाज में चिंतन का प्रमाण बड़ जाता है, चेतना जागृत होती है और समाज एक नए प्रवाह में चला जाता है ।

अण्णा ने अपने ही गीतों के उदा. देकर संघर्ष करने की प्रेरणा तथा इस समाज में चेतना जागृत करने का प्रयास किया है । वे अपने अंदोलनों की भूमिका अपनाने वाले गीत प्रस्तुत करते हैं । 'पुढेच जाता पुढचे पाय, मागे आता आहेच काय, जरी पसरली वाटेवरती ही मरणाची काय । पुढेच जाता पुढेच पाय, मागे आता आहेच काय ?' (आगे बढ़ते ये अपने कदम, अब पीछे रहा ही क्या, रास्ते में मौत का साया मिले फिर भी, आगे बढ़ते अपने कदम, अब पीछे रहा ही क्या ?) इस तरह के उदा. देकर समाज को एक नई भूमिका अपनाने का संदेश देते है । हर घर से एक सामाजिक कार्यकर्ता निर्माण होने की आशा जताते हैं । उनका मानना है कि आंदोलन के बिना समाज में परिवर्तन आना संभव ही नहीं है । आगे कहते है तुम्हें यह संकल्प लेना होगा कि हम जब तक जिएँगे समाज में बदलाव लाने के लिए ही जिएँगे । इस तरह के संकल्प करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता यदि समाज में रहेंगे तो निश्चित ही समाज में परिवर्तन आ सकता है । उसी प्रकार समाज में विद्वान होंगे तो वे

अपने विचारों से समाज में चेतना जागृत करेंगे । नौकरी पेशा वर्ग अर्थात् डॉक्टर, इंजिनियर, प्रो. आदि का कर्तव्य होगा कि वे लोगों के बीच जाकर समाज प्रबोधन करें । लेखक वर्ग के कार्य होंगे कि वे मातंग समाज की व्यथा और कथा को शद्बबद्ध करें जिससे समाज के चित्र व्यवस्था तक पहुँच सकें । इस तरह के बदलाव वह मातंग समाज में चाहते हैं यदि ऐसा होता है तो वह मातंग समाज के लिए स्वर्णयुग माना जाएगा । वह अपने समाज के हर व्यक्ति को इस तरह की शपथ लेने को कहते है । स्वाभिमानी बनकर समाज में सामाजिक क्रांति लाने की अपेक्षा रखते हैं ।

अण्णा भाऊ साठे मातंग समाज को ऐसा कहते है कि तुम लोगों में स्वाभिमान बना रहें इसलिए मैंने मातंग समाज के महानायक 'फकीरा' को तुम्हारे आदर्श के रूप में तुम्हारे सामने उनके व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । जिसके माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि क्रांतिकारी पुरूष का व्यक्तित्व होता कैसा है । मातंग समाज की युवा पीढ़ी को फकीरा का रूप धारण करने की मांग करते हैं । वे फकीरा के बारे में कहते हैं कि फकीरा ने इस विषमता के खिलाफ क्रांति की थी, वह अन्याय के विरूद्ध मर मिटने वाला ज्वालामुखी है । लेकिन फकीरा के गुण मातंग समाज के युवा पीढ़ी में दिखाई नहीं देते हैं । फकीरा के चरित्र को देखकर मातंग समाज को अन्याय-अत्याचार के विरूद्ध लड़ने की प्रेरणा मिलनी चाहिए । परंतु ऐसा हुआ नहीं क्योंकि इस समाज में सामाजिक चेतना जागृत नहीं हुई है । जबकि फकीरा ने कभी लाचारी स्वीकारी ही नहीं है और इन लोगों के जीवन में लाचारी के शिवाय और कुछ नहीं मिला है । इस प्रकार अण्णा भाऊ मातंग समाज के युवा और तत्कालीन समाज का युवक याने

फकीरा इन दोनों के स्वाभिमान के चित्र दिखाने का प्रयास करते हैं। वह कहते हैं कि फकीरा अकेला ही मर्दों की तरह लड़ता रहा, अपनों के लिए उसने फाँसी पर चढ़ना स्वीकार किया। मातंग समाज का एकमात्र क्रांतिकारी पुरूष इतिहास में अपनी जगह बना पाया है। इसलिए वह अपने समाज को अपना इतिहास और स्वाभिमान बचाकर रखने की माँग करते हैं। वे समाज को एक मूलमंत्र देते है और कहते हैं- संघर्ष करो, क्रांति के दीप जलाओं, अपनी वैचारिकी बचाकर रखो, शिक्षित बनो जिससे समाज में पढ़ने की इश्च्राशक्ति जागृत होगी, युवा वर्ग का ज्ञानार्जन होगा।

वर्तमान मातंग समाज की अवस्था देखकर अण्णा भाऊ साठे चिंता व्यक्त करते हुए दिखाई देते है। समाज के तथाकथित नेताओं को आड़े हाथों लेते है और कहते है कि अपने आप को फकीरा का वारीस बताने वाले 'मांग' (मातंग) समाज का व्यक्ति कभी नहीं हो सकता जो नेताओं के तलवें चाटता हो। फकीरा का व्यक्तित्व 'मांग' (मातंग) जाति का प्रमाण देता है जो इमानदार होता है, जिनका इतिहास शूरवीर मर्दों का है। वह जाति के लिए या माँ समान मिट्टी के लिए प्राणों की आहोती देता आया है जो प्रमाणिकता और सत्य का पूजारी कहलाता है। क्योंकि बेईमानी इनके खून में ही नहीं है, यह जाति योध्दाओं के लिए जानी जाती है। इनका शूरता, वीरता तथा इमानदारी के साथ अटूट नाता है। इसलिए वह उन नेताओं के लिए कह रहें हैं कि जो व्यक्ति अपनी जाति के साथ, सगे संबंधियों के साथ बेईमानी करता हो, लाचारी स्वीकार करने के लिए मजबूर करता हो, किसी के तलवे चाटता हो, जी हुजूरी करता हो, जाति के साथ बेईमानी करके दौलत कमाना

चाहता हो ऐसे करते हुए अपनों को भूल जाता हो वह व्यक्ति 'मांग' (मातंग) जाति का हो ही नहीं सकता। इस प्रकार समाज के बेईमान नेताओं को आड़े हाथों लेते हैं। उसे समाज का लुटेरा घोषित कर देते हैं। समाज बेचने की कल्पना करने वाले व्यक्तियों को जाति का न होना का प्रमाणपत्र दे देते हैं। उनकी नजर में फकीरा एक अमर व्यक्ति है जिसने अपने समाज के लिए संघर्ष किया था और वे ऐसे व्यक्ति को ही सच्चा 'मांग' कहते है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति समाज में उन्नती ला सकता है, विकास और परिवर्तन की दिशा ढूँढ़ता है। वही समाज में क्रांति ला सकता है। क्योंकि सच्चा व्यक्ति समाज के हर संकट को अपना समझकर लड़ता हो वही स्वाभिमानी कहलाता है। स्वाभिमानी व्यक्ति के माध्यम से वे फकिरा के संवाद को प्रस्तुत करते हैं- "किसी की अब्रू लुटकर खाना नसीब होने से पेट नहीं भरता, क्योंकि मौत का सामना कर के ही व्यक्ति जन्म लेता है और एक दिन सभी को मरना ही है। मगर ऐसी जगह पर मरना जहाँ हमारी इज्जत, औलाद और हमारी माताओं को जिसने बाँधकर रखा है उनका जीना हाराम करते हुए मरेंगे। हम जरूर मरेंगे लेकिन किसी अपने को मरने नहीं देंगे और ना ही अपनी जगह किसी की होगी, क्योंकि यह पेड़, ये मिट्टी अपनी है और इसे कभी मौत नहीं आ सकती। हम कब सलामत थे, माँ की कोख में, नहीं जब हम अपनी माँ के पेट में थे तब से खून करते आ रहे हैं, लड़ते आए हैं, मरते आए हैं, हम कभी सलामत थे ही नहीं। हम लोग इन्सान होते हुए भी हम पर कितने जुल्म हुए है। हमें तीन बार हजेरी देनी पड़ती है और वो लेता कौन है ? गाँव का पाटील। यदि हमें कहीं जाना है तो भी पाटील ही लिखकर देगा अगर वह

ना जाने को कहता है तो वही मान लेना पड़ेगा । यह सरासर अन्याय है । अरे बाबा हम जीवन भर भाग रहे हैं और मौत हमारा पीछा कर रही है । हम कहाँ तक भागेंगे ? पीछे मुड़कर भागने की बाजाएँ आगे बढ़कर उनका सामना करना चाहिए । क्योंकि इस गाँव के लिए प्राणों की अहोती देनेवालों की औलादें हैं हम ।"[5]

उपर्युक्त कथन फकीरा का है जिसका रूप तुम लोगों को धारण करना है । क्योंकि उपेक्षित समाज में जन्म लेने वाला फकीरा अपनों की मुक्ति के लिए यहाँ की समाज व्यवस्था तथा ब्रिटिश राज्य व्यवस्था के विरूध्द अंत तक लड़ता रहा । अंत में उसे यह एहसास हुआ कि मेरे लड़ने से मेरे अपने मारे जाएँगे इसलिए वह समर्पण करता है । तुम्हें भी फकीरा के इस स्वाभिमान को बचाना होगा । वह आगे कहते हैं कि अब मैं दूसरा कुछ नहीं करूँगा लेकिन फकीरा की तरह मातंग समाज के पात्र निर्माण करूँगा । अपनी लेखनी के माध्यम से यहाँ की समाज व्यवस्था को हर वक्त सवाल करता रहूँगा कि हमारा समाज उपेक्षित क्यों है । तुम्हारें बारे में भी लिखता रहूँगा तब तक लिखता रहूँगा जब तक लुम लोग फकीरा की तरह स्वाभिमानी नहीं बनेंगे । मेरे साहित्य का यही उद्देश्य होगा कि अस्पृश्य समाज के हर व्यक्ति में स्वाभिमान लौटकर आए और वह अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए सिध्द रहें । उसमें मातंग समाज की युवा पीढ़ी को मैं स्वाभिमान की लड़ाई लड़ते हुए देखना चाहता हूँ जिससे डॉ. अम्बेडकर के प्रबुध्द भारत के स्वप्न को पूरा किया जा सकता है । हमारा मातंग समाज उस वक्त सामाजिक क्रांति के महानायक का साथ नहीं दे रहा था जिसे पूर्ण करने का अवसर मातंग समाज को मिल सकता है । अगर

मातंग समाज की युवा पीढ़ी बड़ी मात्रा में संघर्ष करने के लिए उतरेगी । यही मेरी आप लोगों से अपेक्षा है ।

5.4. अण्णा भाऊ साठे के साहित्य में मातंग समाज का चित्रण

अण्णा भाऊ ने अपनी अनेक कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और पारिवारिक समस्यायों को दिखाने का प्रयास किया है । अण्णा भाऊ की कहानियों में नाट्य रूप देखने को मिलता है । वही जीवन का वास्तविक रूप संघर्ष के वातावरण में खेलता है । उनकी कहानियों के पात्रों में स्वतंत्र आंदोलनकारी नायिकाएँ और निम्न वर्ग के वीर नायक प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं । अण्णा भाऊ साठे की कहानियों के पात्र संघर्ष करते हुए नजर आते है । रत्नकुमार सांभरिया के शब्दों में कहे तो- “कहानी का पात्र चाहे कितना भी छोटा हो, उसकी प्रवृत्ति पीपल के बीज की तरह होनी चाहिए पीपल का छोटा सा बीज पत्थर को फ़ाड़ कर उग जाता है और अपना आकार गृहन कर लेता है ।”[6] यह सारे गुण लोकशायर अण्णा भाऊ साठे की कहानियों के पात्रों में देखे जा सकते हैं ।

अण्णा भाऊ साठे के साहित्य का अवलोकन करते हुए मराठी दलित साहित्य के वरिष्ठ लेखक प्रो. गंगाधर पानतावने लिखते हैं “अण्णा भाऊ साठे ने शायरी, कहानी और उपन्यासों की रचना की है । उसमें अनुभव ही सत्य है, बाकी सब झूट है यही उनके जीवन का सूत्र रहा है । लेखक की प्रवृत्ति यदि गंभीर होती है वह लेखक अपने लेखन में सत्य को दर्शाने का प्रयास करता है और यह प्रवृत्ति अण्णा भाऊ साठे में देखने को मिलती है । उपेक्षित जीवन में भोगे हुए दुःख तथा क्रूर सत्य को शद्बबद्ध करने वाले लेखक के

विचार तेजस्वी होते हैं । उसे जिस सत्य का दर्शन होता है उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है । अण्णा ने बहुत दुःख झेले हैं, दरिद्रता के साथ तो उनका अटूट रिश्ता ही रहा है । फिर भी वह लिखते रहें । साहित्य जगत में ऐसे अनेक लेखक उदाहरण के रूप में मिलेंगे जो अनुभव ना होते हुए भी कल्पना के आधार पर साहित्य में उँचाईयाँ हासिल कर चुके हैं । परंतु अण्णा भाऊ ने ऐसा नहीं किया । साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने सिर्फ पेट भरने का काम नहीं किया । उन्होंने तथाकथीत साहित्य में एक नए साहित्य को जन्म दिया । अण्णा अपनी मर्यादा जानते थे । वह कहते थे कि 'मैंने जो जीवन जीया है, देखा है, जो मेरा अनुभव रहा है वही मैं लिखता हूँ । मैं कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरने वालों में से नहीं हूँ । इस मामले में मैं अपने आप को मेंडक समझता हूँ ।' यह उनकी साहित्य के प्रति प्रामाणिकता थी इसे जाने बगैर उनकी आलोचना नहीं की जा सकती । उनका विषय भले ही अलग रहा हो, उसके आधार पर उन पर जो भी आरोप लगाए जाएँगे वे सारे आरोप अर्थहीन माने जाने चाहिए ।"[7] अण्णा के साहित्य में उपेक्षित समाज संघर्ष करता दिखाई देता है । जिसे तथाकथीत साहित्य ने कभी पात्रों के काबील ही नहीं समझा था । लेकिन यहाँ अण्णा के साहित्य में वहीं वर्ग अपने स्वाभिमान के लिए लड़ता हुआ दिखाई देता है । उन्होंने अपनी शायरी के माध्यम से तो एक नई क्रांति ही लाई थी । वे शायरी के बारे में अपने विचार व्यक्त करते है । उन्होंने नागपूर में 'मराठी शायरी वाङ्मय' विषय पर बात करते हुए यह कहा था "शायरी ने ऐसे दलित पीड़ित 'मांग' महारों के घरों में जन्म लिया । शायरी जो है वह साधारण व्यक्ति, सामान्य शब्दों में, सामान्य

लोगों के लिए लिखा हुआ अप्रतिम प्रकार है । संत कवि रामायण महाभारत आदि गाते थे, तब शूद्र अपनी झोपड़ी में बैठकर अपनी ढपली पर थाप मारते हुए शायरी गाया करते थे । माना कि शूद्रों के हाथों में कलम नहीं थी परंतु मौखिक रूप धारण करने वाली शायरी आज भी जिंदा है । श्रृंगार और तत्त्वज्ञान शायरी का मुख्य विषय बन गऐ । शायरी को साथ देने वाले 'तुणतुणे' का भी जन्म हुआ । शूद्रों द्वारा निर्माण की गयी शायरी इस राष्ट्र के लिए अनमोल देन बन गयी ।"[8]

अण्णा भाऊ साठे के साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखते है 'अगर प्रतिभा को जीवन के सत्य का दर्शन नहीं होता है तो प्रतिभा, अनुभूति वगैराह सब निरर्थक होते हैं । यदि सत्य ही जीवन का आधार नहीं होगा तो प्रतिभा उस आईने के तरह होगी जो अंधेरे में रखा होता है, जिसका कोई उपयोग नहीं होता । हमारे लाख कोशिशों के बावजूद हमें प्रतिबिंब दिखाई नहीं देते हैं । जिससे कल्पना निर्बल बन जाती है । क्योंकि प्रतिभा को वास्तविकता की जरूरत होती है । ठीक उसी प्रकार कल्पना को भी वास्तविक जीवन के पंखों की आवश्यकता होती है ।' वे आगे कहते है 'हमें गंगा की तरह निर्मल साहित्य चाहिए, हमें मांगल्य चाहिए । हमें मराठी साहित्य की परंपरा पर अभिमान है । क्योंकि मराठी साहित्य को हमारे जीवन संघर्षों से ही प्रसिद्धि मिली है । जब दलितों की परछाई भी असाह्य थी तब महानुभाव पंथों ने सभी को का ज्ञान होना चाहिए इसलिए संघर्ष किया था और कहा था कि ज्ञान ही मोक्ष है । इस तरह के संघर्ष करने वाले साहित्यकार हमारे ही पूर्वज थे ।'

अण्णा भाऊ साठे ने जिन लोगों को अपने साहित्य में स्थान दिया था। वे सब उनके अपने हैं । उनके जीवन के प्रति अण्णा को अपार श्रध्दा थी । इसीलिए वे उनके जीवन की सत्य कथा को शद्बबद्ध करने में सफल रहें हैं । उनके साहित्य की चर्चा विश्वस्तर पर की जा रही थी । अलग-अलग देशों में उनकी कृतियों का अनुवाद किया जा रहा था । लेकिन किसी भी भारतीय भाषाओं में उनकी कृतिका अनुवाद न के बराबर ही हुआ है । अण्णा भाऊ जिनके लिए लिखते हैं उनके बारें में उन्हें रशिया में एक संपादक ने प्रश्न किया था उनका प्रश्न इस प्रकार है 'तुम्ही कथा कशा लिहीता ?' (आप किस प्रकार की कहानी लिखते हैं) अण्णा जवाब देते हैं "मेरी अपने जीवन के प्रति बहुत निष्ठा है और उन लोगों के प्रति भी जिनके बारे में मैं लिखता हूँ, उन्हें काफी पसंद भी करता हूँ । उनकी श्रमशक्ति भी श्रेष्ठ है । क्योंकि वे जीवन जीते भी है और दूसरों को जीवन कैसे जीना है यह सीखातें भी हैं । उनकी शक्ति के आधार पर ही यह दुनिया चलती है । उनकी मेहनत और यश प्राप्ति पर मेरा विश्वास है । उन्हें असफल बनाना मुझे पसंद नहीं है ऐसा करने में मुझे ड़र लगता है । यह धरती शेषनाग के फन पर टीकी हुई नहीं है बल्कि दलितों ने इसे अपनी हथेली पर झेल रखा है । ऐसा मैं मानता हूँ ।"[9]

अण्णा भाऊ साठे दलित साहित्य के विषय में कहते हैं कि 'दलितों के विषय में लिखने वालों को सर्वप्रथम उनसे एकरूप होना पड़ेगा । वह गुलाम नहीं है, उनके हथेली पर यह दुनिया टीकी हुई है इसका ऐहसास उन्हें दिलाना होगा । उनके जीवन का उद्धार करना होगा । जिसके लिए लेखकों को हमेशा अपनी जनता के साथ रहना पड़ता है । क्योंकि जो लेखक जनता

के बीच बना रहता है, जनता भी उसी के साथ रहती हैं। जनता को पीट दिखाने वालों को साहित्य भी पीट दिखाता है। विश्व के श्रेष्ठ विचारकों ने साहित्य को तिसरी आँख से नवाजा है। वहीं आँख हमेशा जनता पर ही बनी रहनी चाहिए।' (दलित साहित्य सम्मेलन के उद्घाटन शत्र का भाषण 2 मार्च 1958)

इसी प्रकार साहित्य को लेकर दलित पैंथर के संस्थापक ज. वी. पवार. 'मराठी के अंबेडकरवादी साहित्य का इतिहास' में डॉ. अम्बेडकर के विचार प्रस्तुत करते है जो डॉ. अम्बेडकर ने नागपुर स्थित विदर्भ साहित्य संघ के मंच से कहे थे। "मुझे साहित्यकारों को स्पष्ट रूप से कहना है कि उदात्त जीवन मूल्यों एवं सांस्कृतिक मूल्यों को आप अपने साहित्य कृति द्वारा समाज के सामने लाईए। अपना लक्ष्य संकुचित और सीमित कदापि मत कीजिए। अपनी रचनाशीलता के उजाले को गाँव और देहात में पसरे हुए अंधकार को दूर करने हेतु प्रज्ज्वलित कीजिए। अपने देश में उपेक्षितों की, वंचितों की बहुत बड़ी दुनिया है, इस तथ्य और सत्य को नहीं भूलना चाहिए। उनकी पीड़ा, उनकी वेदना व दुःख दर्द अच्छी तरह समझ लीजिए और अपने साहित्य कृति, अपने रचना कर्म द्वारा उनका जीवन उन्नत करने हेतु लगातार प्रयास कीजिए। इसी में सच्ची मानवता है।"[10] डॉ. अम्बेडकर के यह साहित्यिक विचार अण्णा भाऊ साठे की रचनाओं पर सही रूप से लागु होते है। डॉ. अम्बेडकर की इस व्याख्या से लगता है कि अण्णा ने किसी न किसी रूप में इस व्याख्या को समझने और उसे प्रयोग में लाने का प्रयास भी किया है।

अण्णा भाऊ साठे एक ऐसे कथाकार है जिन्होंने मराठी में अपनी एक विशेष छाप छोड़ी है । अण्णा का कथा साहित्य उनके अपने परिवेश का चित्रण करता है । यह ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने अपने पात्रों को अपना समझा, उनके दुःख, दर्द को अपना समझकर इस समाज व्यवस्था को कटघरें में खड़ा किया है । अण्णा की कहानी के विषय में बात की जाए तो उनके पहले कहानी संग्रह 'खुळंवाडी' की प्रस्तावना में मराठी के प्रसिध्द साहित्यकार आचार्य अत्रे लिखते हैं "अण्णा भाऊ साठे की कहानियों का इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है कि यह कहानियाँ जीवन जीने के लिए संघर्ष करने वालों की कहानियाँ है । उनके पात्र कच्चा खानेवालें, हार मानने वालों में से नहीं है बल्कि इन सभी को स्वाभिमान से जीना है । अक्रामक वृत्ति अपनाने वालों के साथ संघर्ष कर के जीत हासिल करनी हैं ।"[11] आचार्य अत्रे ने उपर्युक्त कथन के माध्यम से अण्णा भाऊ साठे की कहानियों के मर्म को व्यक्त किया है ।

अण्णा का पहला कहानी संग्रह 'खुळंवाडी' 1957 में प्रकाशित हुआ था । लेकिन उनकी कहानियाँ पहले से ही अलग-अलग साप्ताहिकों में प्रकाशित हो चुकी थी । उनकी पहली कहानी 'माझी दिवाली' (मेरी दिवाली) 'मशाल' नामक साप्ताहिक में पहले कहानी संग्रह के प्रकाशित होने से पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी । उसके बाद शायरी के साथ-साथ अण्णा कहानियाँ लिख रहें थे । वे लगातार लिख रहें थे और उनके 13 कहानी संग्रह प्रकाशित हुए है जो इस प्रकार हैं - खुळंवाडी, बरबाद्या कंजारी, भानामती, फरारी,

लाडी, गजाआड, आबी, कृष्णकाटच्या कथा, चिरानगरची भूते, निखारा, नवती, पिसाळलेला माणूस, गुर्हाळ आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं ।

अण्णा भाऊ का कथा साहित्य उनके अपने अनुभवों का सार है । वह अपने कहानी संग्रह की प्रस्तावना में इस बात को जाहीर करते हैं । उन्होंने 1960 में प्रकाशित अपने कहानी संग्रह 'बरबाद्या कंजारी' की प्रस्तावना में इस बात का जिक्र किया है कि 'मैं जो जीवन जीता हूँ, जो देखता हूँ, जो भी मेरे अनुभव है वहीं मैं लिखता हूँ, कल्पना के पंख लगाकर उड़ान भरने का आदि मैं नहीं हूँ, उस मामले में मैं अपने आपको मेंडक समझता हूँ । मेरी कहानियों के पात्र किसी ना किसी रूप में मेरे जीवन का हिस्सा रहें हैं । जात पंचायत में जब 'बरबाद्या' का कान काँट दिया गया था तब मैं अंधेरे में बैठकर देख रहा था । 'सुलतान' और 'भोमक्या' यह दोनों भी मेरे साथ अमरावती के मध्यवर्ती जेल में कैद थे । हम तीनों पर भी खून करने, डकैती डालने के आरोप लगाए गए थे । मकुल मुलाणी तो मुझे मामा कहा करता था । गधे का माँस खाने वाला तुका अभी जिंदा है । फर्क सिर्फ इतना है कि उसे गधे का मांस पचन नहीं हुआ है । मेरे पात्र किसी ना किसी रूप में आज भी जिंदा है ।'

'उपकाराची फेड़' (अहसानों का बदला) इस कहानी में भारतीय समाज व्यवस्था में चमार और मातंग जातियों में भी ऊँच-नीच की भावना बढ़ने लगी है इसका चित्रण देखने को मिलता है । **स्मशानतलं सोन (कब्रिस्तान का सोना)** यह अण्णा भाऊ साठे की प्रसिद्ध कहानी है । इस

कहानी का नायक भीमा है जो मातंग जाति का है । वह अपने परिवार के साथ पेट का गुजारे करने के लिए मुंबई चला जाता है । वहाँ जाकर अच्छी तरह से खदान में काम करता है । कुछ कारणों से काम बंद हो जाता है तब वह कब्रिस्तान में जाकर कब्र खोदने का काम करता है और उसमें से सोना निकालकर बेचता रहता है । लेकिन उसकी यह लालच उसे अपंग बना देती है । सोना निकालते वक्त अचानक उस पर जंगली जानवर हमला करते हैं । इस हमले में उसकी उंगलियाँ उस कब्र के मुखोटें में दातों तले अटक जाती हैं जो निकलने का नाम नहीं लेती अंत में उसकी उँगलियाँ कट जाती हैं । **'कोंबड़ीचोर' (मूर्गी चोर)** इस कहानी में स्वाधीनता के बाद भी दरिद्र और भूखमरी के कारण सामान्य व्यक्ति किस तरह चोरी करने के लिए मजबूर हो जाता है इसका चित्रण किया गया है । **'बंडवाला' (आंदोलनकर्ता)** इस कहानी में जमीदारों के अन्याय के खिलाफ़ लढ़ने वाला मातंग समाज का तरूण है जो जमीदारों का विरोध करता है और गरीबों को उनकी जमीन लौटा देता है । **'बरबाद्या कंजारी'** इस कहानी में मुंबई के झोपड़पट्टी के घुमंतू समाज की दयनिय स्थिति और जात पंचायत की अमानवीय प्रथा का दर्शन कराती है । इस जात पंचायत को आवाहन देकर बरबाद्या और उसकी बेटी किस तरह से आंदोलन खड़ा करते हैं इसका चित्रण किया गया है । **'वळण'** और **'सापळा'** इन कहानियों में डॉ. बाबासाहेब अम्बेड़कर के नेत्वृत्व में छेड़े गए आंदोलनों से अस्पृश्य समाजों में जो नए आत्मसम्मान के भाव उभर कर आए है इसका चित्रण देखने को मिलता है । **'गजाआड़' (सलाखों के पीछे**) इस कहानी संग्रह की कहानियों में लेखक को जेल में जो कैदी मिले थे उनमे से संवेदनशिल

व्यक्ति की मजबूरी के दर्शन को बयाँ करने वाली कहानियाँ हैं। **'चिरानगर के सैतान'** इस कहनी संग्रह की कहानियों में लेखक ने अपने जीवन के कुछ साल मुंबई के घाटकोपर के चिरानगर में बिताएँ थे, वहाँ के गरीब, शराबी, व्यभिचारी, चोरियाँ और मारामारी करने वाले मवाली, उपेक्षित, घुमंतू समाज के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ है । **'जिवंत काड़तूस' (जिंदा काड़तुस)** इस कहानी में 1942 में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनके मित्रों के व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है । **'बहका हुआ मनुष्य'** इस कहानी में ईनाम काम नहीं करता है तब एक लाचार व्यक्ति किस तरह अपनी और अपने परिवार की भूख मिटाता है इसका चित्रण किया गया है । **'विष्णुपंत कुलकर्णी'** इस कहानी में अकाल आने पर महार और मातंग समाज के लोग किस तरह विवश होकर चोरी करते हैं और पूरे गाँव में अनाज बाँटते इसका चित्रण किया गया है । (1918 में घटी एक सत्य कथा है) **'रंगू'** यह कहानी सामाजिक परिवर्तन को प्रस्तुत करती है । इस कहानी में एक प्रेम कहानी को दिखाया गया है जो समाज में फैली विषमता और जातपाँत को मिटाने का संदेश है । अण्णा भाऊ साठे ने अपनी कहानियों के माध्यम से महार और मातंग समाज के दुःख दर्द की व्यथा और कथा को व्यवस्था के सामने लाने का प्रयास किया है। उपेक्षित समाज को मराठी साहित्य जगत में स्थान देने वाले वे पहले दलित लेखक हैं। तीसरी चौथी तक शिक्षा ग्रहण न करने वाले अण्णा भाऊ साठे ने मराठी साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है । उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से दलित

साहित्यकारों, कहानिकारों को भी रास्ता दिखाने का कार्य किया है । यह सत्य भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता ।

उपन्यास :

'अण्णा भाऊ साठे' यह नाम मराठी साहित्य को नई ऊँचाईयाँ प्रदान करने वाले नामों में से एक हैं । अण्णा भाऊ साठे ने भारतीय समाज को जागृत करने के लिए ना सिर्फ साहित्य-सृजन किया अपितु समाज सुधार के कार्यों में हिस्सा भी लिया । उनकी पहचान एक श्रेष्ठ साहित्यकार के साथ-साथ समाज सुधारक के रूप में भी विश्व विख्यात है । अण्णा भाऊ साठे ने साहित्य की विविध विधाओं में अपना साहित्य-सृजन किया है । अण्णा भाऊ को मराठी साहित्य में प्रसिद्धी इन विधाओं के कारण ज्यादा मिली है जिनमें हैं- उपन्यास, कहानी, नाटक, पोवाडा और लावणी । उनके साहित्य को ना सिर्फ भारत में बल्कि विदेशों में भी प्रसिद्धी मिली है । उनके कई उपन्यासों का रूसी (रशियन) भाषा में अनुवाद हुआ हैं । भारतीय समाज का यह दुर्भाग्य है कि अब तक उनके साहित्य का हिंदी में अनुवाद नहीं हो सका । जातीय संकिर्णताओं की वजह से आज भी उनका साहित्य हिंदी में अनुदित नहीं हो पाया है । 'फकीरा' उपन्यास ही एक अपवाद है लेकिन इसकी अनूदित प्रति सामान्य पाठकों को अब तक उपलब्ध नहीं हो पायी है ।

अण्णा भाऊ ने अपने उपन्यास लेखन का आरंभ 1948 से किया था । उस वक्त वह मुंबई में रहते थे । वहाँ पर रहते हुए बाद कम्युनिष्ठ पार्टी का हिस्सा बने और मजदूर आंदोलनों में सक्रीय हुए थे जिससे उनके विचारों को प्रेरणा मिलने लगी थी । उनकी लेखन के प्रति इच्छा जागृत हुई और अपने

परिवेश में रहने वालें अपने लोगों के चित्र सामने आते रहें जो जुल्म के खिलाफ आवाज उठाया करते थे । उन्होंने जीवन के संघर्षों को अपने लेखन का विषय बनाया और साहित्य जगत में एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य को सब के सामने लाने का प्रयास किया है । उनके साहित्य का परिवेश, निसर्ग चित्रण, तथा ग्रामीण जीवन का चित्रण आदि विशिष्ट है । उनके साहित्य में तमाशा, वाघ्यामुरळी, (मातंग लोक उत्सव) इस प्रकार की सामाजिक प्रथाएँ, भिखारियों की झोपड़ियाँ, डकैती करने वाले नायक, (मांगकी) गाँवकी की प्रथा, पुलिस चौकी, जेल आदि । उसी प्रकार शहरी जीवन का भी चित्रण वह करते हैं । महानगरीय झेपड़पट्टी, गुन्हेगारों की बस्तियाँ तथा उसमें मानवी जीवन की विकृत परिस्थितियाँ, ये सारी चीजें उनके अनुभवों का सार माना जाता है । जिसने मराठी साहित्य की व्यापकता बढ़ाने का कार्य किया है ।

'अण्णा भाऊ साठे' के उपन्यासों में दलित, भूमिहीन, स्त्री, मजदूर और घुमंतू समाज के जीवन के यथार्थ का चित्रण देखने को मिलता है । उनके प्रसिध्द पात्रों में ये प्रमुख माने जाते हैं । सत्तू भोसला, फकीरा, निळुमांग, सावळा, नरसू, रामू म्हारूगडा, हिन्दूराव आदि पात्र जननायक बन गये हैं । ठीक उसी प्रकार उनके स्त्री पात्रों में मंजुळा, रंगू, आबी, फुला आदि स्त्री पात्रों को भी प्रसिद्धि मिली हैं ।

अण्णा भाऊ साठे के कूल मिलाकर 32 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं । इनमें से अधिकांश उपन्यास अस्पृश्य समाज की जीवन गाथा प्रस्तुत करते हैं जिनमें प्रमुख हैं- वारणेच्या खोर्यात, वारणेचा वाघ, फकीरा, अग्निदिव्य, चित्रा, आघात, आवडी, रत्ना, चंदन, मुर्ति, रानगंगा, फुलपाखरू, वैजयंता

आदि प्रमुख माने जाते हैं । मराठी दलित साहित्य के वरिष्ठ लेखक प्रो. गंगाधर पानतावने अण्णा भाऊ साठे के साहित्यिक शैली को लेकर लिखते हैं "अनुभूति को सहानुभूति की आवश्यकता होती है जिनके विषय में हम लिखतें हैं, उनके प्रति आत्मीयता होनी चाहिए। उनके अंतर्मन को जानने की इच्छा शक्ति होनी चाहिए। अण्णा भाऊ में यह सारे गुण दिखाई देते हैं। वे अपने पात्रों में अपनापन ढूँढ़ते हैं । उनके दुःख-दर्द को अपना समझते हैं जिनके जीवन का कोई मोल नहीं है फिर भी जीने की इच्छा रखने वालों के साथ रिश्ता बना लेते हैं । इसलिए अन्याय के विरूध्द विद्रोह करने वालें, हँसते-हँसते दुःखों को अपना लेने वालें, जीवन का तत्त्वज्ञान गामीण भाषा में समझाने वाले, अकाल से परेशान होकर रोटी के लिए तड़पने वाले, पाप और पुण्य की कल्पना को कुछल कर फेंकने वाले ऐसे अनेक पात्र अण्णा के साहित्य में मिलते हैं। ऐसा जीवन जीने वाले पात्र मानों अण्णा को अलिंगन देते हैं। इन लोगों की वेदानाओं को वाणी देने का सामार्थ्य अण्णा की कलम में है।"[12] क्योंकि उनके दुःखों के कारण ही अलग है जिसे हम उनके उपन्यासों के माध्यम से देख सकते हैं।

'चंदन' इस उपन्यास की नायिका चंदन है जो एक विधवा है । वह अपने बेटे के साथ मुंबई शहर में जीवन यापन करती है। वह मजदूरी कर अपना और अपने बेटे का पेट पालती है । अनेक तरह की मुसीबतों का सामना कर अपना जीवन निर्वाह करती है। संघर्षशील, साहसी चंदन अपनी अस्मिता की रक्षा में 'दयाराम' के चेहरे पर ऑसिड फेंकती है जिससे दयाराम का चेहरा जल जाता है। लेकिन इस आत्मरक्षा के फल स्वरूप उसे जेल जाना

पड़ता है। यहाँ रचनाकार न्यायपालिका और समाज पर व्यंग करता है और उस पर उँगली उठाता है। सारांशता हम कह सकते हैं कि निर्भीक, साहसी, सत्यनिष्ट और संघर्षशील चरित्र को उभारकर रचनाकार ने समाज को शोषण के विरूध्द संघर्ष करने का संदेश दिया है।

'चिखलातील कमळ' (कीचड़ का कमल) : इस उपन्यास की नायिका है सीता। सीता की माँ अंधश्रद्धा के कारण सीता का जीवन नरक में धकेल देती है। कहने का अभिप्राय यह है कि उसे नाचने के लिए विवश कर देती है। क्योंकि वह तमाशे के मालिक की बातों में आकर अपने पती के आयु की कामना करती है और देवी माँ को वचन देती है कि पती अगर ठीक हो जाएँगें तो वह अपनी बेटी को नाँचने में लगा देगी। इसके कारण सीता को यह कार्य करना पड़ता है जिससे उसके जीवन में नरक जैसी स्थितियाँ पैदा होती है। सचाई का पता चलने के बाद सीता उस नरक से मुक्त होती है। यह उपन्यास का कथानक है। उपन्यासकार ने समाज को इन अंधश्रध्दाओं से दूर रहने और इन्हें न मानने का संदेश उपन्यास के माध्यम से दिया है।

'वैजयंता' भी एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें पहली बार तमाशे में काम करने वाली कोल्हाटी समाज की स्त्रियों के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। यह जीवन दुःख, दर्द, शोषण, अन्याय और अत्याचार से ओत-प्रोत है। इसका बहुत ही मार्मिक चित्रण उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किया है।

'माकडीचा माळ' (मर्कटी का पहाड़) :

यह भारतीय साहित्य का पहला ऐसा उपन्यास है जो घुमंतू जनजाति पर लिखा गया है। उपन्यास का नायक 'यंकु' है जो मेहनती और

स्वाभिमानी है । अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व की रक्षा की लड़ाई अपने अंत समय तक लड़ता है । उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस तरह घुमंतू जनजाति को भारतीय समाज में शोषण का शिकार होना पड़ता है । साथ ही उसमें भी किस तरह के शूर-वीर और साहसी व्यक्ति हैं जो समाज को संघर्ष करना सिखा सकते हैं । इस बात को दिखाने का प्रयास किया गया है ।

'फकीरा' :

यह उपन्यास दलितों की दरिद्रता को प्रस्तुत करता है । उपन्यास का नायक 'फकीरा' है जो अंग्रजों का ख़ज़ाना लूटकर दलित जातियों में अनाज बाँटता है । ख़ज़ाना लूटने के जुर्म में उसे अंग्रेज ढूँढ़ते हैं लेकिन न मिलने पर दलितों को ही बंदी बनाया जाता है जिससे फकीरा को आना पड़ता है । फकीरा अपने आप को समर्पित कर दलितों को छुड़वा लेता है । यह एक पराक्रमी, वीर योद्धा की कहानी है जो समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करती है । अण्णा भाऊ साठे को इस उपन्यास के लिए 1961 में सर्वोत्कृष्ठ उपन्यास पुरस्कार दिया गया था । प्रो. गंगाधर पानतावने फकीरा विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि 'फकीरा' "यह मातंग, गुनेहगार जाति की दाहक जीवन गाथा है । वैसे तो फकीरा में तीन पीढ़ी की कथा का चित्रण किया गया है जिसमें सामाजिक आंदोलन को प्राथमिकता दी गयी है । फकीरा एक शांत और सज्जन पुरूष है जो अपने परिवार के प्रति वात्सल्य भाव रखता है जहाँ पर अन्याय होगा वहाँ पर विद्रोह करता है । जीवन जीने के हक़ के लिए लड़ता है । अपने विवेक के बल पर कभी-कबार कानून को भी अपने हाथों में

लेता है । उसे अज्ञानी लोगों से चीड़ है । लेकिन उसका मन उदारवादी है । उसका कहना है कि जीवन जो है वह संघर्ष करने के लिए ही मिला है । उसका जीवन संघर्ष एक धर्मयुध्द है । फकीरा के मन में जितने भी संघर्ष है वह आने वालें पीढी के यशोगीत है ।”[13]

वारणेचा वाघ (वारणा का बाघ) :

यह फकीरा उपन्यास की दूसरी कड़ी है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों में ‘सतु’ और ‘फकीरा’ हैं । सतु समाज में परिवर्तन लाता है । जहाँ भी कोई पीड़ित, प्रताड़ित या शोषण का शिकार हो रहा होता है उसकी रक्षा करता है और उसे न्याय देने का प्रयास करता है । इससे कई सारी स्त्रियों का घर फिर से बस जाता है और वे स्त्रियाँ सतु को अपना भाई मानती हैं । अंग्रेज पुलिस इस काम के लिए उसे दोषी मानकर उसकी तलाश करती है । सतु जिस स्त्री को अत्याचारों से छुड़ाता है उसी का बेटा पुलिस में जाकर अपना फर्ज निभाता है । इस बात से आहत होकर वह स्त्री मर जाती है । यह बात जानकर सतु भी अपने परिवार से मुक्ति पा लेता है । उपन्यासकार ने दलित और सवर्ण पात्रों के माध्यम से अपने उपन्यास में समता, स्वतंत्रता, बंधुता का संदेश दिया है ।

‘मूर्ति’

अण्णा भाऊ साठे के चर्चित और प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक है । ‘मूर्ति’ उपन्यास चरित्र-प्रधान उपन्यास है । इस उपन्यास की नायिका ‘मूर्ति’ है । यह उपन्यास ‘मूर्ति’ के साथ-साथ उसके इर्द-गिर्द के परिवेश और समाज को

भी चित्रित करता है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों के रूप में वसंत, सायब्या (पहलवान), जयसिंग, विलास और सरिता हैं।

उपन्यास मूर्ति और वसंत के बचपन से शुरू होकर यौवन अवस्था पर खत्म होता है। उपन्यास की शुरूआत स्कूल से शुरू होती है। उपन्यास में जीवन के अनगिनत पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में मानवीय जीवन की अनेक समस्याओं को उठाया गया हैं। उपन्यास में हम बचपन, प्रेम, वियोग, यौवन, भारतीय समाज में फैली जातीयता, छुआछूत, स्त्री-शोषण, घरेलु हिंसा, विधवा समस्या, भ्रष्टाचार, भारत की न्यायपालिका के साथ-साथ पुलिस प्रशासन के असली चेहरे को उभारने का प्रयास उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से किया है।

अण्णा भाऊ साठे ने मूर्ति उपन्यास के माध्यम से जीवन के हर कठिन प्रसंगों और समस्याओं से सामना करने वाले चरित्रों को उभारा है। उपन्यास मानवीय जीवन के सरोकारों से जुड़ा हुआ है। उपन्यास में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों और समस्याओं को उठाया गया हैं जो आज भी भारतीय समाज में देख सकते हैं।

अण्णा भाऊ ने मूर्ति उपन्यास में प्रेम के चित्र खींचे हैं। उपन्यास मूर्ति और वसंत के प्रेम को उजागर करता है। उपन्यास की कथावस्तु मूर्ति को केंद्र में रखकर ही बनाई गई है। उपन्यास में मूर्ति के साथ-साथ उसके आसपास के परिवेश और समाज को प्रस्तुत किया गया है। मूर्ति और वसंत दसवीं कक्षा के छात्र हैं। दोनों भी एक दूसरे को पसंद करते हैं। समाज के बंधनों के कारण दोनों को अलग होना पड़ता है। इन दोनों के मनोविज्ञान को अण्णा ने

उपन्यास में बखूबी उतारा है ।

मूर्ति को देख कर ही वसंत खुश हो जाता है । उसे दुनिया की सारी खुशी मिल जाती है । लेकिन वसंत कक्षा में किसी से बात नहीं करता है हमेशा अकेला और उदास रहता है । कारण होता है वसंत के माता-पिता की अकाल मृत्यु । जिससे उसके सर से मातृ और पितृ प्रेम का साया हट जाता है । इसीलिए वह उदास और अकेला रहता है ।

मूर्ति को देख कर उसे जो खुशी होती है उसकी वजह है वसंत उसे चाहने लगता है । मूर्ति को जब पता चलता है कि वसंत उसे चाहता है और इसी वजह से वह पढ़ाई से थोड़ा-सा दूर जा रहा है । इस बात को सुधारने के लिए मूर्ति खुद वसंत से बात करती है । उपन्यास का यह अंश काफी हृदयस्पृर्शी बन पड़ा है जिससे हम उन दोनों के प्यार और मनोविज्ञान को जान सकते हैं ।

अण्णा भाऊ साठे की भाषा वर्णनात्मक और प्रतिकात्मक है । उनकी रचनाओं में ग्रामीण बोली और देशज शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है । ग्रामीण बोली को जन-सामान्य तक पहुँचाने वाले सिध्दहस्त उपन्यासकार अण्णा भाऊ साठे मराठी साहित्य में सर्वोपरी है । आम बोलचाल की भाषा होने की वजह से उनकी रचनाओं में आँचलिक और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है । जिससे उनके उपन्यासों का शिल्प बेजोड़ बनता है । उपन्यास में प्रतीकों और बिंम्बों का यथा आवश्यक प्रयोग करते हैं । मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से उनके रचनाओं में मौलिकता और जीवंतता आ जाती है । उनके पात्रों में ऐसे संवाद हैं जो लेखक की शैली को स्पष्ट करते हैं जैसे प्रतिक- मास्टर और छात्र का संवाद है- ‘शिवाजी महाराज मेरे कुर्सी के

नीचे क्या देख रहे हो क्या मेरे कुर्सी के नीचे दिलेरखान बैठा है?' जो व्यक्ति अपनी आदतों से मजबूर रहता है ऐसे व्यक्ति के लिए लेखक मुहावरे का प्रयोग करते है- सुंभ जळेल पण पीळ जळणार नाही. (रस्सी जल गई मगर ऐंठ नहीं गई) इस प्रकार से अण्णा भाऊ साठे की रचनाओं में ग्रामीण परिवेश के साथ-साथ ग्रामीण बोली को भी महत्त्व दिया गया है। अण्णा भाऊ साठे की भाषा में एक प्रकार की नवीनता देखने को मिलती है।

अतः अण्णा भाऊ साठे के समग्र साहित्य में उपेक्षित समाज का चित्रण है। लेकिन अण्णा ने महार और मातंग जातियों के ऐसे पात्र निर्माण किए हैं जो मराठी साहित्य में अस्मरनीय है। अण्णा ने मातंग समाज में चेतना जागृत करने का कार्य किया है। यह समाज सदियों से गुलामी सहता आ रहा था और स्वाधीनता के बाद भी इस समाज में फैली अंधश्रद्धा से बाहर निकलने का नाम नहीं ले रही है। इसका उदा. अपनी अनेक कहानियों या उपन्यासों में देते हैं। साथ ही उस सामाजिक परिवर्तन को भी दिखाने का प्रयास करते हैं। समाज को स्वाभिमान के लिए संघर्ष करने का मार्ग दिखाते हैं, समाज में चेतना निर्माण करना अण्णा भाऊ साठे के साहित्य का उद्देश्य है। इनकी कृतियों को पढ़कर समाज में अनेक बदलाव दिखाई दे रहे है। अधिक रूप से मातंग समाज स्वाभिमान के लिए संघर्ष करता दिखाई दे रहा है। पुरानी रूढ़ी-परंपराओं को त्याग कर स्वाभिमान का मार्ग अपना रहा है। इस तरह का परिवर्तन अण्णा के कारण ही आ पाया है।

संदर्भ

1. नारायण सुर्वे, अण्णा भाऊ साठे (समग्र वाङमय) प्रस्तावना से ।
2. माझा भाऊ अण्णा भाऊ (जीवनी), शंकर भाऊ साठे, पृ. सं. 23.
3. अण्णा भाऊ साठे का उदघाटन पर भाषण, पहिले दलित साहित्य सम्मेलन के मंच से दिनांक 2 मार्च 1958.
4. अण्णा भाऊ साठे का उदघाटन पर भाषण, पहिले दलित साहित्य सम्मेलन के मंच से दिनांक 2 मार्च 1958.
5. अण्णा भाऊ साठे के प्रसिध्द उपन्यास 'फकीरा' से एक संवाद ।
6. दलित समाज की कहानियां- रत्नकुमार सांभरिया पृष्ट सं. 11
7. अण्णा भाऊ साठे गौरवग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे, (आलेखः दलितांचे जीवन समर्थपने शब्दबध्द करणारा झुंजार साहित्यिकः अण्णा भाऊ साठे, प्रा. गंगाधर पानतावने,
8. अण्णा भाऊ साठे गौरवग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे, (आलेखः दलितांचे जीवन समर्थपने शब्दबध्द करणारा झुंजार साहित्यिकः अण्णा भाऊ साठे, प्रा. गंगाधर पानतावने,
9. अण्णा भाऊ साठे गौरवग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे, (आलेखः दलितांचे जीवन समर्थपने शब्दबध्द करणारा झुंजार साहित्यिकः अण्णा भाऊ साठे, प्रा. गंगाधर पानतावने, पृ. क्र. 40-41.
10. मराठी के अंबेडकरवादी साहित्य का इतिहास, ज. वी. पवार, हिन्दी अनुवाद शेखर, फारवर्ड प्रेस, नवंबर 2018.
11. जीवनयात्री कथाकार अण्णा भाऊ साठे, नीला उपाध्ये, अण्णा भाऊ साठे निवडक वाङ्मय, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडळ, मुबई.

12. अण्णा भाऊ साठे गौरवग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे, (आलेखः दलितांचे जीवन समर्थपने शब्दबध्द करणारा झुंजार साहित्यिकः अण्णा भाऊ साठे, प्रा. गंगाधर पानतावने, पृ. सं. 41.

13. अण्णा भाऊ साठे गौरवग्रंथ सं. चंद्रकांत वानखेडे, (आलेखः दलितांचे जीवन समर्थपने शब्दबध्द करणारा झुंजार साहित्यिकः अण्णा भाऊ साठे, प्रा. गंगाधर पानतावने, पृ. सं. 42-43.

उपसंहार

'मातंग लोकवार्ताः एक अध्ययन' शीर्षक इस शोध प्रबंध के माध्यम से मातंग समाज की लोकसंस्कृति को दिखाने का प्रयास किया गया है । इस शोध कार्य में लोकसंस्कृति पर कार्य करते हुए मातंग समाज के मौखिक और लिखित दोनों रूपों को अधार बनाया गया है । लोकवार्ता लोक साहित्य का व्यापक रूप होने के कारण मातंग समाज के लोक साहित्य के साथ-साथ उस समाज के वर्तमान जीवन पर भी विचार किया गया है । सामान्यतः उस विश्वास, परंपरा और लोक-सभ्यता के ज्ञान को लोकवार्ता कहा जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति मौखिक रूप से होती रही है । स्थान विशेष और वर्ग विशेष के लोग अपनी परंपरा को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित करते रहे हैं । स्मृति में सुरक्षित यह ज्ञान कालक्रम में एक दूसरे से, फिर दूसरे से तीसरे मानस की यात्रा करता हुआ थोड़ा-थोड़ा परिवर्तित होता रहता है । उसका यह परिवर्तन स्वाभाविक होता है । लोकवार्ता पारंपारिक जन-संपदा है, जिसे सामान्य तौर पर इस प्रकार देखा जा सकता है, जैसे विचार व विश्वास, परम्परा, मौखिक कथन, कहावतें और लोककला ।

लोकविश्वास

इसके अंतर्गत वे सारे विचार आते हैं, जो समस्त मानव समुदाय से सरोकार रखते हैं । रोग का कारण और चिकित्सा की विधि से लेकर मृत्यु के बाद के जीवन, अर्थात् पुनर्जन्म संबंधी मान्यता तक इसके अंतर्गत आती है । इसी कारण से अंधविश्वास, भूत-प्रेत, शकुन-विचार, जादू-टोना, अलौकिक सत्ता और धार्मिक विश्वास सब इसके अंतर्गत समाहित हो जाते हैं ।

परम्परा

इस वर्ग में पर्व-त्यौहार, पूजा-पाठ, शादी ब्याह, खेल-कूद और नृत्य आदि से संबंधित परंपरा, पारंपारिक परिधान तथा खान-पान आते हैं ।

लोक कथाएँ

इसके अंतर्गत लोकगाथा (बैलेड) के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की लोककथाएँ और लोकसंगीत आते हैं, जिनका आंशिक संबंध सच्ची ऐतिहासिक घटना के साथ संभव है।

लोक कहावत

इसके अंतर्गत मुहावरा, कहावते, शिशु-गीत इत्यादि आते हैं।

लोककला

इस पाँचवीं और मौखिक श्रेणी में कला के वे सारे रूप समाहित हैं, जिनके माध्यम से वर्ग विशेष के लोग अपनी सहज अभिव्यक्ति करते हैं ।

लोकवार्ता के अंतर्गत हम 'लोक' के किसी भी विषय पर वार्ता कर सकते हैं, चाहे वह आम जीवन हो या राजनीति । इसके अंतर्गत लोककला, लोक-दस्तकारी, लोकउपकरण, लोक-वेशभूषा, लोकाचार, लोकविश्वास, लोक-उपचार, लोक-नुस्खा, लोक-संगीत, लोक-नृत्य, लोक-खेलकूद, लोक-चेष्टा तथा लोकवाणी के साथ-साथ वे सारे मौखिक रूप आते हैं, जिन्हें साधारणतः लोक-साहित्य कहा जाता है।

इस शोध प्रबंध में 'मातंग लोकवार्ता' को दृष्टि में रखते हुए सर्व प्रथम मातंग समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नजर डालने की कोशिश की गयी है। इसके साथ-साथ मातंग समाज का संबंध मांगलिश संस्कृति के साथ किस प्रकार से जुड़ा हुआ है, इस पर विचार किया गया है।

मातंग समाज की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए अनेक बिंदू सामने आए है। उसके आधार पर मातंगों की पूर्व परंपरा तथा वर्तमान परंपरा का भी उल्लेख किया गया है और मातंगों की परंपराओं पर विस्तार से बात करने की कोशिश की गयी है। इस अध्याय में मातंग समाज की पूर्व परंपरा में पेशवा के शासन में मातंग समाज की क्या स्थिति थी तथा आज के वर्तमान युग में कैसी स्थिति है इसे दिखाने का प्रयास किय गया है। उसी प्रकार ग्राम संरचना में मातंगों का स्थान तथा जीवन के रहन-सहन को दिखाने में भी क्षेत्रकार्य को आधार बनाया गाया है। दलित समाज बहिष्कृत रहा है और इन बहिष्कृत समाज में 12 बलुतेदार याने बारह जातियाँ थी उनके संबंध में विस्तार से बात करने तथा उनके कार्य और कार्यों के मूल्य पर भी विचार किया गया है। साथ ही महार-मातंग संबंध को दिखाने का प्रयास भी किया गया है और उनकी एकता की आवश्यकता को महत्त्व दिया गया है। साथ ही मातंग समाज की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन पध्दति पर विचार करने का प्रयास किया है।

इस शोध प्रबंध में द्वितीय अध्याय के रूप में मातंग समाज के लोक साहित्य को महत्त्व देते हुए इस समाज में प्रचलित लोक परंपरा पर विस्तृत रूप में चर्चा की गयी है। लोक परंपरा पर विस्तृत रूप में उल्लेख करना इस

शोध का आशय ही रहा है । मातंग समाज की लोक परंपरा के अंतर्गत जामंतऋषि की लोककथा से लेकर मांगीर बाबा के पोवाड़े तक की चर्चा इस अध्याय में की गयी है । लोकवार्ता इस शोध विषय का मुख्य अंग है इसीलिए लोकवर्ता के संबंध में जामंतऋषि की लोक कथा को दिखाया गया है । यह लोक कथा मातंग समाज में प्रचलित है । उसी लोक कथा के अनूदित रूप को इस शोध में दिखाया गया है । इसके साथ-साथ 'डक्कलवारों के बसवपुरान' की कथा का विस्तृत वर्णन करने की कोशिश की गयी है । इस जाति पुराण में जामंतऋषि से मांतग बनने तक की कथा को दिखाया जाता है । इस जातिपुराण की विशेषता यह है कि डक्कलवार यह कथा सिर्फ मातंग समाज को ही बताते हैं । कथा पट के आधार पर बताई जाति है, साथ ही नृत्य करते हुए जामंतऋषि का वर्णन किया जाता है । इस कथा को ही डक्कलवारों का जातिपुराण भी कहा जाता है । डक्कलवार मातंगों की उपजाति है । इसी शोध के अंतर्गत पोतराजों के मौखिक वाङ्मय को भी दिखाया गया है । इसमें मातंग समाज के लोक देवी के प्रकोप के नाम पर किस प्रकार अपनी औलादों को पोतराज बनातें हैं । पोतराज बनने के बाद उसके जीवन में किस तरह के बदलाव आते है । इस विषय पर विचार करने का प्रयत्न किया गया है । जिस प्रकार एक पुरूष पोतराज होता है उसी प्रकार हर गाँव में महिलाएँ भी देवकरीन बनी रहती है । इसें मैंने अपने क्षेत्रकार्य के दौरान देखा है । वह भी अपने आप को देवी की भक्त बताती हैं । पोतराज और यह देवकरीन दोनों मिलकर धुपात्री गाते हैं । साथ ही नींबू चबाती है और अपनी जिव्हा पर कपूर जलाती है । साथ ही पोतराजों की धुपात्री और कवनों (गीतों) आदि बातों का विश्लेषण किया गया है । इस कड़ी में मातंग समाज की परंपरा में

मुख्य रूप से लोकगीतों पर विषेष रूप से ध्यान देने की कोशिश की गयी है। इसमें मातंग समाज में प्रचलित लोकगीतों को लिया गया है। इस समाज के सभी लोकगीतों का उल्लेख करते हुए उसके मराठी रूपों का हिन्दी अनुवाद तथा विश्लेषण करते हुए मातंग समाज के लोकगीतों के महत्त्व को स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है।

शोध प्रबंध के तृतीय अध्याय में मातंग समाज में प्रचलित हलगी की ऐतिहासिक परंपरा पर विचार किया गया है। इस अध्याय में मातंग समाज का हलगी के साथ क्या संबंध है यह बताने की कोशिश की है। वही हलगी के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए हलगी बनाने की प्रक्रीया से लेकर बाजीरीकरण में हलगी की क्या स्थिति है इसे दिखाने का प्रयत्न किया गाय है। इसका आधार भी क्षेत्र कार्य ही है इसमें भी उन लोगों के अनुभवों को शब्दरूप देने का प्रयास हुआ है। हलगी मातंग समाज की लोक परंपरा में प्रमुख मानी जाती है।

इस शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में डॉ. अम्बेडकर और मातंग समाज इस विषय पर बातें की गयी है। तथा मातंग समाज को यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण अस्पृश्यों के लिए संघर्ष कर रहे थे। इसलिए डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष के कुछ पहलुओं पर विचार किया गया है। ताकि मातंग समाज में आज भी कुछ लोग हैं जो डॉ. अम्बेडकर को समझने में भूल करते हैं। मातंग समाज में ही नहीं बल्कि महारोत्तर अनेक ऐसी जातियाँ हैं जो डॉ. अम्बेडकर को सिर्फ महारों का हितेषी मानते हैं। जिनमें ओ. बी. सी. समुदायों का बहुत बड़ा वर्ग भी इसमें आता है। ऐसा नहीं कि संपूर्ण वर्ग ही इस तरह की सोच डॉ. अम्बेडकर को

लेकर रखता है, उनमें भी अपने-अपने विचार रखने वाले लोग हैं । डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्षों के संक्षिप्त परिचय के साथ उन लोगों को यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि डॉ. अम्बेडकर जिन आंदोलनों का नेतृत्त्व कर रहे थे । वह सिर्फ महार जाति के लिए नहीं कर रहे थे बल्कि भारत के सभी अस्पृश्यों का नेतृत्त्व कर रहे थे । डॉ. अम्बेडकर के इन आंदोलनों में अस्पृश्य समाज के हर समुदाय से लोग जुड़े हुए थे । जिनमें मातंग समाज के लोग भी जुड़े हुए थे यह बात अलग है कि मातंग समाज के लोगों की संख्या अल्प रूप में थी लेकिन डॉ. अम्बडकर के साथ वे लोग जरूर जुड़े हुए थे । जिन लोगों में डॉ. अम्बेडकर को लेकर यह गैर समझ रहा है कि डॉ. अम्बेडकर सिर्फ महार जाति के ही हितेषी है ऐसे लोगों इस गैरसमझ को दूर करने की कोशिश की गयी है । इस तरह की भूल वे आगे ना करें यही समाझाने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है । साथ ही डॉ. अम्बेडकर कालीन मातंग मसाज के स्परूप को भी दिखाने का प्रयास किया है । जिसमें मातंग समाज के युवा वर्ग और डॉ. अम्बेडकर के बीच हुए पत्र व्यवहारों का उल्लेख किया है साथ ही उन पत्रों के हिन्दी अनुवाद को सभी के सामने लाने का प्रयास किया गया है । वही डॉ. अम्बेडकर को लेकर मैंने एक शिक्षक को प्रश्न किए थे उसे उत्तर स्वरूप मैंने इस अध्याय में रखने का प्रयास किया है । इस अध्याय के माध्यम से यही कोशिश की गयी है कि अधिक मात्रा में मातंग समाज का वर्ग डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर चलने की कोशिश करें । साथ ही युवा पीड़ी में सामाजिक परिवर्तन की दिशा निर्देश करने की इच्छा शक्ति जागृत हो ।

शोध प्रबंध के अंतिम अध्याय के रूप में अण्णा भाऊ साठे और मातंग समाज इस विषय पर चर्चा की गयी है । अण्णा भाऊ साठे के माध्यम से मातंग समाज में चेतना जागृत करने और सामाजकि परिवर्तन से अवगत कराने का प्रयास किया गया है । इस अध्याय में अण्णा भाऊ का साहित्यिक परिचय दिया गया है । इसके साथ मातंग समाज पर केंद्रित अण्णा भाऊ साठे के भाषणों के माध्यम से मातंग समाज को संदेश देने का प्रयास हुआ है । अण्णा भाऊ साठे को इस शोध का अंग बनाने का उद्देश्य यही रहा है कि अण्णा एक मात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने अपनी अधिकांश रचानाओं में महार-मातंग समाज की जीवन गाथा को शद्बरूप देने का प्रयत्न किया है । उनकी रचनाओं में मातंग समाज के ऐसे नायक उभर कर आ गए हैं जो जननायक के रूप में जाने जाते हैं । इसलिए उनके साहित्य और भाषणों को इस शोध का अंग बनाया गया है । अण्णा भाऊ ने मातंग समाज में परिवर्तन लाने के लिए अनेक प्रयास किए है । उसे भी दिखाने का प्रयास किया है साथ ही यह भी दिखाने की कोशिश की है कि किस प्रकार वह अपने समाज में फैली अंधश्रद्धाओं को दूर करने का संदेश देते है । उसी प्रकार उनके साहित्य में किस प्रकार से मातंग समाज का चित्रण हुआ है । तथा उनके पात्र मातंग समाज के होते हुए भी कितने स्वाभिमानी है यह दिखाने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है । जितने भी जननायक अण्णा ने निर्माण किए है उन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास भी इस अध्याय के माध्यम से किया गया है ।

मातंग समाज की अपनी ऐतिहासिक परंपराएँ हैं । इस समाज की परंपराएँ और इस समुदाय का जीवन संघर्ष वर्तमान भारतीय पिछ्ड़े हुए

समुदायों के जीवन संघर्ष का परिचय देता है। इस शोध के बल पर हिन्दी प्रदेशों की जनता मातंग समाज के परंपराओं को जान सकेगी। अभी भी मातंग समाज की विकास को दृष्टि में रखते हुए सरकार को उचित योजनाओं को बनाने की दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अछूत कौन थे और और वे अछूत कैसे बने, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, संस्करण सातवाँ -2013.

2. अण्णा भाऊ साठे जीवन दर्शन, चंद्रकांत वानखेडे, प्रबुद्ध भारत पुस्तकालय, नागपूर-17, प्रथम संस्करण-2012.

3. अण्णा भाऊ साठेः जीवन आणि साहित्य, नानासाहेब कठाळे, अण्णा भाऊ साठे साहित्य प्रकाशन मंच नागपूर -17, प्रथम संस्करण -1997

4. अण्णा भाऊ साठे गौरव ग्रंथ, सं. चंद्रकांत वानखेडे, अण्णा भाऊ साठे व कला अकादमी नागपूर, प्रथम संस्करण -1997.

5. अहिराणी लोक संस्कृती, डॉ. सुधा. रा. देवरे, पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण -2014.

6. आंबेडकरी चळवळालीन मातंग समाज, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन नागपुर, द्वितीय संस्करण – 2011.

7. गाव-गाडा, त्रिंबक नारायण आत्रे, सरिता प्रकाशन, पुणे, द्वितीय संस्करण-1961.

8. भारतीय जातीसंस्थेत मातंगाचे स्थान आणि महार-मांग संबंध, प्रा. सोमवंशी बी. सी, आनंद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण -2015.

9. मांग आणि त्यांचे मागते, प्रभाकर मांडे, गोदावरी प्रकाशन, औरंगाबाद, द्वितीय संस्करण -2009.

10. माझा भाऊ अण्णा भाऊ (जीवनी), शंकर भाऊ साठे, विद्यार्थी प्रकाशन, पुणे-9 प्रथम संस्करण -2000.

11. मातंगी देवी कोण ?, जोगदंड जी. एम, आनंद प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम संस्करण-2013.

12. मातंग प्राचीनता आणि सामाजिक परिवर्तनाची दिशा, चंद्रकांत वानखेडे, नेहा प्रकाशन, नागपूर, द्वितीय संस्करण-1995.

13. मातंग समाजाच्या चळवळीः स्वरूप व दिशा, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन नागपुर, द्वितीय संस्करण -2007.

14. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, प्रा. माधव बसवंते, इसाप प्रकाशन, नांदेड – 05, प्रथम संस्करण -2010.

15. मातंग समाजातील मध्यवर्गीय व सुशिक्षित वर्गाची सामाजिक जबाबदारी, चंद्रकांत वानखेडे, अण्णा भाऊ साठे व कला अकादमी, नागपूर, प्रथम संस्करण - 2006.

16. मातंग समाजाचे भवितव्य वास्तव व संकल्प, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपूर-3, द्वितीय संस्करण-2007.

17. मातंग समाजः साहित्य आणि संस्कृति, प्रा. शरद गायकवाड, स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण -2015.

18. मातंग समाज विकासाच्या दिशेने, डॉ. आश्रु जाधव, नचिकेत प्रकाशन, नागपूर, प्रथम संस्करण-2011.

19. मातंग समाज आणि आंबेडकरवाद, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपूर-3, द्वितीय संस्करण-2011.

20. लोकशाहीर साहित्यसम्राट अण्णा भाऊ साठे गौरव ग्रंथ, महासंचालक- डॉ. आंबेडकर संशोधन व प्रशिक्षण संस्था पुणे-01, वर्ष – 2015.

21. लोकशाहीर अण्णा भाऊ साठे निवडक वाङ्मय, सं. अर्जून डांगळे नीला उपाध्ये, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृति मंडळ, मुंबई-32, वर्ष – 1998.

22. लोकसाहित्यिक अण्णा भाऊ साठे समग्र वाङ्मय, सं. दीपक चांदने, अस्मिता चांदने, प्रतिमा पब्लिकेशन्स, पुणे, तृतीय संस्करण – 2015.

23. लोक परंपरा पहचान एवं प्रवाह, श्याम सुंदर दुबे, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2003.

24. लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1978.

25. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2004.

26. लोक साहित्य विमर्श- डॉ. स्वर्णलता, प्रथम संस्करण – 2004

27. शूद्र कौन थे (खंड-13) डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, अम्बेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, सातवें संस्करण – 2013.

28. सर्व सूर्वे नारायण सूर्वे, वसंत शिरवाडकर, अक्षर प्रकाशन, मुंबई-48, प्रथम संस्करण – 2000.
29. 'डप्पु', (आलेख) आ. जया सलोनी
30. लोक गीत, (आलेख) बिरुदुराजु रामाराजु
31. www.Google.com
32. www.wikipidiya.com

परिशिष्ट 1

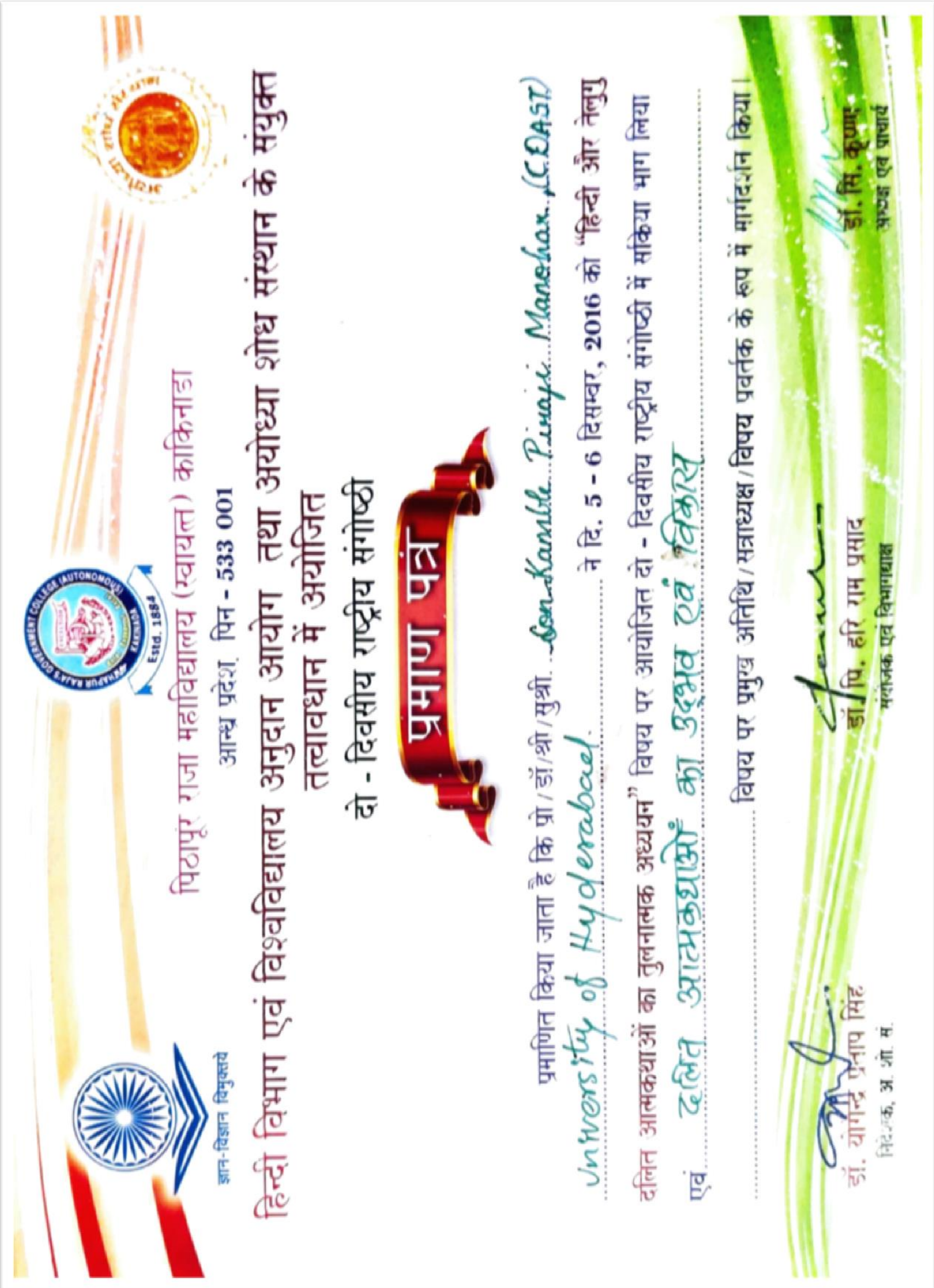

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

पिठापूर राजा महाविद्यालय (स्वायत्त) काकिनाडा

आन्ध्र प्रदेश पिन - 533 001

हिन्दी विभाग एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा अयोध्या शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में अयोजित

दो - दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो/डॉ/श्री/सुश्री. Son Kamble Piraji Manohar (CDAST) University of Hyderabad ने दि. 5 - 6 दिसम्बर, 2016 को "हिन्दी और तेलुगु दलित आत्मकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन" विषय पर आयोजित दो - दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सक्रिया भाग लिया एवं दलित आत्मकथाओं का उद्भव एवं विकास .... विषय पर प्रमुख अतिथि/सत्राध्यक्ष/विषय प्रवर्तक के रूप में मार्गदर्शन किया।

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
निदेशक, अ. शो. सं.

डॉ. पि. हरि राम प्रसाद
संयोजक एवं विभागाध्यक्ष

डॉ. सि. कृष्ण
अध्यक्ष एवं प्राचार्य

अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय

हैदराबाद

हिन्दी विभाग

दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

"हिन्दी एवं विदेशी भाषा और साहित्य : वैश्विक परिप्रेक्ष्य"

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / सुश्री / श्रीमती / डॉ. / प्रो. सोनकांबळे पिराजी मनोहर

ने दिनांक 6-7 फरवरी, 2020 को हिन्दी विभाग, अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद द्वारा **"हिन्दी एवं विदेशी भाषा और साहित्य : वैश्विक परिप्रेक्ष्य"** विषय पर आयोजित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में बीज वक्ता/सत्र अध्यक्ष/प्रपत्र प्रस्तोता/सत्र संचालक/प्रतिभागी के रुप में सहभागिता की।

इन्होंने मातंग समाज की पृष्ठभूमि और लोक परंपरा शीर्षक पर शोध प्रपत्र प्रस्तुत किया।

This is to certify that Mr./Ms./Mrs./Dr./Prof. ________

has delivered the keynote address/chaired a session/attended/presented a paper/in Two Day International Seminar on **"Hindi and Foreign Language-Literature: Global Perspective"** from 6-7 February, 2020 organised by the Department of Hindi, The English and Foreign Languages University, Hyderabad.

He/She has presented a paper on ________

प्रो. टी. सैमसन
संकाय अधिष्ठाता

डॉ. श्यामराव राठोड़
विभागाध्यक्ष, एंव संगोष्ठी निदेशक

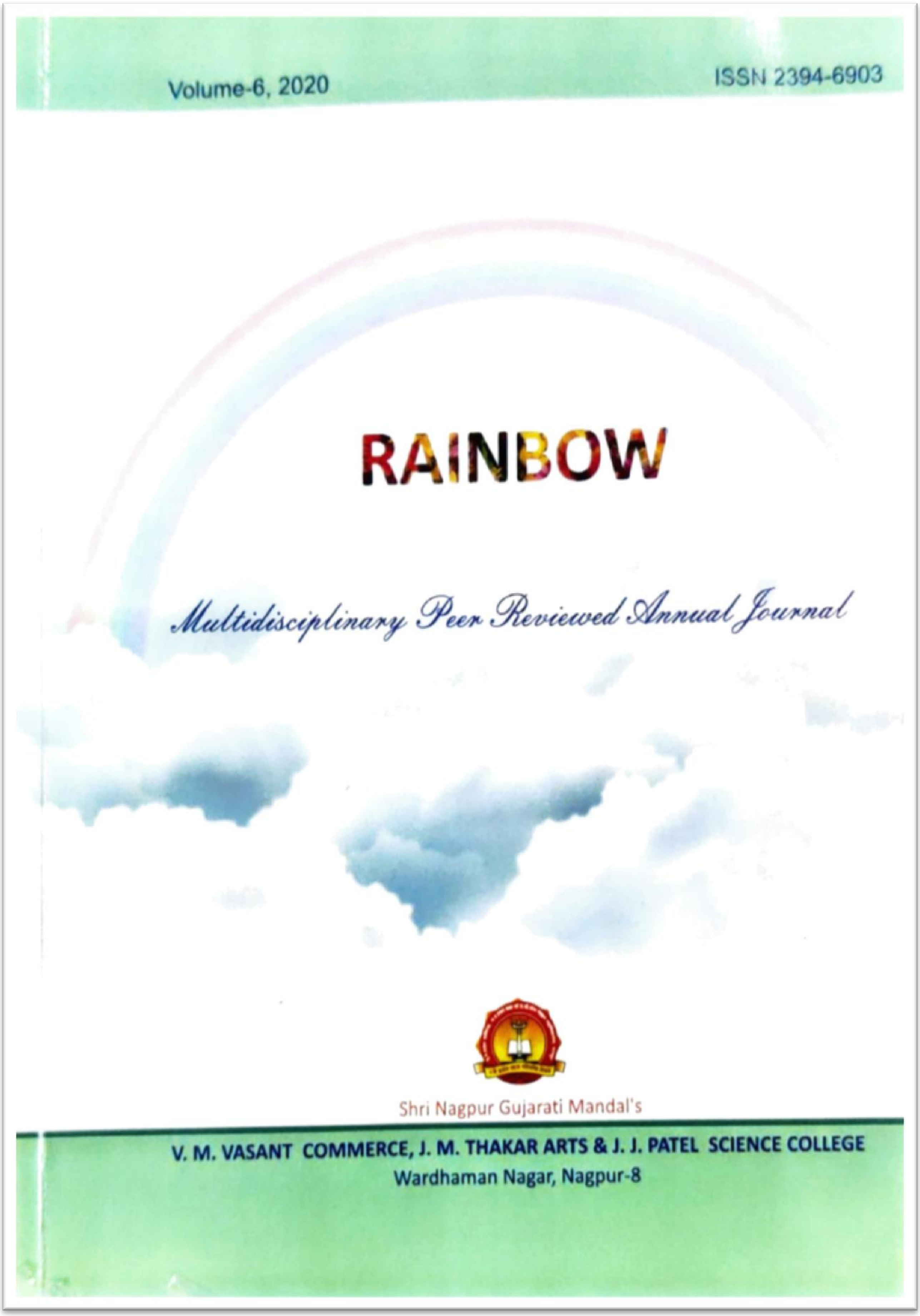
Volume-6, 2020
ISSN 2394-6903
RAINBOW
Multidisciplinary Peer Reviewed Annual Journal
Shri Nagpur Gujarati Mandal's
V. M. VASANT COMMERCE, J. M. THAKAR ARTS & J. J. PATEL SCIENCE COLLEGE
Wardhaman Nagar, Nagpur-8

22	Recent (Innovative) Practices in India's Banking Sector	Dr. Ashok Mande	146
23	The Utilization Of Hidden Talent And Its Association With Satisfaction Of Workforces In Private Organization In Nagpur Region	Dr. C. A. Dixit	151
24	Problems In Agricultural Marketing In India	Dr. D. N. Padole	161
25	Problems And Challenges In Online Shopping In India	Dr. Pawan R. Naik	165

Arts & Social Science

26	नाटयलेखों के सौंदर्यशास्त्रीय तत्वों का विश्लेषण	डॉ. सोनू जेसवानी	169
27	कृष्ण भक्त कवि कुंभनदास के प्रदेय का मूल्यांकन	डॉ. कृष्णप्रिया पटेल	175
28	मातंग समाज की पृष्टभूमि और परंपरा	सोनकांबळे पिराजी मनोहर	179
29	हिन्दी कोश–विज्ञान का विकास	सूर्य कुमारी. पी.	184
30	सुमित्रानंदन पंत की कविताओं का पर्यावरण–शिक्षण में योगदान	डॉ. सुधा जांगिड	190
31	Empiricist Visions In R. C. Shukla's Poetry	Dr. Shaleen Kumar Singh	197
32	2018: The Story Of Two Winks	Dr. Supantha Bhattacharyya Dr. Purabi Bhattacharyya	209
33	Innovative And Philosophical Perceptions In The Poems of Khalil Gibran	Dr. Minakshi Ingle	213
34	नारायण सुर्वे यांचे मराठी कवितेला योगदान	प्रा. डॉ. अरविंद युगंधर	223
35	कविता प्रकारातील नाटयकविता	डॉ. राखी मं. जाधव	228
36	ભક્તિ સાહિત્ય અને તેનો ઈતિહાસ	પ્રા.ઈલા.બી.કુબા	233
37	મધ્યકાલીન સાહિત્યનું સાંકડું વિષયવર્તુળ	ડૉ. જાગૃતિ ઠાકર	237
38	સાક્ષર યુગના સમર્થ સાહિત્યકાર નરસિંહરાવ દિવેટીયા	ડૉ. સુષ્મા જોશી	240
39	સાહિત્યના સમર્થ વિવેચક - નવલરામ પંડ્યા	ડૉ. પારુલ દવે	245
40	શું કામ સમયને ઈશ્વર કહેવામાં આવે છે	ડૉ.ભાવેશ ચંદ્રકાન્ત લુપતાણી	249
41	Agricultural Policies in India: Concerns and Apprehensions	Dr. Mrs. Manisha V. Aole	251
42	Impact of Demonetization on Indian Economy and Employment of India	Dr. Rosalin Mishra	258
43	राष्ट्रीय अखंडता आणि गांधी चिंतन	विजय शामरावजी कांडलकर	265

मातंग समाज की पृष्ठभूमि और परंपरा

सोनकांबळे पिराजी मनोहर
शोधार्थी, दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

'मांग' याने आज के सुधारणावादी समाज में गिनी जाने वाली जाति ही 'मातंग' है । वास्तव में मातंगों का इतिहास अत्यंत गौरवशाली और उच्च संस्कृति का रहा है । लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि आज तक किसी भी इतिहासकार ने इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दिखाने की कोशिश नहीं की है । और न ही वे इतिहासकार इसे आवश्यक समझते है । परंतु यह हो सकता है कि इसे शोध का विषय बनाकर मांग जाति की अति प्राचीन संस्कृति के दृश्य को सबके सामने लाया जा सकता है ।

मांग तथा मातंग जाति का उल्लेख 'लिलाचरित्र' में मिलता है । यह ग्रंथ इ. सं. तेरहवें दशक के उत्तरार्ध में लिखा गया है इस ग्रंथ को ज्ञानेश्वरी से पूर्व का ग्रंथ माना जाता है । 'गोविंदप्रभु चरित्र' में यह उल्लेख मिलता है कि मांग एक अस्पृश्य जाति है साथ में यह भी कहा गया है कि वह गाँव के बाहर रहने वाली जमात है । संत तुकाराम के अभंगों में मांग जाति का उल्लेख मिलता है ।

'अस्पृश्यांचे प्रश्न' (अस्पृश्यों के सवाल) नामक ग्रंथ के लेखक माटे श्री. म. जी ने मातंग समाज की उत्पत्ति को लेकर तर्क देते हुए एक दंत कथा प्रस्तुत की है । ''मांग जाबंक या जांबुऋषि के वंशज माने जाते है । जांबऋषि को कुल मिलाकर सात संतानें थीं । उनके जेष्ठ पुत्र को शिवजी ने कामधेनु नाम की गाय दी थी। उसने उसे काटकर उसका मांस ग्रहण किया था । जब गाय को काटा गया था तब उनके कनिष्ट पुत्र वहीं पर उपस्थित थे । उसके शरीर पर रक्त की बूंदे गिरी थी । इस बात की खबर शिव जी तक पहुँच जाती है तब उन्होंने जांबऋषि के जेष्ठ और कनिष्ठ पुत्र को श्राप दिया था ।इस श्राप का परिणाम यह निकला कि जेष्ठ पुत्र महार और कनिष्ठ पुत्र मांग बन गए ।

उसी तरह से आज भी अनेक लोगों को यह पता नहीं है कि महानुभाव पंथ के निर्माता दोनों मांग भाई थे । यह मा. श्री. रा. चि. ढेरे ने अपने शोधात्मक किताब 'मातंगीपट्ट' नामक ग्रंथ में सिध्द किया है । महानुभाव जैसे प्रभावी पंथ के संस्थापक ढेगो–मेघो यह दोनों मांग भाई थे और इसी माँग भाई पंथ का आगे चलकर महानुभाव में रूपांतरण हो गया है ऐसा उन्होंने 'मतंगीपट्ट' नामक इस दीर्घ लेख के प्रभाग से सिध्द किया है ।

मांग यह महाराष्ट्र के हिंदू धर्म में अस्पृश्य समझी जाने वाली अनेक जातियों में से एक जाति है । जिन्हें बारह बलुतेदारों में गिना जाता है । 'मांग' लोगों को ही 'मातंग' कहा जाता है । वैसे तो 'मांग' और 'मातंग' इन दोनों में समन्वयार्थ अलग–अलग है । मांग यह एक विशिष्ट जांति के अर्थ में लिया जानेवाला शब्द है । परंतु मातंग यह एक समय अत्यंत सभ्य और शांतिप्रिय संस्कृति को निर्देशित करने वाला शब्द है । मांग यह लोकसमूह की जाति का निर्देश देनेवाली जातिवाचक संज्ञा बन गयी है ।आगे चलकर इन्हीं मांग जाति को मातंग कहकर संबोधित किया गया है । 'मांग' और 'मातंग' इन दोनों शब्दों का अन्योन्य संबंध है ।

इस मातंग संस्कृति का उदय अति प्राचीन काल में हुआ था । यह एक अत्यंत वैभवशाली मांगलिश वंश के राजघरानों से संबंध रखने वाले समाज की संस्कृति है, यहीं से मातंग संस्कृति का उदय हुआ है । इस संस्कृति की जड़ें वेदपूर्वकालीन संस्कृति में अवस्थित हैं। इस संस्कृति में छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित मांगलिश राजाओं का अस्तित्व

बना हुआ था । उदा. तुंगभद्रा नदी के तटपर कोशल प्रदेश । इन्होंने कई सालों तक राज किया था । इनके बीच हमेशा युध्द हुआ करते थे । इस मांगलिश वंश के राजा थे– मांगल, मौंगल, मांगलिश, मांगलपंती, मंगलीया, मंग, अलमेल मंगराज आदि नामों से विख्यात यह एक राज करने वाली जाति थी । ऐसे अत्यंत शूरवीर योध्दाओं ने मांगल, मगध, किष्किंधा, कौसल, मातंग कुल आदि प्रदेशों पर राज किया है । यह इतिहास आज भी उपलब्ध है । उनकी अपनी सामाजिक संस्कृति मातंग नाम से जानी जाति थी । इन मातंग संस्कृति के राजाओं का पीढ़ी–दर–पीढ़ी तक अपना साम्राज्य बना हुआ था । इस जाति के लोगों का परिवर्तन काल के अनुसार हुआ है जो इस प्रकार है– मांगल, मंग, मांगपती इस तरह के नाम सामने आए है । आगे चलकर इन्हीं शब्दों का अपभ्रंश में रूपांतरण हुआ– मंग, मांग, मौंग आदि । इस तरह से इस मांग जाति का मातंग संस्कृति से संबंध जुड़ा हुआ है ।

इतिहास के पुरावों से यह सिध्द हुआ है कि अनेक वैभवशाली राजे लढ़े गए लढ़ाइयों में पराभूत होकर गायब होते चले गए । उनके अपने राज्य नष्ट होते चले गए और उनकी संस्कृति नष्ट होती चली गयी । जीतने वाले की अलग–अलग संस्कृतियों का उदय इस देश में हुआ । कुछ ऐसा ही इन मांगलिश राजाओं के साथ हुआ । इन वैभवशाली राजाओं के पराभव के पश्चात इन पराजितों को कैद करके गुलाम बनाया गया । उन्हें सामाजिक गुलामी में धकेला गया । उन्हें आर्य संस्कृति का स्वीकार करने वाले और हराने वाले राजाओं ने चातुरवर्ण व्यवस्था के शूद्र वर्ण में डाल दिया । शूद्रों का वर्ण यह एक समाज बाह्य अस्पृश्य या सेवा करने वाला वर्ण था । गुलामों को इस तरह सेवा करने के कार्य दिए जाते थे । इन मांगलिशों को पराभव के बाद अस्पृश्यों के अपवित्र और गंदे कार्य अपनी उपजीविका चलाने के लिए करने पड़े । उन्हें इस तरह के बुरे संस्कार दिए गए । इन मांगलिशों के शूर–वीर योध्दाओं को आगे चलकर बहुत ही दयनीय स्थिति से गुजरना पड़ा । यह चातुरवर्ण आर्य संस्कृति में निषिध्द वर्णों में से एक अस्पृश्य जाति बन गयी । और उनकी अपनी गौरवशाली संस्कृति नष्ट हो गयी । "जिस प्रकार डॉ. बी. आर अम्बेडकर ने अपने ग्रंथ 'अछूत कौन और कैसे?' में यह कहा है कि महार पहले क्षत्रिय थे । उसी प्रकार मातंग भी राज करने वाली क्षत्रिय जाति थी ।

अंत्यज, शूद्र, अस्पृश्य या दास इस रूढ़ अर्थ में प्रचलित होनेवाली इस मातंग जाति के गौरवशाली संस्कृति के नष्ट होने के बाद चातुरवर्ण व्यवस्था में बहुत ही निम्न स्तरीय या गंदे काम कराये जानेवाले व्यवहार से परास्त हो गयी थी । यह जाति सामाजिक व्यवस्था में इस तरह का हीन जीवन जीने के लिए बाध्य हो गयी थी । लेकिन उनकी मानसिकता इस तरह के गंदे कार्य करने के लिए तैयार नहीं थी । उन्होंने इस तरह के कार्यों को नकार दिया । उस समय गुलामों को दी जाने वाली कठोर यातनाएँ इनको दी गयी । घोर यातनाओं के बाद भी उन्होंने इन गंदे कार्यों को नकारा । शुभ–मंगल, सुसभ्य और सुसंस्कृत पराजितों की मानसिकता किस तरह से हीन और नीच दर्जा के कार्य करने के लिए तैयार हो सकती है भला? इसलिए इन मांगलिश गुलामों को तत्कालीन सामाजिक चातुरवर्ण व्यवस्था ने कम दर्जे के लेकिन समाज में शुभ और मंगल समझे जाने वाले कार्य बांट दिए । इससे यह पता चलता है कि मातंग संस्कृति किस तरह से गौरवशाली संस्कृति थी और उसे किस तरह से अस्पृश्य बना दिया गया है, यह प्रमाण मिलता है ।

मांग जाति के आज के सामाजिक कार्यों के स्वरूप को देखा जाए तो उन्हें गाँव में या बस्तियों में जो काम समाज में बाँटकर दिए गए है, । दरअसल वह काम पराजित गुलाम समझकर उनके ओर से कर लिए गए थे । और आज मांग जाति के वही कार्य हिंदू धर्म की रूढ़ी–परंपरा के अनुसार उनकी उपजीविका के कार्य बन गए है । इस सामाजिक कार्यों का स्वरूप क्या था वह हम देख सकते है । सामान्यत: मांग लोगों को बस्तियों में निम्नप्रकार के कार्य करने पड़ते थे, दृष्टव्य है–

गाँव की संरचना के अनुसार मांग जाति के घर बस्तियों से दूर मगर बस्तियों से बहार निकलते समय या बस्ती में प्रवेश करते समय सबसे पहले मांग लोगों के दर्शन होने चाहिए इस पध्दति से घर बांधने के लिए बताया जाता था । उनके घर संभवत: पूर्व दिशा में ही पाये जाते हैं । सूर्य प्राचीन काल से ही आराध्य देवता रहा है चाहे वह आर्य संस्कृति हो या फिर अन्य । सूर्य को शुभ और मंगल समझा जाता था । क्योंकि गाँव से बहार आने–जाने वाले व्यक्ति को मांग जाति के व्यक्ति का दर्शन होते ही उस व्यक्ति को यश प्राप्ति होती है इस तरह की धारणा उस जमाने में थी । क्योंकि मांगों के दर्शन सूर्य की तरह शुभ समझे जाते थे । जिसमें से इस उक्ति का जन्म हुआ है– 'दिसेल मांग तर फिटेल पांग ।' अर्थात् मांग दिखने से पाप कम हो जाएँगे ।

हिन्दू संस्कृति में मानव जन्म को महत्व दिया गया है और बालक के जन्म को शुभ माना जाता है । जन्म के बाद बालक को विश्व का प्रथम दर्शन प्राप्त होता है । यह प्रथम दर्शन उसे शुभ और मंगल प्राप्त होना चाहिए जिसके लिए मांग जाति की दाईन को लाया जाता था । और वे इसे जरूरी समझते थे । यह इसलिए कि उस मांगिन दाई माँ की निगरानी में ही बालक का जन्म होना चाहिए यह गाँव में नियम था । इस तरह की कार्य सिर्फ मांग जाति के स्त्री के ही है यह सिष्द किया जाता था । मांगिन स्त्री का बालक को सबसे पहले स्पर्श, दर्शन, बालक के जन्म लेते ही उसके कान फुंककर मंत्रोच्चार करना आदि कार्यों को अत्यंत शुभ और मंगल समझना चाहिए इस तरह की धारणा उस समय थी ।

मनुष्य के विवाह को भी सामाजिक जीवन में शुभ और मंगल समझा जाता है । ऐसे मंगल कार्यों में मांग लोगों को अपने मंगल वाद्य के माध्यम से दुल्हा–दुल्हन का स्वागत करना चाहिए । और उन वाद्यों के ताल में, शुभ स्वरों में यह मंगल विधि या विवाह होने चाहिए । इस तरह के कार्य मांग लोगों को ही करने चाहिए ऐसी धारणा बन गयी । और हालगी–शहनाई बजाने जैसे कार्य मांग गाँव में भी करने लगे थे । क्योंकि यह मंगल वाद्य बजाकर वे वधु–वर को शुभ आशीर्वाद देने से ही उन विवाहित दाम्पत्यों का जीवन मंगलमय हो जाता है ऐसी इसके पीछे धार्मिक धारणा थी । तब से लेकर आज तक मातंग समाज के लोग मंगलवाद्य बजाने के कार्य कर रहे हैं ।

बस्तियों में किसी के घर पर पुत्र के जन्म के समय, शादी के बारात में, गाँव की महापूजा में, मेले में अथवा किसी भी शुभ कार्यों में मांग लोगों को अपने मंगलवाद्य बजाने चहिए । और ऐसे समय पर मांगिन स्त्री को उनके सामने पानी से भरा हुआ मटका शुभचिन्ह समझकर पकड़ना चाहिए । इस तरह के कार्यों को शुभ माना जाता था । जिससे हर एक काम में यश प्राप्त होता है ऐसी प्रथा समाज में प्रचलित थी ।

महाराष्ट्र में वाघ्या, देवपूजक, देवदूत आदि मातंग जाति के ही पुरूष रहते थे । और मातंग जाति की स्त्रियों में मुरळी , देवदासी आदि इश्वरों से संबंधित शुभ कार्य करने चाहिए इस तरह के भी कार्य इन लोगों पर थोपें गए थे । गाँव, बस्तियों में इन्हें शुभ और मंगल देवपूजक समझा जाता था । जिनकी वजह से गाँव में बीमारी, भीषण महामारी की गुंजाईश नहीं रहती है ऐसा समझा जाता था । इस तरह की वाघ्या, मुरळी, देवदासी जैसी प्रथाओं को हिंदू समाज में पवित्र माना गया है । लेकिन निम्न जाति के लोगों के तरफ से यह प्रथा निभाने से इसे प्रतिष्ठा नहीं मिली थी । यही काम अगर ब्राह्मण समाज की पुरूष या स्त्रियाँ करते तो इसे प्रतिष्ठा मिल जाती थी । और इसे पुण्य का काम समझकर ज्यादातर मांग जाति के लोगों पर ही थोप दिए गए ।

जब फसल का या फिर बुआई का काम शुरू रहता है तब मांग लोगों को खेती में जाकर देव–देवताओं के सामने खेत मालिकों को ज्यादा माल होने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, या फिर उनकी स्तुति करनी चाहिए ऐसी प्रथा थी । इस प्रथा को शुभ मानकर उससे ज्यादा माल–टाल प्राप्त होता है ऐसी धारणा प्रचलित थी । यह जोगवा या जोगणी

 ISSN 2394-6903

मांगने के कार्य मांग लोग करने से ही शुभ माने जाते थे ।

मांग जाति को इस तरह से शुध्द माना जाता था कि खेत में, गाँव में, या फिर गाँव के बहार जैसे बड़े–बड़े महल बनाते समय, हवेलियाँ बनाते समय, किले बनाते समय उसकी नींव में अगर मांग जाति के व्यक्ति की बली देने से उस कार्य को शुभ माना जाता था । ऐसा करने से यश प्राप्ति होती है ऐसी भी धारणा थी । इस संदर्भ में महात्मा ज्योतिबा फुले भी लिखते हैं –

मराठी – मांगास बहुत पिडिले । सजीव दड़विले गढ़ीच्या पाया ।
लेश उरले उष्टे मागा । नाही ज्यागती आर्य न्यायात ।।
मांगानो, सत्ताविन सकळ कळा । झाल्या अवकळा पुसा मनाला ।
मांग बधूंनो, तुम्ही राज्यकर्ते आहात । सत्ता मिळवा ।।

हिंदी:–

बहुत सताया गया मातंगों को । जिंदों को दफनाया गया ।
लेश मात्र बच पाये थे झूठा मांगने । फिर भी पूरे ब्रह्माण्ड में न्याय नहीं मिला ।।
मातंगों, सत्ता के बिना कुछ भी नहीं । अब तक बहुत झेल लिया यह जान लो।
मातंग भाइयों, तुम सत्ता करने वालों में से हो । सत्ता प्राप्त करो।।

गाँव या बस्ती में किसी प्रकार की नैसर्गिक आपत्ति आ जाती है तो उसका निवारन मातंग जाति के लोगों को ही करना पड़ता था । गाँव में किसी प्रकार की बीमारी फैलने से या महामारी आने से मरीआई की पूजा कर के वे पूजा के सारे सामान को गाँव के बाहर छोड़ना चाहिए यह भी एक प्रथा थी । अगर गाँव पर कोई हल्ला करता है तो मांग लोगों को ही शंक फूंककर पूरे गाँव को जगाना चाहिए और सबसे पहले युध्द में भी उनको ही जाना चाहिए । इस तरह के नियम गाँवों में प्रचलित थे।

राजाओं के रजवाड़े, हवेलियों के रक्षक मांग जाति के शूर–वीर पुरूष ही रहते थे । महात्मा फुले के अंगरक्षक भी मांग जाति के ही थे । लहुजी बुवा साळवे यह थे फुले के अंगरक्षक । यही नहीं पेशवाई राज्य में भी मस्तानी के बारा अंगरक्षक मांग जाति के ही थे । शिवाजी महाराज की सेना में भी महारों की तरह ही मांग जाति के सरदार या सैनिक बड़े पैमाने पर थे । मांग लोगों को अत्यंत शूर, शुभ या प्रामाणिक माना जाता था । पेशवाई राज में उन्हें नाईक कहकर संबोधित किया जाता था । उनके नाम इस तरह से रहते थे– नागनाक, सदनाक, गणनाक आदि ।

पेशवे कालीन राज्य में इन लोगों को पहचान ने के लिए अलग से साधन बना दिए गए थे । वैसे तो पेशवाई शासन में ही दलितों पर अत्याचार करने की पहल चली थी । इस पेशवा साम्राज्य ने दलितों की पहचान के लिए और उनसे अपवित्र होने से बचने के लिए इस समाज को इस तरह गुलाम बना दिया था कि वे उसे अपना अधिकार समझकर अपना रहे थे या भयभीत थे । दूसरा बजीराव (पेशवाई राजा) ने महार और मांग जाति को शूद्र कहकर उन्हें थूकने के लिए गले में मटका और उनके पैरों की धूल उनके साथ ही चली जानी चाहिए इसलिए उनके कमर में झाडू बांध देने का आदेश दिया था । जो नहीं मानेगा उसे घोर यातनाएँ दी जा रही थीं । यह गरीब और निसहाय लोग उस प्रथा को अपना रहे थे । पेशवाई राज्य मांग और महार जाति के लोग रस्ते से चलने पर भी अपवित्र हो रहा था, वे लोग जमीन पर थूकने से भी अपवित्र हो रहे थे । इतना ही नहीं इसी राज में मातंग समाज के लोगों को दूर से पहचाना जाना चाहिए जिसके लिए उनके

ISSN 2394-6903

हाथ में काला धागा बांधने का भी नियम बनाया गया था, इस नियम को आज भी कुछ अंधश्रध्दा पालने वाले मातंग समाज के व्यक्ति बखूबी निभा रहे है । इस तरह से पेशवाई शासन में मातंग समाज पर थोपे गए नियमों से इन लोगों को अपनी संस्कृति गँवानी पड़ी और साथ ही गरीबी इनके दरवाजे पर दस्तक देने लगी ।

मातंग समाज की उपजातियाँ–

मांग (आज के सुधारवादी समाज की मातंग जाति) , गारूड़ी मांग, पेंडे मांग, होलार मांग, डोम्बारी मांग, इक्कलवार मांग, कुक्कलवार मांग, मादिगा मांग, ढोल्या मांग, तेली मांग, रामोशी मांग, काकरी मांग आदि । इस जाति में उपजातियाँ बनने के मूल कारण को देखा जा सकता है ।

महाराष्ट्र की मातंग जातियों में १२ उपजातियाँ देखने को मिलती है । यह उपजातियाँ अंग्रेज शासन में बनाई गयी है । वे सब मातंग ही थे लेकिन उन्हें डर के मारे अपने नाम अलग बताने पड़े । अंग्रेज शासन महाराष्ट्र में लागू था तब की यह बात है उस समय मराठों और ब्राह्मणों ने एक साजिश बनाई थी जिसके तहत इन लोगों को अपनी ही जाति के अलग–अलग नाम बताने पड़े । यह साजिश मराठों की थी । उनके अनुसार मातंग समाज को चोर घोषित किया जाए और अंग्रेज सरकार से गुजारिश की जाए कि इन लोगों को पकड़कर उम्र–कैद की सजा दी जाए, क्योंकि ये लोग हमारे खेत लुटते है आदि । जाहिर सी बात थी जिन लोगों की जमीन जायजाद आदि छीनकर उन्हें भिखारी बना दिया गया हो और फिर उन्हें मजदूरी भी न मिल रही हो तो वे बेशक चोरियाँ करने लगे थे । ऐसे में अंग्रेजों ने इस जाति के लोगों को पकड़ना शुरू किया जो मिलता उसे वे लोग मारते पीटते और कैद कर लेते थे । जब कोई मिलता था तो पहले उनसे पूछते थे कि तेरी जात कौनसी है वह मांग या मातंग कहते ही उसे पकड़ लेते थे चाहे वह चोरी करे या न करें । तब इन लोगों को एक सुझाव मिला और लगा कि सिर्फ मातंग नहीं उससे कुछ जोड़कर कहते है । तो तबसे वे लोग होशियार हो गए और पुलिस पकड़ते ही कहने लगे कि साब मै मांग नहीं, मै गारूड़ी मांग हूँ, फलां हूँ, मै तेली मांग हूँ, मै ढोली मांग हूँ आदि इस प्रकार से इस जाति में उपजातियाँ बनीं जो आज भी अस्तित्व में है । ये सारी उपजातियाँ महाराष्ट्र में पाई जाती है ।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जो समाज गौरव प्राप्ति के बाद भी इतिहास में जगह नहीं बना सकता है । इसका कारण हम जानते है । भारतीय संस्कृति में ऐसी अनेक जातियाँ है जिनकी संस्कृति से हम अपरिचित ही रहते है । मातंग समाज की संस्कृति भी इनमें से एक है । समाज और संस्कृति की बात की जाए तो समाज और संस्कृति का ऐसा गहरा संबंध है जैसे चोली और दामन का होता है । उनका एक दूसरे के बिना संपूर्ण होना कभी संभव नहीं है । व्यक्ति का अधिकतर समय समाज में ही गुजरता है, वह समाज में रहकर ही समाज में घटित–घटनाओं के माध्यम से हर रोज कुछ न कुछ सीखता रहता है ।

संदर्भ ग्रंथ:

१. गाव–गाडा, त्रिंबक नारायण आत्रे, सरिता प्रकाशन पुणे–१६

२. मातंग समाजाचे भव्यतव्य वास्तव व संकल्प, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपूर–३

३. मातंग समाजाच्या चळवळी स्वरूप व दिशा, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपूर.

४. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, प्रा. माधव बसवंते, आनंद लाटकर,
कॉम्प–प्रिन्ट कल्पना, पुणे–३०.

५. आदिलाबाद जिले के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण क्षेत्रों में क्षेत्रीय कार्य ।

Volume-7, 2021

ISSN 2394-8903

RAINBOW

Multidisciplinary Peer Reviewed Annual Journal

Shri Nagpur Gujarati Mandal's

VMV Commerce, JMT Arts and JJP Science College

WARDHAMAN NAGAR, NAGPUR-440008.

Ph.: 2764391, 2739941, 6508158

E-mail: vmvnagpur@gmail.com, rainbowvmv@gmail.com

Website : www.vmvnagpur.org

42	भूमंडलीकृत समाज में विकास बनाम विस्थापन	भावना पी.एच.डी.	254
43	हिन्दी और तेलुगु में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली का निर्माण	सुर्य कुमारी.पी.	260
44	बलुतेदारी प्रथा और महार मांग संबंध	सोनकांबळे पिराजी मनोहर	265
45	अस्तित्व की लडाई और डॉ.धर्मवीर	घाटे कैलास बलिराम	272
46	समाजातील समाजाचा परिवर्तनिय महामेरु- राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज	डॉ. दिलीप चव्हान	277
47	माझी जन्मठेप : वाङ्मयीन महात्मता	डॉ. तीर्थराज कापगते	281
48	आदीवासी मराठी कविता	डॉ. राखी जाधव	288
49	The Great Indian Robbery And Two Contemporary Historians	Dr. Supantha Bhattacharyya Dr. Purabi Bhattacharyya	293

Gujarati

50	ચાલો, શિક્ષણ જગતની યાત્રાએ...	[illegible]	299
51	મધ્યકાલીન ગુજરાતી સાહિત્યમાં ધર્મ કેન્દ્ર સ્થાને ?	[illegible]	303
52	ગાંધી - ગીતા	ડૉ. પુજા પંડ્યા	306
53	શિક્ષણમાં માતૃભાષાનું મહત્વ	[illegible]	308
54	"ગુજરાતી અને સાહસ"	ડૉ. ભાવેશ ચંદ્રકાન્ત ભૂપતાણી	311

Science

55	Synthesis of Benzimidazole Schiff's Bases & Its Derivative Catalysed by Copper Nanoparticles and Employment of India	Jay A. Tanna R. B. Patil	313
56	Using Raspberry PI as OPC UA Device with Orange Wit Analytics Platform	Mrs Mugdha M. Ghotkar	319

ISSN 2394-6903

बलुतेदारी प्रथा और महार मांग संबंध

सोनकांबळे पिराजी मनोहर
शोधार्थी, दलित–आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500046.

भारत कृषिप्रधान देश रहा है । ग्रामीण भागों में खेती एक मात्र व्यवसाय है । कुनबी याने जमींदार भोली–भाली जनता को ठगने का काम करता है । गाँवों में इन किसानों का राज चलता है । गांव के चारों ओर कारु और नारु याने दलित जातियों की बस्तियाँ रहती थीं । यह दलित जातियाँ भी अपने–अपने जातीय समूह में बंटकर रहती थीं । कारु याने खेती में काम करने वाला जिसकी मेहनत और कौशल्य के दम पर खेती के व्यवसाय को मुख्य रूप से सहायता मिलती है । कुनबी याने तत्कालीन समाज का और आज का जमींदार जिसके पास अपनी खुद की बहुतायत जमीन होती है । वह कुनबी बलुतेदारों के उद्योग को मतलब बारह बलुतेदारों को उनकी जाति के अनुसार बलुतं (परिश्रम का मूल्य) देता है । जो दलित जातियाँ जमींदारों के यहाँ काम करती हैं उन लोगों को खेती के उत्पादन में से कुछ हिस्सा दिया जाता है, जो उन्हें उनकी वंश परंपरा की ओर से अपने हक के लिए भेंट के रूप में मिला हुआ है । उसे ही 'बलुतं' कहा जाता है।

जमींदारों को इन बलुतेदारों से फायदा मिलता है । उसी प्रकार इन गरीब लाचार लोगों को भी काम के लिए दर–ब–दर भटकने की बजाय टिक कर काम करने का मौका मिलता है । जमींदार के उत्पादन में से उन्हें उनका हिस्सा बलुतं मिल जाता है । आज आधुनिक कहे जाने वाले इस देश में जहाँ पर धर्मनिरपेक्षता की बात की जा रही है, वहीं पर ऐसा भी समाज जीता है जिनके दरवाजे पर रोज की नई सुबह गरीबी की दस्तक देती है । देश में आज भी इस तरह की गुलामी खत्म नहीं हुई है । कुछ लोग आज भी उस परंपरा को मानते हुए लोगों को डरा–धमका कर उनसे मजदूरी करवाते हैं । साथ में यह भी अहसास दिलाते हैं कि तुम बलुतेदार हो तुम्हें यह करना ही होगा । यह प्रथा आज भी रूढ़ है, महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्रों में आज भी देखने को मिलती है । खेती की संबंध में हो या फिर जीवन जीने की जरूरतों को पूरा करने वाली इस व्यवस्था को ही बलुतेदारी कहा जाता है ।

आज के दौर में बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था के चलते यह गुलाम बनाने वाली व्यवस्था कमजोरसी पड़ गयी है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि शैक्षणिक प्रमाण बढ़ने से इसकी जड़ें

कमजोर पड़ गयी होंगी । कुछ क्षेत्र में यह प्रथा आज रूढ़ है उसका कारण यह हो सकता है कि वहाँ पर जो पूर्व परंपराएँ, प्रथाएँ रूढ़ हैं उसके मूल में अंधश्रद्धा है । लोगों के जहन में से अंधश्रद्धा ही नहीं जाती तो इस तरह की गुलामी कैसे नष्ट होगी । जमींदारों को अपने आर्थिक पक्ष को मजबूत करने के लिए एक मजदूर की जरूरत थी । तब जाकर जमींदार ने अपनी खेती के उत्पादन में से कुछ हिस्सा देकर कारु और नारु को गाँव में स्थान दिया । जमींदार के जीवन में कारु की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है । उसके बिना जमींदार का आर्थिक स्तर घट जाता है । खेती से संबंधित जितने भी काम होते हैं वे सारे काम याने जोतने, उगाई से लेकर फसल निकालने तक के सारे काम बलुतेदार करता है । साल भर काम करने के बाद जो फसल निकलती है उसमें से कुछ हिस्सा इनको मिलता है । वह बारी–बारी से दिया जाता है । इसमें भी मातंग समाज को मुठ्ठी में समाने वाला अन्न मिलता था, वे लोग उसे ही ले जाते थे । फसल के बाद जो भी मिलता था उसे ही बलुतं–अलुतं कहते हैं । बलुतं–अलुतं को अनेक प्रतिशब्द दिए गए है दृ जैसे मराठी में बलुत्या, आलुत्या, आय, घोगरी, पेंढ़ीकाड़ी, सळई, भिकने, शेर, आदि । (गावगाडा– त्रिबंक नारायण आत्रे)

"जमींदार को जिन बलुतेदारों से फायदा होता है उन बलुतेदारों के भी वर्ग बनाए गए हैं । उनके तीन वर्ग हैं । पहला– सबसे बड़ा, दूसरा – मझला, तीसरे को सबसे छोटा कहा जाता है । इस व्यवस्था में कुनबी (जमींदार) को प्रतीक रूप में गाय कह सकते हैं और जो बलुतेदार हैं वे उस गाय के बच्चे हैं । तब गाय के बच्चे बारी–बारी से आकर दूध पीते हैं । जिस प्रकार गाय के बच्चों में जो सबसे पहले आकर दूध पीता है, उसे सबसे ज्यादा दूध मिलता है और उसका पेट भर जाता है, जो बाद में आते हैं, उन्हें पेट भर नहीं मिलता याने वे भूखे रह जाते हैं । इसमें भी ठीक ऐसा ही होता है जमींदार को जिससे फायदा मिलता है उसे सर्व प्रथम बलुतं मिलता है और जो बाद में आते हैं, उन्हें 'मात्र' (वह फसल का हिस्सा जो जमीन पर गिरता है।) मिलता है । इसमें गाय, कास और गाय बच्चें रूपक है और कुनबी (जमींदार) का कार्य बहुमान का रूपक है ।" इस उद्धरण से यह बात साफ होती है कि दलित जातियों को अपनी मेहनत का हिस्सा भी नहीं मिलता था। फसल की वह मात्रा मिलती थी जो जमीन पर गिर गई हो। मतलब असावधानी में जो गिर जाती है वह फसल। जिसकी मात्रा अत्यंत ही अल्प होती है। जिसमें मिट्टी ज्यादा और फसल कम होती है। जो मिट्टी के साथ तिनके के रूप में उन्हें मिलती थी, वह भी उतनी जितनी इंसान की मुट्ठी में समा सके।

बारह बलुतेदारों की सूची तथा उनके काम और काम के बदले में दिए जाने वाला मूल्य याने बलुतं :

क्र.	बलुतेदार की जाति का नाम	व्यवसाय तथा काम	मूल्य / पारिश्रमिक
1.	सुतार (बढई)	लकड़ी की वस्तुएँ बनाना, खेती के औजार बनाना, कुल्हाड़ी, फावड़ा, हल आदि के डंडे बनाना आदि ।	पान–सुपारी एक रुमाल और फेटा
2.	लोहार	खेती के औजार बनाना, कुछ बर्तन बनाना, कत्ती, कुल्हाड़ी आदि ।	अनाज – गुढ, मुंगफली
3.	चमार	लगाम, चमड़े की वादी तथा चप्पल जुत्ते आदि बनाना ।	हल चलाने के बदले चार शेर अनाज ।
4.	मांग	झाडु बनाना, सहनाई बजाना, हालगी बजाना आदि ।	हर रोज बासी रोटी के टुकडे, हल चलाने के बदले में चार शेर अनाज ।
5.	महार	स्मशान मे लकड़ी जमा करना, मृत्यु की खबर पहुँचाना,मरे हुए जानवरों को ढोना, शादी वगैरह के उत्सव में लकड़ी फोड़ना, गाँव कामगार के नाम से सरकारी कामकाज संभालना आदि ।	इनामों के रूप मे जमीन दी गयी है ।
6.	नाई	बाल काटना, हजामत करना, दाढ़ी बनाना, मुंडन करना आदि ।	छोटे बच्चों को नही बल्कि घर के बड़े सदस्यों के हिसाब से कुछ रोटियाँ और सालन ।
7.	धोबी	कपड़े धोना आदि ।	कुछ पैसे
8.	कुम्हार	मिठ्ठी के घड़े, मटके आदि बनाना ।	अनाज, गुढ़, मुंगफली
9.	कोळी (कोली)	गाँव के चावड़ी की देखभाल करना, साफ–सफाई करना, पानी भरना आदि ।	फसल के वक्त बलुत स्वरूप धान्य ।
10.	सोनार	जेवर बनाना, छोटे बच्चों के कानों में बालियाँ आदि लगाना ।	बलुत और मजदूरी
11.	गुरव	ग्राम देवता के मंदिर दोना, दिया जलाना, उसमें समय समय पर तेल चढ़ाते रहना आदि ।	नौ–प्रकार के अनाज, खाद्य पदार्थ ।
12.	जोशी (ग्रामजोशी)	धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्य पंचाग तथा पुराण आदि की जानकारी देना ।	फसल के समय बलुत इसके अलावा फल आदि और साथ में कपड़े भी ।

देहातों में दो वर्ग हैं – प्रथम 'स्पृश्य' और दूसरे भाग में 'अस्पृश्य' आते हैं । देहातों में कितने भी वर्ग या जाति क्यों न हो उनमें आपस में अंतःसंबंध निर्माण हो जाते हैं । बलुतेदार अपने उत्तरदायित्व को जानते थे । उनकी संख्या बारह थी । उसी प्रकार ग्रामीण जीवन की हर जरूरतों को पूरा करने वाली जातियों को अलुतेदार या नारु कहा जाता है । बलुतेदारों के अलावा 18 ऐसी जातियाँ है जो अस्पृश्य मानी जाती हैं । वे इस प्रकार हैं– तेली, तांबोळी, साळी, धनगर, शिंपी, माळी, गोंधर्म, डोर्या, भाट, ठाकर, गोसाई, जंगम, मुलानी, वाजंत्री, घड़शी, कलावंत, तराळ और भोई आदि ।

महार–मातंग संबंध

अतीत में मातंग–महार दोनों अस्पृश्य जातियाँ अलग नहीं थी बल्कि एक ही थी, कालांतर में समाज व्यवस्था ने इनमें कर्म के आधार पर लकीर खींच दी । उसके बाद जो एक थे उसे दो भागों में बंटना पड़ा और अलग अलग नामों से अभिहित होना पड़ा । जिसे आज हम महार और मातंग कहते हैं । इस संदर्भ में 'गावगाड़ा' के लेखक त्रि. ना. अत्रे का कहना है कि "मूल रूप से महार और मातंग यह दोनों जातियाँ महार जाति से अलग होनेवाली उपजातियों में होनी चाहिए या फिर उनके पीछे–पीछे आकर उनके साए में रही होंगी ।" भारतीय समाज व्यवस्था का आधार ही जाति है जिसमें एक जाति दूसरी जाति से घृणा करती है । दलित समाज तो पहले से ही समाज से बहिष्कृत रहा है । यह जाति व्यवस्था शहरों में भी उतनी ही देखने को मिलती है जितनी गाँवों में । इन जातियों में आपस में संघर्ष होते दिखाई देते हैं । जिनमें महार–मातंग समाज भी हैं ।

'अस्पृश्यांचे प्रश्न' (अस्पृश्यों के सवाल) नामक इस ग्रंथ के लेखक माटे श्री. म. जी ने मातंग समाज की उत्पत्ति को लेकर तर्क देते हुए एक दंत कथा प्रस्तुत करते हैं– "मांग जाबंक या जांबुऋषि के वंशज माने जाते है । जांबऋषि को कुल मिलाकर सात संतानें थीं । उनके जेष्ठ पुत्र को शिवजी ने कामधेनु नाम की गाय दी थी उसने उसे काटकर उसका मांस ग्रहण किया था । जब गाय को काटा गया था तब उनके कनिष्ट पुत्र वहीं पर उपस्थित थे । उसके शरीर पर रक्त की बूंदे गिरीं थीं । इस बात की खबर शिव जी तक पहुँच जाती है, तब उन्होंने जांबऋषि के जेष्ठ और कनिष्ठ पुत्र को श्राप दिया था । इस श्राप का परिणाम यह निकला कि जेष्ठ पुत्र महार और कनिष्ठ पुत्र मांग बन गए ।"

महार–मातंगों के बीच संघर्ष की भावना

महार समाज की अपेक्षा मातंग समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय है । मातंग समाज को ग्राम संरचना में किसी भी तरह का स्थान नहीं है, साथ ही उनके पास किसी भी तरह के उत्पादन के साधन नहीं हैं । वहीं महार समाज को परंपरा से मिली हुई वतनदारी थी । इसका कारण यह भी हो सकता है कि महार समाज का शासन से या फिर उनके प्रतिनिधियों से संपर्क बना हुआ था । इसके विपरित मातंग समाज को परंपरा ने निम्नलिखित कार्य सौंपे दिए थे जैसे दृ फाँसी देना, (यह काम चंडाल किया करते थे इसलिए मातंग समाज को चंडाल का वंशज माना जाता है) उसके बाद बलुतेदारी में हिस्सेदारी मिली, इससे पहले यह लोग जंगल में रहते थे । इनमें अलग तरह का साहस दिखाई देता है, आगे चलकर यह लोग आश्रय के लिए गाँवों में स्थायी हो गए । कुछ विद्वानों के मतानुसार मातंग समाज वनवासी या आदिवासी था, उसके उपरांत उनके कौशल्य और कार्यपद्धति को देखकर उन्हें गाँवों में प्रवेश मिला था । गाँव में प्रवेश मिलने के साथ–साथ मातंग समाज को बलुतेदारी में भागीदारी

मिल गयी । इस बात से तो हम सब वाकिफ़ हैं कि महार–मातंग दोनों जातियाँ अस्पृश्य मानी जाती हैं । इन जातियों पर निम्न प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए थे जैसे– मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक उत्सवों, चावड़ी, गाँव पंचायत आदि में बैठने पर निषेध था । जब से मातंग समाज को बलुतेदारी में भागीदारी मिली थी तभी से नहीं बल्कि उससे पहले से भी इन दोनों जातियों को एक साथ रहने का जिक्र मिलता है । जिसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही महार–मातंग जातियों में संघर्ष होता दिखाई देता है । पीढ़ी–दर–पीढ़ी इन दोनों जातियों में कलह उत्पन्न होता दिखाई देता है । मातंगों का स्थान महारों की तुलना में कनिष्ठ ही माना जाता है ।

हक़ के लिए लड़ाई

गाँव के कामों में अपने हक़ के लिए महार–मातंगों में संघर्ष होते थे । मरे हुए जानवरों को ढोना यह पहले से ही महारों का काम था । लेकिन जब से मातंग समाज ने गाँव में प्रवेश किया तब से वे अपने हक़ की बात करने लगे थे, इसी कारण इन दोनों में वाद निर्माण होता रहा । पेशवा के शासन में कसबा इंदापुर नामक गाँव में महार–मातंगों में वाद उत्पन्न हुआ था तब एक नियम पारित किया गया था वह यह था कि 'पड़ पडल ती महारानी न्यावी व आपली जीवनवृत्ति करावी ।' (पड़ का अर्थ है मृत जानवरों का मांस) अर्थात् जहाँ कहीं भी जानवर मर जाता है, तब उस जानवर को महार ले जाएँगे और अपनी उपजीविका चलाएँगे ।

गाँवों में होने वाली चोरियाँ

प्राचीन काल में गाँव की रक्षा की जिम्मेदारी महार जाति की थी । गाँव में किसी भी तरह की चोरी होती थी, तो उस चोर के कदमों के निशान से उसका पता लगाने का काम उनका था, वह किस दिशा में गया होगा और उसे कैसे पकड़ना है इसके लिए महार लोग जाने जाते थे । अगर गलती से वे लोग चोर को नहीं पकड़ पाते तो उन्हें अपनी वतनदारी में से पैसे देने पड़ते थे । इसलिए उनका मानना यह रहता था कि मातंग लोग गुनहगार तथा चोर जमात हैं, चोरी करना इनका पेशा है, इस तरह के वैर भाव को लेकर दोनों में संघर्ष की भावना उत्पन्न होती थी ।

मरिआई का उत्सव

यह उत्सव मनाने के लिए हिन्दू धर्म की परंपरा के अनुसार गाँव की स्पृश्य–अस्पृश्य जातियों को मान दिया जाता था । उस दिन भैंसे को लेकर पूरे गाँव में जुलूस निकाला जाता था, उस समय पूर्व पद्धति के अनुसार महार जाति का व्यक्ति भैंसे और मटके को लेकर आगे रहना चाहिए, उसी प्रकार

मातंग समाज का पीछे रहना चाहिए यह प्रथा समाज में रूढ़ थी । इस माता की पूजा करने के लिए महार समाज में से चार महिलाएँ तथा मातंग समाज से केवल एक महिला रहनी चाहिए ऐसा नियम था । जुलूस के पश्चात महार लोग उस भैंसे को हलदी वगैरह लगाकर पूजा करते थे उसके बाद मरिआई के मंदिर के सामने लिटाकर पूजा के लिए बनाए गए भोग को, नागली के पाँच पत्तों से बना बीड़ा उसके गले पर रखा जाता था । उसके बाद गाँव के पाटिल को उस बीड़ा को धीरे से काटना पड़ता था, ऐसी प्रथा समाज में बहुत दिनों तक रूढ़ थी । आरंभ में इस प्रथा में ऐसा नियम था कि उस भैंसे को महार समाज का कोई भी व्यक्ति जो जानता हो उस व्यक्ति को उस भैंसे के केवल चमड़ी ही काटनी होती थी, उसके बाद मातंग समाज का व्यक्ति उसकी बलि चढ़ाता था वह इस प्रकार काटना पड़ता था, जिससे एक ही घाव में सर और धड़ अलग हो जाए । यह सब करते समय उनमें झगड़े न हों इस बात पर ध्यान दिया जाता था । इस प्रथा में अगर महार समाज के व्यक्ति के हाथों गलती से भी उस भैंसे की चमड़ी के साथ थोड़ासा भी खून निकल आता है तो कयामत आ जाती है । दोनों समुदायों में झगड़े का वातावर निर्माण हो जाता है । उस भैंसे की चमड़ी के साथ खून निकलता है तो मातंग समाज अपना अपमान समझ लेता है । बस यही एक कारण काफी हो जाता है जिससे दोनों समुदाय में झगड़ा हो जाता है । अब इस तरह की प्रथाएँ बंद हो चुकी है । अब समाज में परिवर्तन की भावना देखने को मिलती है । दोनों समुदायों में भाईचारे की भावना भी दिखाई देती है ।

महार–मातंग एकता की आवश्यकता

महारों ने गाँवकी के कार्यों को त्याग दिया था । परंपराओं से मिले हुए मान और हक़ को त्याग देने के बाद महार और मातंग समाज में जो वैर–भाव बना हुआ था एक तरह से नष्ट हो गया । साथ में इन लोगों में इस तरह का समझौता भी होना चाहिए कि हम जिन बातों को लेकर एक दूसरे से भिड़ जाते थे वह सब व्यर्थ था यह मानकर सब कुछ भुलाकर समाज की पुनर्रचना करनी चाहिए । जिसमें समता, स्वतंत्रता और भाईचारे की स्थापना हो । एक ऐसे समाज का निर्माण होना चाहिए जिसकी कल्पना बुद्ध ने, मध्यकालीन संतों ने, महात्मा फुले और डॉ. अंबेडकर ने की थी ।

स्वाधीनता के बाद डॉ. अंबेडकर के साथ महार जाति ने बौद्ध धम्म की दीक्षा ग्रहण कर धर्मपरिवर्तन कर लिया था । वे हिंदू धर्म को त्याग कर बौद्ध धम्म के उपासक बन गए थे । लेकिन मातंग समाज ने इस धर्मांतरण का विरोध किया था, इससे पहले भी मातंग समाज ने डॉ. अंबेडकर के आंदोलनों में सहभागीता नहीं दी थी । महाड के चवदार तालाब के सत्याग्रह से लेकर धर्मांतरण तक आते आते अनेक बार सवर्णों से संघर्ष करना पड़ा था । उस समय भी कुछ गीने चुने मातंग समाज के व्यक्ति डॉ. अंबेडकर के साथ थे, जिस प्रकार डॉ. अंबेडकर संपूर्ण दलित समाज के लिए लड़ रहे थे उस

प्रकार से मातंगों ने उन्हें साथ नहीं दी थी । उनके नेतृत्व को भी वे स्वीकार नहीं करते थे फिर भी कुछ समझदार लोग आंदोलनों में शामिल हो गए थे ।

आज का मातंग समाज अपने समाज के आदर्श लोक शायर अण्णा भाऊ साठे के संघर्ष को भी याद करता है । उनके कल्पना में सर्वप्रथम डॉ. अंबेडकर के सपनों का भारत था । लोक शायर अण्णा भाऊ साठे ने अपने भाषणों के माध्यम से मातंग समाज में चेतना जागृत की । उन्होंने इस समाज को अंधविश्वास से मुक्त होने का संदेश दिया । काल्पनिक देवी–देवताओं को त्यागने की बात कही साथ ही परंपरागत रूढ़ी–परंपराओं का भी खंडन किया । इसे ध्यान में रखकर आज का मातंग समाज डॉ. अंबेडकर की वैचारिकी से परिचित हो रहा है और समाज में परिवर्तन लाने प्रयत्न भी कर रहा है । आज का मातंग समाज शिक्षा को महत्त्व देने लगा है । डॉ. अंबेडकर ने बहुजन समाज को शिक्षा का मूलमंत्र दिया था शिक्षित बनो, संघटित हो और संघर्ष करो । आज मातंग समाज की शिक्षित युवा पीढ़ी डॉ. अंबेडकर द्वारा निर्मित समतामूलक समाज की कल्पना कर रही है । आज यह समाज बड़े पैमाने पर बौद्ध धम्म की दीक्षा ले रहा है । एक तरह से हिंदू धर्म को त्याग कर बौद्ध धम्म की ओर अग्रसर होता दिखाई दे रहा है । इससे यह ज्ञात होता है कि आज महार–मातंग समाज में भातृत्व की भावना निर्माण हो चुकी है, जिसकी जरूरत बहुत पहले थी । देर से ही सही लेकिन एकता की आवश्यकता है । आज मातंग समाज गर्व से जयभीम का अभिवादन कर रहा है, तथा अपने घरों में काल्पनिक देवी–देवताओं की जगहों पर बुद्ध, कबीर, फुले, अंबेडकर तथा अण्णा भाऊ साठे की प्रतिमाएँ एवं उनसे संबंधित साहित्य रख रहा है । इस प्रकार से इस समाज में परिवर्तन होता हुआ दिखाई दे रहा है ।

संदर्भ ग्रंथ–

1. गाव–गाडा, त्रिंबक नारायण आत्रे, सरिता प्रकाशन, पुणे–16
2. मातंग समाजाचे भवितव्य व संकल्प, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपुर–3
3. मातंग समाजाच्या चळवळी स्वरूप व दिशा, चंद्रकांत वानखेडे, अस्मिता प्रकाशन, नागपुर–3
4. मातंग समाज इतिहास आणि वास्तव, प्रा. माधव बसवंते, आनंद लाटकर, कॉम्प–प्रिन्ट कल्पना, पुणे–30

परिशिष्ट 2

वंदन गीत

धनी भिमराया जीवनभर जाळली काया
धनी भिमराया जीवनभर जाळली काया
तनमन धनाने करते वंदना ।।धृ।।
शान थोर बहुजन मानले समान आहे सर्व सिरांवरी छाया,
मुका परी घास भरी पोटी त्याच्या मुलापरी लावुन प्रेमळ माया।
धनी भिमराया जीवनभर जाळली.........
दूर झाले माता-पिता जल्म हे देऊनी,
सांभाळ केला आमुचा माऊली होऊनी।
चालने सिकवले आमाला गोड बोलने सिकवले
मौलवान वस्त्र वापराया ....
धनी भिमराया....जीवनभर जाळली..
दुबळया दिनांची आता जानली ना कोनी
भुकेलेल्या रोटी दिली तानेल्याला पानी
बंगला न म्हांडी मिळाली आम्हा मोटर गाडी
तोडल्या गुलामीच्या त्या बंधना।।
धनी भिमराया...जीवनभर जाळली...काया
खासदार-आमदार मंत्री झाले केला मजबुत आमुचा पाया।
संकट आले किती नाही कुणाचीच भीती बनविले धाड़सी लढाया।
धनी भिमराया...जीवनभर...जाळली...
आंधळा तो पाहु, लंगडा तो धाऊ लागे, वाचा फुटली मुक्याला

ज्ञान मिळाले खरे बहिर्याना आज सारे येऊ लागले आयकाया..

धनी भिमराया...जीवनभर जाळली.....

आमृतवाणी भिमा गाते मुखानी

त्व् नामे आम्हीं इथे जगतो सुखानी

मिळे बहुमान उंचावली आमुची मान

दत्ता स्वाभिमानाने तराया...

धनी भिमराया.. जीवनभर जाळली काया...।।

लोकगीत

बंधु ईवाई करीती, मागते मी थोड,थोड

बारा बैल एक घोडं

गडु तांब्याची लगडं, वरी तांबड लुगड

लेक देऊनी पाया पडं।

बंधु ईवाई करी मागना रे काई लई

बारा बैल सोळा गायी, दूध काडाया चरई

ताक करायाला रवी, वरी सोन्यांची तिवई।

अणं सोयर्या बांधवाला मंग मनते ईवाई।।

पाळणा

पहिल्या दिवसी राजा दरबारी, राज अंशाला आसा केतरी

बाळ शिवाजी पहल्या अवतारी...

जो बाळा..जो..जो..रे..जो..

दूसर्या दिवसी चला मंदिरी, केलीया रास नानाई परी।

न्हाऊ घालीती दासी सुंदरी......जो...बाळा..

तिसर्या दिवसी वाजली घंटा, सार्या नगरामध्ये आनंद मोठा..

उठा बायानों सुंटोडा वाटा...जो बाळा...जो...

चौथत्या दिवसी केला श्रृंगार, आले तानाजी मामा सैलार।

असे शिवाजी शोभे सरदार... जो...बाळा...जो...रे.

पाचव्या दिवसी पाचवी केली धन्य आंबीका धाऊनी आली।

जय प्राप्ती राजाला दिली....जो बाळा....जो...

सहाव्या दिवसी लाऊनी टाळा कानी कुंडाला मोत्याच्या माळा।

गंद केसरी कंपाळी टिळा...जो..बाळा...जो...

सातव्या दिवसी सातवी करा, जीजीबाईच्या पोटी जन्मला हिरा।

जसा मोत्यानी गुंपीला तुरा, त्याच्य स्वरूपाचा प्रकाश सारा।

जो बाळा...जो...बाळा..

आठव्या दिवसी आठवा रंग, पाहुन सेनापती झालेत दंग।

पाहुन सेनापती झालेत दंग....जो बाळा....जो...जो..रे...जो

नामकरण के गीत

त्यात छकुला, माझा चिमुकला।।

दिसते किती तरी देखना।

हळुहळु हलवा गं सोनुल्याचा पाळणा।।धृ।।

वरतं खाली पाय हालवते,

केविलवाणी का पाहते।

देवा माझ्या प्रिय बाळाची
पूर्ण करावी कामना।।1।।

हळुहलु हलवा गं.......
भूक लागली म्हणुनी रडला,
रडुनी चिंता तो झोपला।
बाई गं माझ्या सानं बाळाला,
संसारातील यातना।
हळुहळु हलवा गं.....

झोपे मध्ये का दचकते,
अर्धे डोळे का उघडते।
परिक याच्या दैव गतिच्या,
करते का गं कल्पना।
हळुहळु हलवा गं.......।।

सु-पुत्र भारत भूचा व्हावा,
देशा करीता देह झीजावा
परी अंतरी सदा राहाव्या
मानुसकीच्या भावना।
हळुहळु हलवा गं..सोनुल्याचा पाळणा।।

विवाह में गाने वाले गीत

ओटी ही आमुची झाली खुली, लेक लाडकी ही तुमाला दिली।।

केले लहानाचे मोठे, तीचा लाढ ही पुरविले,

कडी खांदी घेवुनी आम्ही आजवर मिरविले

ममतेची माया तुम्हाला दिली।

लेक लाडकी ही तुम्हाला......।।धृ।।

आम्ही जन्माते, आता ती तुमची झाली,

जीवापाढ़ सांभाळा हो आता ती तुमच्या हावाली

माहेरची ही माया, तुटली सावली।

लेक लाडकी ही तुमाला दिली।।1।।

पति प्रेमाने पहा सर्वजन जीव लावा,

घरधनी आणी नंदा जावा

बहिनीचे प्रेम द्यावा

समजावा जरी ही चुकली हुकली

लेक लाडकी ही तुमाला दिली।।2।।

श्री.वाघमारे पिराजी से बात-चीत करते हुए। गाँव मालेपुर, जिला आदिलाबाद ।

Royal Denim

पोतरोजों के साथ बात करते हुए ।

डक्कलवारों का प्रदर्शन तथा उनके वाद्य

गीत गाती हुई महिलाएँ

हलगी के लिए तैयार की जाने वाली चमड़ी